पं. श्री सत्यराजगणि रचित

श्री पृथ्वीचंद्रगुणसागर चरित्र

का हिन्दी भाषांतर

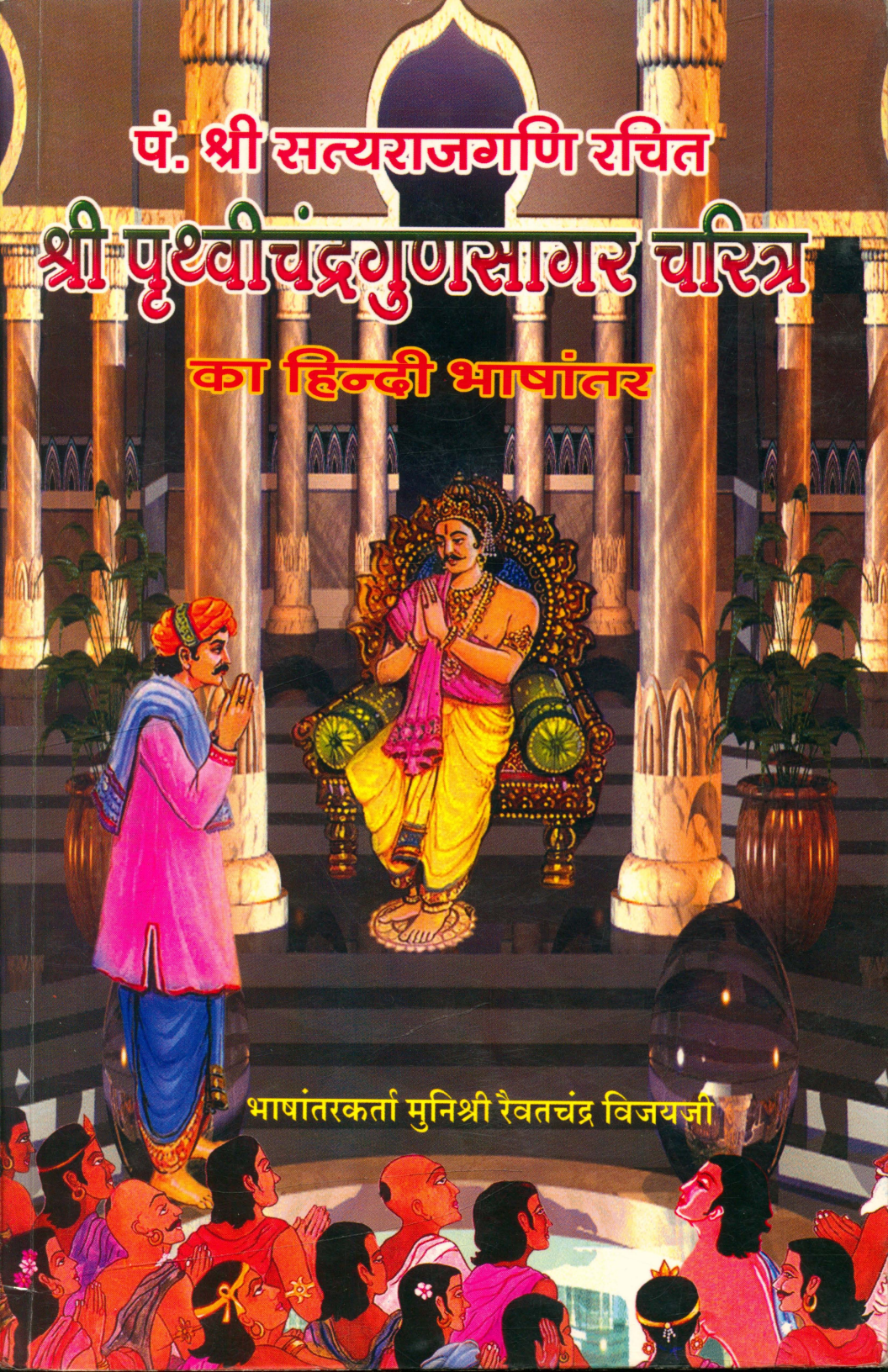

भाषांतरकर्ता मुनिश्री रैवतचंद्र विजयजी

।। श्री महावीर स्वामीने नमः ।।
।। प्रभु श्रीमद्विजय राजेन्द्रसूरीश्वराय नमः ।।

पं. श्री सत्यराजगणि रचित

श्री पृथ्वीचंद्रगुणसागर चरित्र

भाषांतर

: दिव्याशीर्वाद :
श्री विद्याचंद्रसूरीश्वरजी
मुनिराज श्री रामचंद्रविजयजी

: आशीर्वाद :
मुनिराज श्री जयानंदविजयजी

: भाषांतर :
मुनि श्री रैवतचंद्रविजयजी

आर्थिक सहयोगी

विदुषी सा.श्री मणिप्रभाजी की सुशिष्या
सा.श्री क्षमाशीलाश्रीजी की
वरसीतप पारणा निमित्ते
यह पुष्प प्रकाशन

हस्ते : हेमराज, प्रसन्नदेवी
रोहित, सचिन
छत्रगोता परिवार
चोराऊ

फर्म : पद्मश्री मार्केटींग
८९५/३, शांति कोम्प्लेक्ष, नगरथ पेट, बेंग्लोर-२

प्रत : २०००

किसीके बहते आंसुओं को सुखाने दो मुझे,
किसीके घाव पे मरहम लगाने दो मुझे;
जलाये है बहुत से पापों के चिराग मगर,
प्रायश्चित्त के इग दिये को जलाने दो मुझे ।

: प्रकाशक :

श्री गुरु रामचंद्र प्रकाशन समिति, भीनमाल, राज.

संचालक :

(१) सुमेरमल केवलजी नाहर, भीनमाल, राज.

(२) मीलियन ग्रुप, सूराणा, राज. मुंबई, दिल्ली, विजयवाडा

(३) श्रीमती सकुदेवी सांकलचंदजी नेथीजी हुकमाणी परिवार, पांथेडी, राज.
राजेन्द्र ज्वेलर्स, ४ रहेमान भाई बि.एस.जी. मार्ग, ताडदेव, मुंबई-३४

(४) स्व. हस्तीमलजी भलाजी नागोत्रा सोलंकी की स्मृति में
हस्ते परिवार बाकरा (राज.)

(५) शा दूधमल, नरेन्द्रकुमार, रमेशकुमार बेटा पोता लालचंदजी मांडोत
परिवार बाकरा (राज.)
मंगल आर्ट, दोशी बिल्डींग, ३-भोईवाडा, भूलेश्वर, मुंबई-२

(६) कटारीया संघवी लालचंद, रमेशकुमार, गौतमचंद, दिनेशकुमार,
महेन्द्रकुमार, रवीन्द्रकुमार बेटा पोता सोनाजी भेराजी धाणसा (राज.)
श्री सुपर स्पेअर्स, ११-३१-३A पार्क रोड, विजयवाडा

(७) एम. आर. इम्पेक्स, १६-ए, हनुमान टेरेस, दूसरा माला,
ताराटेम्पल लेन, लेमीग्टन रोड, मुंबई-७, फोन : २३८०१०८६

(८) गुलाबचंद राजेन्द्रकुमार छगनलालजी कोठारी अमेरीका,
आहोर (राज.)

(९) शा शांतिलाल, दीलीपकुमार, संजयकुमार, अमनकुमार, अखीलकुमार
बेटा पोता मूलचंदजी उमाजी तलावत आहोर (राज.)
राजेन्द्र मार्केटींग, पो.बो. नं. १०८, विजयवाडा

(१०) शा समरथमल, सुकराज, मोहनलाल, महावीरकुमार, विकासकुमार,
कमलेश, अनिल, विमल, श्रीपाल, भरत फोला मुथा परिवार
सायला (राज.)
अरुण एन्टरप्राइजेस, ४ लेन ब्राडी पेठ, गुन्टूर-२

(११) शा सुमेरमल, मुकेशकुमार, नितीन, अमीत, मनीषा, खुशबु बेटा पोता
पेराजमलजी प्रतापजी रतनपुरा बोहरा परिवार, मोदरा (राज.)
राजरतन गोल्ड प्रोड., के. वी. एस. कोम्प्लेक्स, ३/१ अरुंडल पेट, गुन्टूर

(१२) शा नरपतराज, ललीतकुमार, महेन्द्र, शैलेष, निलेष, कल्पेश, राजेश,
महीपाल, दिक्षीत, आशीष, केतन, अश्वीन, रींकेश, यश बेटा पोता
खीमराजजी थानाजी कटारीया संघवी आहोर (राज.)
कलांजली ज्वेलर्स, ४/२ ब्राडी पेठ, गुन्टूर-२

(१३) शा तीलोकचन्द मयाचन्द एन्ड कं. ११६, गुलालवाडी, मुंबई - ४

(१४) शा लक्ष्मीचंद, शेषमल, राजकुमार, महावीरकुमार, प्रवीणकुमार, दीलीपकुमार रमेशकुमार बेटा पोता प्रतापचंदजी कालुजी कांकरीया मोदरा (राज.) गुन्टूर

(१५) श्री शांतिदेवी बाबुलालजी बाफना चेरीटेबल ट्रस्ट, मुंबई, महाविदेह भीनमालधाम, पालीताना - ३६४२७०

(१६) शांतिरूपचंद रवीन्द्रचन्द्र, मुकेश, संजेश, ऋषभ, लक्षित, यश, ध्रुव बेटा पोता मिलापचंदजी मेहता, जालोर - बेंग्लोर

(१७) एक सद्गृहस्थ

(१८) एक सद्गृहस्थ (खाचरौद)

(१९) संघवी जुगराज, महेन्द्र, सुरेन्द्र, राज, जैनम, अक्षत बेटा पोता कुंदनलालजी भुताजी श्रीश्रीमाळ वर्धमान गौत्रीय आहोर (राज.)
कल्पतरु ज्वेलर्स
३०५ स्टेशन रोड, संघवी भवन, थाने (पश्चिम) ४०० ६०१

(२०) दोशी अमृतलाल चीमनलाल पांचशो वोरा थराद
पालीताना में उपधान कराया उसकी साधारण की आय में से।

(२१) शा भंवरलाल जयंतिलाल, सुरेशकुमार, प्रकाशकुमार, महावीरकुमार, श्रेणिककुमार प्रितम, प्रतीक, साहील, पक्षाल बेटा पोता-परपोता
शा समरथमलजी सोगाजी दुरगाणी बाकरा (राज.)
जैन स्टोर्स, स्टेशन रोड, अंकापली-५३१००१

: प्राप्ति स्थान :

शा देवीचंद छगनलालजी सदर बाजार, भीनमाल ३४३०२९ फोन : **(02969) 220387**	श्री आदिनाथ राजेन्द्र जैन पेढी साँथूं, ३४३०२६ फोन : **254221**
शा नागालालजी वजाजी खींवसरा शांतिविला अपार्टमेन्ट, तीन बत्ती, काजी का मैदान, गोपीपुरा, सूरत फोन : **2422650**	महाविदेह भीनमाल धाम तलेटी हस्तगिरि लिंक रोड, पालीताणा - ३६४ २७० फोन : **(02848) 243018**

श्री शत्रुंजय तीर्थाधिपति आदिनाथाय नमो नमः
महाविदेह विहरमान श्री सीमंधरस्वामीने नमो नमः
प्रातः स्मरणीय पूज्य भट्टारक १००८ प्रभु श्रीमद्विजय राजेन्द्रसूरीश्वराय नमोनमः

पंडित श्री सत्यराजगणि द्वारा विरचित

श्री पृथ्वीचंद्रगुणसागर चरित्र

: मंगलाचरण :

जिनके चरणकमल में, विश्व की यह लक्ष्मी भी संगति करती है, ऐसे श्री ऋषभदेव तुम्हारे अद्वितीय कल्याण की आधिक्यता को विस्तारें! जिनका समस्त अज्ञान रूपी अंधकार का समूह नष्ट हो गया है और जिनके यश की स्पर्धा करते हुए मानो चंद्र कलंक रूपी कीचड़ को धारण करनेवाला हुआ, वे श्री शांतिनाथ तुम्हें शांतिकारक हो। अपने बाहु रूपी झूले से जिसने कृष्ण को झूलाया और विश्व को आश्चर्य करनेवाली स्फूर्ति से युक्त श्री नेमिनाथ तुम्हारे कल्याणकर्ता हो!

मानो हृदय के अंधकार को नष्ट करने के लिए, जिनके मस्तक पर निरंतर कांति से देदीप्यमान, सर्प की फणा में रहे मणियों का समूह शोभा दे रहा था, ऐसे वे श्री पार्श्वनाथ तुम्हारें आनंद के लिए हो!

मानो भव्य प्राणियों के कर्मरूपी हाथी का भेदन करने में, प्रमाद रहित और अत्यन्त पराक्रमी सिंह, जिनके चिह्न के रूप में शोभा दे रहा है, वे श्री वीर प्रभु तुम्हें कल्याणकारी हो!

जिनको सौभाग्य से लब्धि रूपी स्त्रियों ने एक साथ ही आलिंगन किया है, वे श्री गौतम स्वामी तुम्हारे हृदयस्थान में उत्पन्न अज्ञान रूपी अंधकार को नष्ट करें!

क्षण मात्र में ही जिनके वाणी रूपी दीपक से, प्राणियों की जड़ता रूपी अंधकार नष्ट हो गया है, ऐसे सद्गुण रूपी समुद्र उन पूज्य गुरु भगवंतों को वारंवार नमस्कार हो!

सद्भाव से अरिहंतों को नमस्कारकर और हृदय में वाग्देवता का स्मरणकर, मैं (सत्यराजगणि) पृथ्वीचंद्र राजा के चरित्र का वर्णन करता हूँ!

प्रथम भव

जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में सुमंगला नामक देश है। उस देश में शंखपुर नामक नगर और वहाँ शंख राजा राज्य करता था। वह पिता के समान प्रजा का पालन करता था! अन्यदिन शंख राजा राजसभा में बिराजमान था! तब गजश्रेष्ठी के पुत्र दत्त ने राजा के आगे भेंट रखकर नमस्कार किया। स्वागत आदि प्रश्नपूर्वक

राजा ने उससे कहा - दत्त! तुम लंबे समय के बाद दिखायी दे रहे हो? तब दत्त ने कहा - प्रभु! आप इसका कारण सुनें!

व्यापारियों को देशयात्रा आदि से धन कमाना योग्य है। इस कारण से मैं धनार्जन के लोभ से बहुत सारे नगरों में फिरा। कहा गया है कि - जो अपने घर आदि के मोह से, विविध नगरों का अवलोकन नहीं करता है, वह कूपमंडूक के समान जरा भी सार-असार के बारे में नहीं जान सकता है। देश विदेश में घूमने से विविध आश्चर्य देखे जाते हैं, खुद का भाग्य जाना/पहचाना जाता है, अच्छे-बुरे का भेद जाना जाता है, इस कारण से पृथ्वी पर विचरण करना चाहिए।

राजन्! मैं व्यापार करने के लिए **देवशाल** नामक नगर गया था। राजा ने कहा-वहाँ तुमने कौन-सा आश्चर्य देखा अथवा सुना? वह कहो। तब दत्त ने कहा-देवशालनगर विविध आश्चर्य से युक्त है। वहाँ के घर देव-विमान के समान और नगर के लोग कामदेव के सदृश दिखायी पड़ते हैं। और जो मैंने श्रेष्ठ चित्र देखा है, उसके बारे में कहने में असमर्थ हूँ। उससे राजन्! आप स्वयं ही चित्र को देखें। इस प्रकार कहते हुए दत्त ने चित्रपट को आगे किया। शंख राजा भी उस चित्र को देखकर विस्मित हुआ और पूछने लगा-चित्र में रही यह देवी कौन है? जो मेरे मन का हरण कर रही है? अथवा ऐसे रूप की संभावना नहीं है, किन्तु यह किसी शिल्पी के ही ज्ञान की कुशलता है।

दत्त ने कहा-राजन्! ध्यान से सुनें। आपने अधूरा ही देखा है। क्या वास्तविक रूप को चित्रित करने में कुशलता हो सकती है? अद्वितीय सुंदरता के निर्माण में विधाता की ही प्रवीणता है। राजा ने पूछा - क्या कमी है? जो चित्रपट लिखित होने पर भी कोई सर्वांग सुंदर देवी, मेरे मन को अत्यन्त आकर्षित कर रही है। हँसकर दत्त भी कहने लगा - आप मनुष्यस्त्री को देवीत्व की उपमा दे रहे हैं। दूसरी बात यह है कि देव की देवियाँ भी मानुष्य स्त्री हो सकती है, इसमें संशय की बात नहीं है। शंख राजा - अहो! क्या मानुष्य स्त्रियाँ ऐसी रूपवाली हो सकती हैं? दत्त ने कहा - क्या इसके हाव-भाव आदि लिखे जा सकते हैं? शिल्पी ने केवल आँखों के आनंद के लिए रूप चित्रित किया है। उसको प्रत्यक्ष देखकर, चित्र में देखी हुई स्त्री को आप कूटलेख के समान मानेंगे! शंख राजा ने पूछा - भद्र! यह किसकी पुत्री है? दत्त ने कहा - प्रभु! यह मेरी बहन है। शंख राजा - तो क्या तूने इसे देवशाल नगर में देखा था?

दत्त कहने लगा - मैं आपको सत्य हकीकत कहता हूँ। एक दिन मैं पिता की आज्ञा लेकर देश देखने की इच्छा से, सार्थ और बहुत सैनिकों से युक्त, देवशालदेश की सीमा पर पहुँचा। शीघ्रगामी घोड़े पर चढ़कर, नगरवासी सार्थ लोगों को मार्ग दिखाते हुए आगे जा रहा था। जब बड़ी अटवी में पहुँचा, तब

समीप की भूमि पर मृत घोड़े को पड़ा देखा और उसके पास ही सर्वांग सुंदर, भान रहित, मूर्च्छा से आँख मींचे एक पुरुष को देखा। उसकी मूर्च्छा दूर करने के लिए ठंडा पानी छांटा। क्रमशः वह होश में आया। मैंने सुंदर पक्वान से उसे भोजन कराया।

बाद में स्वस्थ शरीरवाले उससे मैंने मधुरवाणी में पूछा - हे सुंदर आकृतिवाले कुमार! तुम किस स्थान से आये हो? और इस जंगल में अकेले ऐसी दशा कैसे प्राप्त की? उसने कहा - यह भविष्य की कोई प्रतिक्रिया नहीं है। क्योंकि मैं देवनन्दी नामक देश से, घोड़े के द्वारा अपहरण करने से यहाँ आया हूँ। आपने प्राणदान देकर मुझ पर उपकार किया है। भद्र! आप भी बतलाये, आप कहाँ से आये हैं और कहाँ जायेंगे? दत्त ने भी कहा - मैं शंखपुर से यहाँ आया हूँ और अब तुम्हारे देश के भूषण देवशालनगर जानेवाला हूँ। हम दोनों का सार्थ एक हुआ है, उससे शीघ्र ही घोड़े पर चढ़ो। हम दोनों इस भयंकर अटवी को पारकर अपने इच्छित स्थान पर पहुँचे, इस कथन को स्वीकार कर हम दोनों वहाँ से, धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगे। जब हम दोनों अटवी को लांघकर सार्थ के साथ मिले, तब सामने खड़ी बड़ी सेना को देखी। घबराये सभी सार्थ के सुभट शस्त्र आदि सज्जकर तैयार हुए और युद्ध के लिए आगे आये। उतने में ही डरो मत, इस प्रकार कहते हुए कोई घुड़सवार आगे आया। उसने जयसेनकुमार को पहचानकर आनंद प्राप्त किया। इस घटना को जानकर, वहाँ विजयराजा आया।

कुमार ने विजयराजा को नमस्कार किया। राजा ने कुमार को गाढ़ आलिंगनकर बनाव के बारे में पूछा। कुमार ने भी अपनी सत्य हकीकत कह सुनायी। और कहने लगा- पिताजी! यह निःस्वार्थ बन्धु है। यह मुझे प्राण देनेवाला बन्धु है, इस प्रकार कहकर कुमार ने मुझे राजा को दिखलाया। विजयी विजयराजा ने भी मुझे आलिंगन किया। मैं देवशालनगर में आया और वहाँ इस प्रकार सुखपूर्वक रहने लगा जिससे कि मुझे माता-पिता आदि सब विस्मृत हो गये।

विजयराजा की श्रीदेवी की कुक्षि से उत्पन्न और जयसेनकुमार की छोटी बहन कलावती नामक कन्या थी। सुंदर रूपवाली वह कन्या, विद्याओं को सीखकर क्रम से यौवन अवस्था में आई है। पिता ने उसके अनुरूप वर को कहीं पर भी नहीं देखा। विजयराजा ने मुझे आदेश दिया - वत्स! मेरी पुत्री के लिए उचित वर का संपादनकर, मुझे शीघ्र ही चिन्ता समुद्र से बाहर निकालो। वैसे ही करूँगा, इस प्रकार स्वीकारकर, उसकी छवि को शीघ्र ही चित्रपट पर लिखवायी और अब मैं उस कन्या के लिए इस नगर में आया हूँ। राजन्! मैं मानता हूँ कि यह कन्या आपके ही उचित है। यहाँ आप ही प्रमाण है। इसके बाद अधिक क्या कहूँ? तभी मन्त्री आदि ने भी आनंद व्यक्त किया। इसी बीच समयज्ञ ज्योतिष ने कहा-

राजन्! अब देवपूजन का समय हो गया है। राजा ने भी सदस्यों को विदाकर आनंदपूर्वक देवपूजा की। राजा भोजनकर पलंग पर लेट गया और सोचने लगा- इस विधाता का कल्याण हो, जिसने कलावती का निर्माण किया है। पक्षियों के समान पंख से युक्त अथवा आकाश गमन में समर्थ पराक्रम से युक्त जो मनुष्य नहीं बनाये गये हैं, वह अच्छा नहीं हुआ है। जहाँ अपने प्रिय लोग रहते हैं, पक्षी वहाँ शीघ्र ही चलें जाते हैं, उससे अहो! मैं मानता हूँ कि मानवों से भी वे पक्षी श्रेष्ठ हैं। अहो! तो क्या धन्यमय महोदय होनेवाला है, जब मैं स्वयं अपने हाथ से इस प्रेयसी का हाथ ग्रहण करूँगा। इस प्रकार के विचार को, उल्लेख नहीं करने में विशेष उद्विग्नता धारण करनेवाले राजा ने पुनः प्रातःसमय होने पर, शीघ्र ही राजसभा को अलंकृत किया।

चारों ओर से सभी सामन्त लोग, राजा की सेवा में उपस्थित हो गये। वह सभा इन्द्रसभा की तरह स्पष्टतया शोभ रही थी। इसी बीच बड़े श्वासों से अपने कंठ को रोके कोई गुप्तचर पुरुष वहाँ आया और शंकारहित शंखराजा से निवेदन करने लगा-देव! आपके देश की सीमा में कोई महासेना आयी हुयी है। और दस दिशायें भी तूर्यवाजिंत्र के शब्द से पूरे जा रहे हैं। जल की इच्छा से, संचार करते सुभटों के द्वारा सभी जलाशय कलुषित आशयवाले दुर्जनों के समान तत्क्षण ही कलुषित कर दिये गये हैं। इस प्रकार सुनकर, राजा अन्य कार्यों को भूल गया और उसने भ्रूकुटी चढ़ाकर भयंकर आकृति धारण की। उग्र रोष से सुभटों से कहने लगा-सैनिकों! प्रयाण का नगारा बजाओ, कोश से समग्र युद्ध की सामग्री बहार निकालो और शीघ्रता करो। सैनिकों ने भी वैसा ही किया। जब राजा युद्ध के लिए प्रयाण करने की इच्छावाला हुआ, तब दत्त आकर आश्चर्य सहित शंखराजा से विज्ञप्ति करने लगा - अरे! व्यर्थ ही आप युद्ध की तैयारी क्यों कर रहे हो? ये कोई दूसरे नहीं है, किन्तु चित्रपट को देखकर, जिस पर आपका मन अत्यंत रागी बन गया था, वह कला से युक्त कलावती अपने बड़े भाई जयसेनकुमार से युक्त आपको वरने के लिए आ रही है। इस प्रकार के उसके वचन से सहसा ही अमृतरस से सिंचित के समान, राजा ने अपने चित्त का संताप दूरकर, उत्साह सहित दत्त से कहने लगा-क्या यह आश्चर्यकारी घटना इतनी शीघ्र बन गयी है? देव के अद्भुत पुण्य समूह से यहाँ क्या नहीं हो सकता है?

इसी बीच मतिसार नामक मंत्री शंखराजा को कहने लगा - राजन्! यह दत्त स्वामी भक्त, कृतज्ञ और अचिंत्य गुणवैभव से युक्त है। मैं मानता हूँ कि गंभीरता के कारण, यह स्पष्ट नहीं बोल रहा है किन्तु विजयराजा के सामने अपने स्वामी के गुण की उत्कृष्टता के बारे में वर्णन किया है। उससे यह कलावती आपको नहीं देखने पर भी, आप पर रागवाली बनी है। पिता विजयराजा ने

आपको वरने के लिए आदर सहित कलावती को भेजा है। दत्त भी उसके साथ ही चला होगा, किन्तु अपने स्वामी को निवेदन करने के लिए यह पहले इधर आया है। दत्त ने कहा - अहो! मतिसार मन्त्री की आश्चर्यकारी बुद्धि है, जिसने बिन सुने और बिन देखे ही वस्तु को साक्षात् कर दी है। यह सब सुनकर सभी सभाजन आनंदित हुए। तब राजा ने उनको आदेश दिया - सदस्यों! प्रकट प्रयत्नवाले तुम सब, अब जो उचित कार्य है, वह करो!

इसी बीच उत्तम परिवार से युक्त, जयसेनकुमार भी वहाँ आ गया और उसे सुंदर महल में आश्रयस्थान दिया गया। दिन की शेष रही रात्रि को वहाँ बीताकर, कामदेव के सदृश कुमार प्रातःकाल में राजसभा में गया। कुमार ने राजा को देखकर प्रणाम किया और भेंट रखी। शंखराजा ने कुमार से आलिंगन किया और स्वागत वचन कहा। तब कुमार के वरांग नामक मंत्री ने कहा - राजन्! हमारे स्वामी के आगे, दत्त ने इस प्रकार आपके गुणों का वर्णन किया था, जिसे सुनकर आपके गुणों पर रागी बने हमारे राजा ने कलावती के विवाह के लिए यहाँ भेजा है। आपके सिवाय इसका मन कहीं पर भी नहीं बहल रहा है। इसलिए प्रमोद धारणकर इसके हाथ को अपने हाथ से ग्रहण करें। इसने अपनी माता का भी कभी अप्रिय नहीं देखा है। उससे राजन्! आप अत्यन्त प्रेमपूर्वक यथोचित व्यवहार करें। सुंदर सामग्री प्राप्तकर हाथी, विंध्य पर्वत को याद नहीं करता है, वैसे ही कलावती भी अपने पिता के घर को याद न करे। तब श्री शंखराजा ने कहा-अहो! विजयराजा का चित्त विचित्र है, जो हमारे गुणों से भी रागी हो गया है। पिता के स्वर्गवास होने पर, बालक होते हुए भी मैंने राजपद प्राप्त किया है। इतने मात्र से क्या हम गुणीजनों में अग्रगणनीय बन गये? गुण रूपी समुद्र इस विजयराजा के वचन मुझे पालन करने चाहिए, इस प्रकार शंख राजा ने कुमार से कहा। निश्चित दिन के आने पर, सुंदर गीत-गान आदि आडंबर पूर्वक कुमार ने वर-वधू का विवाह कराया। जयसेनकुमार ने करमोचन के समय हाथी, घोड़े, रथ, स्वर्णादि दिये और कितने ही दिन पर्यंत वहाँ रुका। पश्चात् गद्-गद् सहित कुमार ने शंखराजा से वापिस लौटने की आज्ञा माँगी। राजा के हाँ कहने पर अनुक्रम से कुमार देवशालनगर पहुँचा।

कलावती की कला कोई अद्वितीय ही मालूम पड़ रही थी। उसने अपने गुणों से विशाल भी राजा के मन को काबू में कर लिया था। अन्य दिन सुखपूर्वक निद्राधीन बनी कलावती ने रात के समय, चंदन से लेप किये गये, क्षीरसमुद्र के पानी से भरा हुआ, कमल से ढंका और अपने उत्संग में रहा स्वर्णकलश को स्वप्न में देखा। तब हिरण के समान नेत्रवाली वह कलावती जाग गयी। प्रातः समय उसने यह बात राजा से निवेदन की। राजा ने पुत्र प्राप्ति की बात कही। रत्न

गर्भ के लिए भंडार समान कलावती ने गर्भ धारण किया। प्रायः कर पुत्री पहले अपने पिता के घर ही प्रसूति करती है। इसलिए पिता विजयराजा ने कलावती को बुलाने के लिए माननीय पुरुषों को भेजा। अपनी बहन के लिए जयसेनकुमार ने अपने हाथों के दोनों कडे भेजे और राजा ने भेंट के रूप में दिव्यवस्त्र दिये।

उत्सुकतावाले वे सभी विश्वसनीय पुरुष संध्यासमय शंखपुर आये और राजा के द्वारा प्रदत्त महल में रुके। इसी बीच कलावती किसी काम से वहाँ आयी। तब उन्होंने कुमार के द्वारा दिये गये हाथ के कडों को भेंट किया। प्रातः राजा को दिखाऊँगी, इस प्रकार कहकर कलावती हर्ष सहित अपने महल की ओर चली गई। अत्यंत हर्ष से पुलकित कलावती ने, सखिजन के समक्ष उन दोनों कडों को धारण किए। जब कलावती खुद को निहारने लगी, तब कुतुहलवश राजा उसके महल के समीप आया। हर्ष से कोलाहल व्याप्त होने पर, राजा सावधान होकर उनकी बातें सुनने लगा। अपनी मालकीन के हाथों में कडें देखकर, सखी भी पूछने लगी - देवी! ये आभूषण किसने भेजे हैं?

कलावती भी कहने लगी-जिसके हृदय में मैं रही हुई हूँ और जो मेरे मन में रहा हुआ है उसने भेजे हैं। इन कडों को देखने से मैंने साक्षात् ही इसके मालिक को देख लिया है। भुजाओं में धारण करने से, मैंने साक्षात् ही उसकी चेतना से आलिंगन कर लिया है। सखि! मेरा मन क्षणमात्र के लिए भी उसको भूला नहीं पा रहा है। नाम रहित केवल कटाक्ष वचनों को सुनकर, शंख राजा सैंकडों कुविकल्प और ईर्ष्या के वश हुआ। राजा सोचने लगा-इसके चित्त को आह्लादित करनेवाला कोई प्रेमी है। और इसने मुझे कपटीप्रेम से वश किया है। मैं तो केवल इसके विनोद के लिए ही हूँ। वंश की शत्रु और कुलटा इसे मैं शीघ्र ही मार डालूं अथवा इसके प्रेमी को मार डालूं। अहो! अकार्य करने में तत्पर, धृष्टता से व्याप्त, हाथी के कान के समान चंचल चित्त नारियों में दिखायी देता है!

शंख राजा ने क्रोध से उग्र स्वभाव को धारण किया। उसने बिन विचारे, रात्रि के समय निष्करुण नामक सुभट को बुलाकर इस प्रकार आदेश दिया-देवी कलावती को शीघ्र ही निर्जन वन में छोड़ देना। किसी को मालूम न पड़े, वैसे इस कार्य को करना। सुभट ने रथ तैयार किया। कलावती के पास जाकर कहने लगा-हाथी पर बैठकर राजा क्रीड़ा करने कुसुम उद्यान गये हैं। आपको बुलाने के लिए राजा ने मुझे आदेश दिया है। मैं आपको वहाँ छोड़ देता हूँ। आप शीघ्र ही रथ में बैठे। सरलता के कारण, कलावती भी रथ में बैठ गयी। निष्करुण सुभट ने घोड़ों को दौड़ाये। देवी ने पूछा-राजा कितनी दूरी पर हैं? सुभट ने कहा-आगे हैं। सामने भयंकर अटवी शुरु हो गयी थी और रात भी विशेष बीत गयी थी! राजा को नहीं देखने पर देवी अत्यन्त आकुलित होने लगी और सुभट से पूछा-हा! हा! यह तो

भयंकर अटवी है। राजा दिखायी नहीं दे रहे हैं और उद्यान भी? तो क्या तुम मुझे ठग रहे हो? न तो वाजिंत्रों का घोष सुनायी दे रहा है और न ही मनुष्यों का कोलाहल! क्या यह स्वप्न है अथवा इंद्रजाल? जो सत्य हकीकत है, वह कहो।

कलावती के दीन वचनों को सुनकर, निष्करुण सुभट भी अत्यन्त करुणाशील बन गया और देवी को जवाब देने में असमर्थ हुआ। देवी के अत्यन्त आग्रह से निष्करुण सुभट रथ से नीचे उतर गया। शोकपूर्वक, अस्पष्ट शब्दों में दुःख से कहने लगा-निष्करुण (करुणा रहित) मुझको धिक्कार हो। क्योंकि यह कार्यकर मैंने अपने नाम को यथार्थ कर दिया है। अहो! राजसेवा की परवशता से मुझसे यह कार्य करवाया गया है। स्वार्थ परवशता के कारण मुझे धिक्कार हो। स्वामी का अच्छा-बुरा कार्य भी नौकर को करना पड़ता है। इसलिए मैं आप से आग्रह कर रहा हूँ कि आप रथ से उतर जायें।

राजा का ऐसा आदेश है। दूसरा इसके बारे में मैं कुछ नहीं जानता हूँ। वज्रपात से भी अधिक कर्णकटु उस वचन को सुनकर देवी रथ से उतरते समय भूमि पर गिर पड़ी और मूर्च्छित हो गयी। बाद में वन के पवन से होश में आयी। रथ पर चढा हुआ निष्करुण भी करुणा से रोने लगा। देवी ने दीनता युक्त विलाप किया। उतने में ही छोटी तलवार को नचाती हुई और साक्षात् प्रेत की प्रियाओं के समान राजा के द्वारा नियुक्त की गयी चांडाल की स्त्रियाँ वहाँ आयी। निष्कारण ही उन्होंने अत्यन्त क्रोध धारण किया और भ्रूकुटी चढ़ाकर कहने लगी - रे दुष्ट! खराब चेष्टा करनेवाली! तू राजा के न्याय को नहीं जानती है। तूने प्रतिकूल वर्तन किया है। उससे अपने पाप का फल भोग इत्यादि कठोर वचनों से कलावती की निंदा करने लगी। और तलवार से कडों से विभूषित दोनों हाथों को काट दिये। अहो! निरपराधी को भी यह कर्मविपाक दंड करता है! पश्चात् वे वहाँ से चले गये।

कलावती सोच रही थी। रावण ने सीता का अपहरण किया। सीता ने वचन से अगम्य दुःख प्राप्त किया। नल ने निर्मल चरित्रवाली अपनी पत्नी दमयंती को वन में त्याग दी। द्रौपदी ने कर्म से उत्पन्न वन के कष्टों को खुद के शरीर से सहन किये। गांधारी ने भी अपने पुत्रों का दुःसह्य शोक प्राप्त किया। महासतीयों ने नित्य बड़ी आपदाएँ सहन की है। उससे यह निश्चय होता है कि पूर्व में बांधे कर्म को भोगे बिना कभी क्षय नहीं होते है। हे पिता! हे माता! इत्यादि बोलती हुई कलावती भूतल पर लोट गयी और ऊँचे स्वर में विलाप करने लगी। भाग्य! तू निर्दय बनकर अचिंतनीय खुद के कर्म का यह भयंकर दुःख रूपी फल क्यों दे रहा है? आर्यपुत्र! आपने भी बिना विचारे यह कार्य किया है। योग्य-अयोग्य का विचार करने में समर्थ महापुरुषों को ऐसा करना उचित नहीं है। प्रिय!

मैंन जानबूझकर कुछ भी विपरीत आचरण नहीं किया है। मैंने अनजान में कुछ गलती की हो तो, ऐसा दंड क्यों दिया? देव! आपने वह प्रेम, वह सेवा, वह संभाषण आदि सब कुछ क्षणमात्र में ही भूला दिया। इस प्रकार कलावती अत्यन्त विलाप करने लगी। इतने में ही उसका पेट आकुलित होने लगा। अपने प्रसूति का अवसर जानकर, वह शर्म से नदी के तट की ओर चली गयी। उसने वन की झाड़ी में, तपे स्वर्ण की कांति सदृश पुत्र को जन्म दिया। विशाल नेत्रवाले उस बालक को देखकर, कलावती अत्यन्त आनंदित हुई।

पुत्र जन्म रूपी संजीवनी प्राणी को विपत्ति आने पर भी सुख देता है। भारी शोक से हृदय भर जाने पर भी हँसाता है, और मृतप्रायः को भी जीवित कर देता है। इसी बीच वह बालक नदी के तट पर, यहाँ-वहाँ लोटने लगा। कलावती ने भी जैसे-तैसे कर अपने पैरों से प्रेमपूर्वक बालक को पकड़ लिया। और करुणा सहित कहने लगी-हे निर्दयी भाग्य! इतना करने पर भी क्या तू खुश नहीं हुआ है? जो स्वयं आज मुझे पुत्र देकर अपहरण करना चाहते हो? वे वाघण अथवा वे कुत्तियाँ भी धन्य हैं, जो अपने दांतों के अग्र भाग से, अपने बालकों को पकड़कर, अपने इच्छितस्थान पर पहुँच जाती हैं। हे परमेश्वरी नदी! हे माता! इस समय मैं तुझे सविनय नमस्कार करती हूँ। मेरे पुत्र का अपहरण मत करना, क्योंकि तुम प्राणियों को जीवनदाता हो। यदि जगत् में शील जयवंत है, यदि जरा भी मैंने शील को कलंकित न किया हो तो हे ज्ञाननेत्रवाली देवी! तुम मेरे बालक के पोषण का उपाय कर। यदि इस जन्म में, मैंने मन, वचन, काया से सुंदर शील का पालन किया हो, तो मेरे दोनों बाहु वापिस प्रकट हो जायें। दिव्य शील के प्रभाव से, दया परायण नदी देवी ने कलावती के दोनों बाहु क्षणमात्र में ही नवीन कर दिये। बाहु के दर्शन से, अमृत से सिंचित के समान अपूर्व शरीर की शोभा धारण की। कलावती खुद को देवी के समान मानती हुई अपने हाथों से पुत्र को ग्रहण किया। पुत्र को अपने अंक में रखकर क्षणभर के लिए खुश हुई। बाद में तथा प्रकार के दुःख का स्मरण कर रोने लगी। मुझे जीवन से क्या प्रयोजन है? जिससे तिरस्कार पात्र बनी थी। किन्तु इस अनाथ पुत्र को छोड़ने में मैं असमर्थ हूँ। दूसरा सोचा था और भाग्य के वश से अन्य ही घटित हो गया। निर्भाग्यवंतों का हृदय में सोचा कभी नहीं होता है।

मैंने सोचा था कि पुत्रजन्म का महोत्सव पिता करेंगे। किन्तु भाग्य के वश से भयंकर परिणाम सामने आया है। हा! तुच्छ मनोभाववाले, स्नेहरहित और निर्दयी मनुष्यों को धिक्कार हो, जो कभी कृत्याकृत्य का विचार नहीं करते हैं। तत्क्षण स्नेह दिखानेवाले और तत्क्षण ही संताप देनेवाले जो मनुष्य हैं, वे सूर्य के समान दूर से ही वंदनीय हैं। इस प्रकार विलाप करती कलावती को किसी तापस

ने देखा और कुलपति के सामने ले गया। कुलपति के द्वारा पूछने पर कलावती ने अपना वृत्तान्त कह सुनाया। धीरज धारणकर उसने रोती कलावती को आश्वासन दिया और कहा-भद्रे! तुम तापसी के आश्रम में रहकर अपने पुत्र का पालन करो। अतिशीघ्र ही तेरा कल्याण होगा। कुलपति के वचन से, कलावती भी वहाँ रुक गयी।

इधर उन चांडाल की स्त्रियों ने एकांत में, राजा के सामने कडे सहित काटे हुए उन दोनों भुजाओं को लाकर रख दिये। जयसेनकुमार नाम से अंकित उन दोनों कड़ों को देखकर राजा सोचने लगा-हा! बिन विचारे मैं पाप कर बैठा। उस बात की प्रतीति के लिए संशय से युक्त राजा बार-बार दत्त से पूछता। जब कोई देवशालनगर से आता, वह भी यही कहता था। विजय राजा के विश्वसनीय पुरुष मेरे घर में रहे हुए हैं और कलावती देवी से मिलने के लिए यहाँ आये हैं। तब शंखराजा ने भी उन्हें बुलाकर पूछने लगा-लोगों! तुम जवाब दो कि इन दोनों कड़ों को किसने भेजा है? हर्ष से वे भी जयसेनकुमार का नाम लेने लगे। इस प्रकार उनके इस वचन को सुनकर मूर्च्छा के आवेश से राजा शीघ्र ही भूमि पर गिर गया। जैसे-तैसे कर होश में आया और हृदय में सोचने लगा-मैंने खराब कार्य किया है। अहो! मेरी निर्दयता! अहो! मेरी कर्म चांडालता! इस प्रकार सोचते हुए पुनः मूर्च्छित हो गया। मंत्री आदि सभाजनों के पूछने पर आँसु बहाते हुए शंखराजा कहने लगा-ओहो! मैं लूंटा गया हूँ। मैं दुष्ट हूँ। मेरा मुख देखने लायक भी नहीं है। मेरा चरित्र अपवित्र है। कुल की लज्जा का विचार न कर, जरा भी दोष रहित इस कलावती को मुझ पापी ने यमराज के घर पहुँचा दिया है। इसलिए पाप से भारी बना मैं, अपना मुख कैसे दिखलाऊँ? इस स्त्रीघात के पाप से मुझे नरक में भी स्थान नहीं मिलेगा। अब काष्ठों को शीघ्र ही तैयार करो, जिससे की अग्निप्रवेश के द्वारा अत्यन्त शोक से संतप्त मैं शीघ्र ही शोक को नष्ट कर दूँ।

वज्रपात के समान, राजा के उस वचन को सुनकर मंत्री आदि सभालोग कहने लगे-स्वामी! आप घाव के ऊपर नमक छिड़कने के समान कार्य मत करो! पहले भी एक अयोग्य कार्य हो चूका है। अगर आप दूसरा अयोग्य कार्य करेंगे तो पृथ्वी आज ही अनाथ बन जायेगी। चिर समय तक राज्य का परिपालन कर, अत्यन्त क्रूर शत्रुओं का संहार करे। अगर आप अब राज्य छोड़ देंगे, तो राज्य की व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो जायेगी। आपके कुल का क्षयकर, आप अपने शत्रुओं के मनोरथों को सफल न करें। हे देव! करुणा सागर! इसलिए आप शीघ्र ही हमारे ऊपर प्रसन्न बने। मत्त हाथी जिस प्रकार अंकुश की अवगणना करता है, वैसे ही राजा भी मंत्रियों के वचनों की अवगणना कर, अग्नि में प्रवेश करने की इच्छा से, शंख राजा उद्यान जाने की तैयारी करने लगा। इतने में ही युक्ति करने में निपुण,

गजश्रेष्ठी ने अवसर प्राप्तकर राजा से विज्ञप्ति करने लगा-राजन्! वाहन शीघ्र ही आ जायेगा। यहाँ देव उद्यान में देवाधिदेव प्रथम तीर्थंकर का मंदिर है। आप वहाँ पधारकर देवपूजा आदि पुण्य करें। और चार ज्ञान के धारक श्री अमिततेज गुरु यहाँ पधारे हुए हैं, उन्हें वंदनकर अपने जन्म को सफल करें। इष्ट वस्तु थी और वही वैद्य ने खाने को कहा। परलोक के मुसाफिरों के लिए यह भी एक हितकारी भोजन है। इस प्रकार मानता हुआ राजा जिनमंदिर गया और विधिवत् भगवान् की पूजा की। गुरु को नमस्कारकर, कृपा से कोमल बने राजा ने उनकी इस प्रकार की देशना सुनी-दुःख रूपी तरंगों से यह संसार समुद्र अपार है। उसमें जहाज के समान, जिनेश्वर द्वारा प्ररूपित यह धर्म शोभ रहा है। यह धर्म क्रोधादि शत्रुओं को जीतने से ही आराधा जा सकता है, क्योंकि क्रोधांध व्यक्ति कार्य-अकार्य, हित-अहित को नहीं जान सकता है। क्रोध से उन्मत्त बना प्राणी, जानते हुए भी बार-बार वही आचरण करता है, जिससे इहलोक और परलोक में अत्यन्त दुःख के समूहों को प्राप्त करता है।

राजन्! क्रोध के वश से तूने भी पभ राजा के समान खुद का अनर्थ किया है। यह पभ राजा कौन है? इस प्रकार राजा के पूछने पर सूरि भगवंत ने कहा-

प्राचीन समय में पभपुर नामक नगर था। वहाँ पर पभ राजा राज्य करता था। एकदिन राजा राज्य की परीपाटी करने निकला। तब अपने भवन के ऊपर सखियों के साथ क्रीडा कर रही वरुण श्रेष्ठी की पुत्री कमला को देखकर, विस्तृत अंतःपुर वाला होते हुए भी राजा उस पर मोहित हुआ। कहा भी गया है कि - लोभी पुरुष धन से, कामुक स्त्रियों से, राजा पृथ्वी से तथा विद्वान सुभाषितों से। जगत् में इन्होंनें (लोभी, कामुक, राजा, विद्वान) कभी तृप्ति प्राप्त की है? हर्ष की प्रकर्षता से कन्या की माँगकर, राजाने बहुत आडंबरपूर्वक उसके साथ विवाह किया। दूसरे ही दिन परचक्र के साथ युद्ध के विचार में उलझा, राजा कमला को भूल गया और उससे वह अपने पिता के घर में ही रहने लगी।

कितने ही काल के बाद, प्रौढ अवस्था को प्राप्त कमला के देखकर - यह युवति कौन है? इस प्रकार राजा ने अपने मंत्री से पूछा। उसने कहा - प्रभु! पहले आपने आदर सहित जिस वरुणश्रेष्ठी की पुत्री के साथ विवाह किया था, वह यह ही आपकी पत्नी है। पभ राजा उस प्रसंग का स्मरणकर सोचने लगा - हा! मैंने इस पत्नी को पीड़ा पहुँचायी है। परंतु पति के परदेश जाने के समान इसने हलके वस्त्र क्यों धारण किये है? अतिदुर्बल क्यों है? तथा मंगल के लिए कंगण क्यों धारण किए है? मंत्री ने कहा - प्रभु! कुलीन स्त्रियों का यह आचार है कि पति के विरह में, वे शील रूपी आभरण से विभूषित होकर श्रृंगार आदि नही करती हैं।

सदाचारी कुलीन स्त्रियाँ कामाग्नि के द्वारा जलाये जाने पर भी वृक्ष के समान सूख जाती है, किंतु शील से भ्रष्ट नही होती है।

राजा ने कमला को बुलाने के लिए अपने मंत्री को भेजा। तब उसके माता-पिता ने 'महाप्रसाद है' इस प्रकार कहकर पुत्री को भेज दी। राजा ने अपनी भूल के लिए कमला से क्षमा माँगी। उसने कहा प्राणेश! सर्वत्र सावधान ऐसे आपसे प्रिया की विस्मृति कैसे हो सकती है? परंतु निष्पुण्य स्त्रियों को ही अपने स्वामी के दर्शन नही होते है। पश्चात् राजा उसके कामकला के चातुर्य को देखकर शंकाशील हुआ। और उसे दुःशील मानने लगा। क्या इसे मैं अपने हाथों से मार दूँ? किंतु सज्जनों के लिए स्त्री अवध्य है। ऐसा विचारकर राजा ने मंत्री को बुलाया और कहा - इस पापिनी को गुप्त रीति से छोड़ दो। मंत्री ने एकांत स्थान में उसे स्थापितकर आश्वासन देने लगा। और किसी भी प्रकार से राजा को अपनी भूल समझाने के लिए प्रयत्न करने लगा। एक दिन राजा को नमस्कारकर मंत्रीश्वर विविध कथाएँ कहने लगा। तब विष्णुकंठ ने कहा - सदस्यों! यहाँ पर एक आश्चर्यकारी घटना घटित हुई है। सभ्यों के द्वारा पूछने पर, उसने इस प्रकार कथा प्रारंभ की -

इस नगर में गुणों से श्रेष्ठ तथा व्यापारियों में अग्रगणनीय ऐसा धन्य नामक श्रेष्ठी हुआ हैं। उसकी श्री नामक पत्नी थी! उन दोनों को चार पुत्र थे - धन, धनद, धर्म और सोम। पिता ने यौवन - अवस्था में आने के बाद उन चारों का विवाह किया। बूढापे में धन्य बीमारी से ग्रसित हुआ। वैद्यों से रोग को असाध्य जानकर उसने अपने सकल स्वजन को बुलाया और प्रत्येक से क्षमा माँगी। तब स्वजनोंने कहा - श्रेष्ठी! आपका धन्य नाम यथार्थ है। आपने अपनी भुजाओं से धनार्जन किया तथा स्वजनों का पोषण किया है। सातक्षेत्रों में भी बहुत धन बोया है। किंतु माता-पिता के मर जाने के बाद, पुत्र परस्पर विवाद करने लग जातें हैं। इसलिए आप हमारी साक्षी में पुत्रों को समभाग में धन विभाजीतकर दें। जिससे इनके बीच झगडा न हो तथा आपका यश भी बढ जायगा। तब धन्य ने कहा - पुत्रों! तुम्हें परस्पर प्रीतिपूर्वक रहना चाहिए। अथवा यदि प्रीति से निर्वाह न हो, तो चारों कमरों की दिशाओं में चार कलश है। तुम यथाक्रम से ग्रहण कर लेना। इस प्रकार कहकर श्रेष्ठी स्वर्गवास हो गये।

कितने ही काल तक पुत्र परस्पर सुखपूर्वक रहें, किंतु स्त्रियों का हृदय परस्पर अलग - अलग होने लगा। तब उन्होंने पिता के द्वारा निर्देश किए गये कलशों को निकाला। धन के कलश में धूल, धनद के कलश में अस्थि, धर्म के कलश में वहि और सोम के कलश में स्वर्णमुद्राएँ निकली। तीनों भाई भी वज्रपात के समान भूमि पर गिर पडें और दुःखित होनें लगें। स्वजनोंने सोम से कहा -

सभी धन को चार भागों में विभाजित करो। सोम ने कहा - तुम्हारें कर्म के दोष से ही धन, धूल आदि के रूप में परिवर्त्तित हुआ है। इसमें मेरा क्या दोष है? स्त्रियोंने कहा - मूढ! तुम संपूर्ण धन पर लुब्ध क्यों हो रहे हो? इस प्रकार वे परस्पर विवाद करने लगे। सज्जन पुरुषों नें कहा - तुम दरबार में जाकर इसका फैसला करो, जिससे तुम्हारें कुल में अनर्थ न हो। उन्होनें छह महीने तक नित्य धर्मधिकरण की सेवा की, परंतु प्रधानोंनें कोई व्यवस्था नही की। राजन्! आपको इस विषय में ध्यान देना चाहिए। तब हंसकर राजा ने पूछा - किसी ने विवाद का निर्णय किया था अथवा नही? उसने कहा - देव! किसी ने भी नही किया। उससे वे निराश होकर विदेश चले गएँ।

किसी गाँव में सुखपूर्वक बैठे पशुपालक को देखकर, उन्होनें नमस्कार किया और सामने बैठ गएँ। पशुपालक ने पूछा-कहाँ से आएँ हो? कहाँ जाना है? उन्होनें सर्व व्यतिकर सुनाया। पशुपालक ने कहा - तुम्हारें पिता पंडित और हितकर्त्ता है। उन्होनें जिसके लिए जो योग्य है, वह ही दिया है। समस्त कृषिकर्म धन को चतुष्पद आदि सर्व धनद को, दूकान, व्यापार, पैसा ग्रहण आदि सब धर्म को। तथा सोम बालबुद्धि धारक होने से वह व्याज के कर से सुखी होगा। पुनः धन तो बिजली के समान अनित्य है, अर्कवृक्ष के कपास के समान असार है। इसके लिए तुम्हें कलह नहीं करना चाहिए। क्योंकि लालन-पालन करने पर भी स्वजन दूर हो सकतें है, कष्ट में क्रोधित होने पर भी भाई ही सहायक होतें हैं। वृद्ध पशुपालक की बातें सुनकर, वे कदाग्रह रहित बनें और परस्पर क्षमा याचना माँगकर नयें जन्म के समान खुश होते हुए नगर में महोत्सव मनाया।

विष्णुकंठ के द्वारा कही गयी उस कथा को सुनकर सभी आश्चर्यचकित होकर कहनें लगें - अज्ञात ग्रामीण ने उस विवाद का समाधान कैसे किया? यह बात सुनकर राजा विचाराधीन हुआ - यदि उस पशुपालक ने कल्पनातीत के विषय में दूर रहकर ही समाधान कर लिया था, तो शास्त्रज्ञ ऐसी कमला को काम में कौशल्य होगा ही। वैसी स्त्रीरत्न के विनाश करने से मैं अनार्य, निर्लज्ज, अभागी हूँ। राजा चिंताग्रस्त होकर मंत्री से कहने लगा - मैं महापापी हूँ। अब मैं अपनी प्रिया के बिना प्राण धारण करने में असमर्थ हूँ। इसलिए मैं चिता में प्रवेश करना चाहता हूँ। तब मंत्री ने रहस्य में कहा - देव! मैंने आपकी आज्ञा का पालन किया है। मैंने जीवित देवी को रहस्य में छिपा रखी है। राजा आनंदित होते हुए कहा - मित्र! इसकी रक्षा कर, तूने मुझे भी जीवन-दान दिया है। राजा ने कमला को बुलाकर क्षमा माँगी और वे दोनों अत्यंत प्रीतिपूर्वक रहनें लगें।

जिस प्रकार पभ राजा ने पहले खुद को दुःख में डाला तथा दृढ जडता से पीडित हुआ, वैसे तुम भी खुद को दुःखित कर रहे हो। इस लिए तत्त्व के

जानकर मनुष्यों को क्रोध छोड़कर धर्म में बुद्धि का उपयोग करना चाहिए। दूसरे प्राणियों के वध के कारण, खुद के प्राणों की आहूति करने से अधिक पाप होता है। इस प्रकार जानकर राजन्! तू भी इस कदाग्रह रूपी ग्रह को छोड़ दो। मन को संयम में रखकर, चित्त में क्षमा धारणकर, श्री जिनधर्म को स्वीकारकर इहलोक-परलोक में सुखी बनों।

गुरु की वाणी सुनकर राजा ने कहा - पूज्य! दुःख रूपी दावानल से जलाएँ जाने पर, उस कथा से भी क्या प्रयोजन है? इस लिए आप मुझे धर्मशंबल प्रधान करे। गुरु ने कहा - महाराज! दुःख से पीडित होकर तुम मरना चाहते हो, किन्तु विशेष से दुःख प्राप्त करोगे! यहाँ पर यह कथानक सुनो -

गंगा के तट पर स्थित किसी मंडल में षट्कर्म में निरत तथा शौचाचारवाला कपिल नामक ब्राह्मण रहता था। एकदिन वह अपने चित्त में सोचने लगा - विष्टा, मूत्र आदि से अपवित्र मार्ग पर जातें हुए ब्राह्मणों का शौचाचार कैसे हो सकता है? और मनुष्य, कुत्ते, बिल्ली आदि का मूत्र, विष्टा पानी के प्रवाह में बहकर जलाशय में गिरतें हैं। उनमें स्नान करने से ब्राह्मणों की शुद्धि कैसे हो सकती है? उसने एक नाविक से समुद्र के मध्य में रहे तथा इक्षुओं से भरे अभयद्वीप के बारे में सुना। निधि प्राप्ति के समान यह सुनकर कपिल आनंदित हुआ और नाव में बैठकर उस द्वीप में पहुँचा। वहाँ पर इक्षुओं के रस का आस्वादन लेता था और तीनों काल चांडाल के कूएँ में स्नान करता था। इस प्रकार सुखपूर्वक समय बिताने लगा। इक्षु दंड से कभी उसके होंठ विदारण हो गये। तब कपिल सोचने लगा, यदि इक्षु के फल होते तो सुंदर होता। स्वदेश में तो इक्षु पर फल नहीं आते, किन्तु इस द्वीप के प्रभाव से फल आ सकते हैं। ऐसा विचारकर वह इधर-उधर देखने लगा। उतने में ही किसी व्यापारी के शुष्क विष्टा को फल की भ्रांति से खा लिया। कितने ही दिनों के बाद उसने वहाँ पर किसी व्यापारी को देखकर वह उससे संभाषण करने लगा। व्यापारी ने कहा कि - जहाज के तूट जाने से, फलक की सहायता से इस द्वीप में आया हूँ। कपिल ने पूछा - देह का पोषण किससे करते हो? उसने कहा - इक्षु भक्षण से। कपिल ने पूछा - क्या तुम इक्षु के फल को खाते हो? व्यापारी ने पूछा - वे फल कैसे होते है? कपिल ने कहा - मैं तुझे दिखाता हूँ इस प्रकार कहकर उसने वहाँ पर पडी विष्टा दिखायी। उन कल्पित फलों को देखकर, व्यापारी दुःखित हुआ और सोचने लगा - अज्ञानता से इसने विष्टा को भी फल मान लिया है। व्यापारी ने पूछा - भद्र! रस कैसा है? इसे खाते हुए कितना काल हुआ है? कपिल ने कहा - इसका मधुर रस है और एक महीने से इसे खा रहा हूँ। व्यापारी ने कहा - तुम अशुचि से डरकर यहाँ पर आएँ थे, किंतु तुम खुद ही उसका भक्षण कर रहे हो। यह बात सर्वविदित है कि इक्षु के

फल नही होते है। तूने अश्रद्धाकर विष्टा भक्षण से खुद की आत्मा को ही अपवित्र बना दी है। कपिल ने पूछा - मनुष्य रहित इस द्वीप में विष्टा कहाँ से आ सकती है? उसने कहा - यह मेरी और तुम्हारी है। तो कठिन क्यों है? व्यापारी ने कहा - बहुत दिनों से रहने के कारण। यह बात जानकर कपिल शोक करने लगा।

व्यापारी ने समझाया - तुम स्नान से स्वर्ग, मोक्ष के निबंध पुण्य मानते हो। यह तेरा महान् मोह है। उस स्नान से देह का अन्तर्मल भी शुद्ध नही होता है, तो आत्मा पर रहा पाप कैसे शुद्ध कर सकता है? स्नान तो अभिमान, राग आदि को बढ़ाता है। शिवपुराण में भी कहा है कि - पापकर्म अशुचि है और शुद्धकर्म शुचि है। इसलिए शौच कर्मात्मक है, पानी के द्वारा शौच निरर्थक है। सर्व प्राणियों पर समता, मन-वचन-काया का निग्रह, पापध्यान और कषायों के निग्रह से शुचि होती है। एकादशीपुराण में भी कहा गया है कि - गंगा उससे पराङ्मुख है जिसका चित्त राग आदि से क्लिष्ट है, झूठें वचनों से मुख, जीव घात आदि से काया क्लिष्ट है। गंगा के बिना भी यह शुद्ध है-जिसका चित्त क्षमा आदि से शुद्ध है, सत्यभाषणों से वचन तथा ब्रह्मचर्य आदि से काया शुद्ध है। गंगा भी कहती है कि - पर स्त्री, पर द्रव्य से पर द्रोह से पराङ्मुख व्यक्ति कब आकर मुझे पवित्र करेगा।

लेकिन कपिल! देवपूजन करने के लिए उत्तम पुरुषों को सदैव स्नान अवश्य कर्त्तव्य है। इसलिए ही लोक में यह बात प्रसिद्ध हुयी है कि स्नान धर्म के लिए होता है। परंतु बहुत जल से भी समग्र बाह्यमल की शुद्धि नही होती है तो कर्ममल को कैसे शुद्ध कर सकता है? इसलिए धर्मार्थी के द्वारा शक्य परिहार्य है, अशक्य नही। व्यापारी की बातें सुनकर कपिल ने बोध पाया और पुनः अपने देश में लौटकर स्वजन-संबंधी से मिला। प्रायश्चित्त स्वीकारकर शुद्ध बना और सर्वदर्शन मान्य शौचाचार का पालन करने लगा।

राजन्! अशुचि से डरते कपिल ने जिस प्रकार अशुचि का भक्षण किया, वैसे ही तुम भी दुःख के भय से मरकर दुःख ही प्राप्त करोगे। पाप से दुःख होता है और प्राणिघात से पाप होता है। परप्राणों के घात से भी स्वप्राणों का घात विशेष है। धर्म से पाप क्षय होता है, दुःख भी नष्ट हो जाता है। इस लिए तुम निश्चिंत बनो और जिनधर्म का पालन करो।

दूसरी बात यह है कि हम निमित्त के बल से यह जान रहे हैं कि-तेरा ऐसा करने पर भी, कलावती अखंड देहवाली है और भविष्य में तुम उससे मिलोगे भी। बाद में अत्यंत उन्नति प्राप्त कर, आनंद समूह से भरा हुआ तू एक दिन राज्य को भी छोड़कर शीघ्र ही दीक्षा ग्रहण करेगा। राजन्! मेरे वचन से तू एक दिन के लिए प्रतीक्षाकर। विश्वास होने के बाद तुझे जो अच्छा लगे वह करना। इस प्रकार

सूरि भगवंत के वचनों से अत्यंत आनंद के आवेश से खिल उठे राजा ने गुरु के समीप रहकर ही वह दिन बिताया। रात्रि के समय शंख राजा उसी उद्यान में सो गया। जाग्रत के समान राजा ने रात्रि के शेष भाग में इस प्रकार स्वप्न देखा-किसी स्थान पर रहे कल्पवृक्ष पर, एक फलवाली लता उत्पन्न हुई। किसीने अचानक ही उस लता को काट दी और वह पृथ्वीतल पर गिर गयी। बाद में शीघ्र ही वह सुंदर फलवाली हो गयी। और वह लता पूर्ववत् स्वयं ही कल्पवृक्ष से जुड गयी। आनंदित होते हुए, राजा ने प्रातः उस स्वप्न के बारे में गुरु से पूछा। उन्होंने कहा-वह कल्पवृक्ष तू ही था और जो लता काटी गयी थी वह तेरी बिछड़ी हुई प्रिया है। बाद में जो तूने मनोहर फल से युक्त लता, वापिस कल्पवृक्ष पर देखी थी, उससे यह सूचित होता है कि आज पुत्र सहित कलावती तुझे जरूर मिलेगी। ऐसा ही हो। इस प्रकार कहकर राजा ने दत्त को आदेश दिया-मैं मानता हूँ कि मैंने खराब कार्य किया है, तो भी तुम वहाँ जाकर जीवित कलावती को यहाँ ले आओ। बाद में यथोचित करूँगा।

दत्त भी उस अटवी में गया और किसी तापस से पूछने लगा-क्या आपने आज अथवा कल किसी स्त्री को यहाँ देखी थी? उस स्त्री का प्रसव समय नजदीक आ गया था। तो क्या उसने बालक को जन्म दिया है अथवा नहीं? यह सब सत्य हकीकत जानने के लिए मेरा मन उत्सुक है। तब तापस ने पूछा-तुम कहाँ से आये हो? दत्त ने कहा-शंखपुर से। तापस ने पूछा-क्या राजा ने अब भी इस पर से क्रोध नहीं छोड़ा है? जो पुनः इसकी खोज करवा रहा है? दत्त ने कहा-यह कहानी बहुत लंबी है। हम उससे मिलने को उत्सुक हैं। अब हम कुछ भी कहने में असमर्थ हैं। किन्तु यदि राजा आज इसे जीवित नहीं देखेगा, तो अवश्य ही जलती अग्नि में प्रवेशकर, अपने प्राणों की आहूति दे देगा। यदि आप उसके बारे में कुछ भी जानते हो तो कहें। तापस के आश्रम में राजा की पत्नी जीवित है यह सुनकर दत्त, तापस के साथ कुलपति के पास गया। कुलपति ने वृत्तांत को जानकर, दत्त को कलावती दिखायी। दत्त को देखकर कलावती रोने लगी। दत्त ने सुंदर वचन से उसको आश्वासन दिया। दत्त स्वयं कलावती के पैरों में गिरकर, उससे विज्ञप्ति करने लगा-क्रोध को छोड़ दो और राजा के अपराध को क्षमा करो। ज्यादा समय गँवाना ठीक नहीं है। कलावती! तेरे बिना राजा अग्नि प्रवेश करने के लिए तैयार हो गये हैं। उनकी रक्षा करो। पश्चात् कलावती कुलपति की आज्ञा लेकर रथ में चढ़ी। दत्त भी उसे साथ लेकर शंखपुर की ओर प्रयाण किया।

शंखराजा कलावती को देखकर आनंदित हुआ किन्तु शर्म से नीचे मुख किया। अवसर प्राप्तकर शंखराजा कलावती से कहने लगा-प्रिये! मुझ अज्ञ ने व्यर्थ ही निरपराधी तुझे दंड किया था। जिस प्रकार वंजुल (अशोक, बरु, नेतर)

के वृक्ष पर फल नहीं होते हैं, और वड, उदुंबर (उमरडे) के वृक्ष पर फूल नहीं होते हैं, देवी! वैसे ही तेरी आत्मा पर भी दोष का निशान नहीं है। अज्ञानरूपी अंधकार से अंध बने मैंने, तेरे में दोष की कल्पना की। मेरा यह सब अपराध तुम क्षमा करो। इस प्रकार दोनों विविध संभाषण करने लगे। सूर्योदय होने पर, वे दोनों साथ मिलकर गुरु के पास गये। गुरु को वंदनकर, आनंद से उनकी देशना सुनी। देशना के अंत में, राजा ने वंदनकर अमिततेज गुरु से पूछा-भगवन्! कलावती ने पूर्व जन्म में ऐसा कौन-सा कठोर कार्य किया था, जिससे निरपराधी होते हुए भी, मैंने इसके दोनों भुजाएँ कटवा दी। अमिततेज गुरु कहने लगे-

महाविदेह में महेन्द्रपुर नामक नगर था। वहाँ शत्रु वर्ग को भयभीत करनेवाला नरविक्रम राजा राज्य करता था। उसकी पत्नी लीलावती थी और सुलोचना नामक पुत्री थी। यौवन अवस्था प्राप्त करने पर भी, सुलोचना खेल-कूद आदि कुतूहल में अत्यन्त आसक्त थी। शुद्ध शील से युक्त थी और कामदेव से पराङ्मुख थी। अन्यदिन राजसभा में पिता के समीप बैठी हुई थी। तब राजा को भेंट के रूप में एक सुंदर तोता मिला था। सुलोचना कुमारी उसे अपने हाथ में लेकर पढ़ाने लगी। कुमारी ने अपने मन को बहलाने के लिए तोते को ग्रहणकर, स्वर्ण पिंजरे में डाल दिया। उसे दाडम, द्राक्ष आदि फलाहार देती। अपनी गोद में रखकर, हाथ में लेकर, हृदय पर रखकर अथवा पिंजरे में ही रखकर कुमारी श्याम वर्णवाले उस तोते को पढ़ाती। आसन, शयन करते समय, वाहन में बैठते समय, भोजन करते समय अथवा राजसभा में जाते समय, अपनी आत्मा के समान उस तोते को कभी दूर नहीं करती थी।

अन्यदिन सुलोचना कुमारी अपनी सखि तथा पिंजरे में रहे तोते को साथ लेकर कुसुमाकर नामक नगर के उद्यान में गयी। वहाँ जिनमंदिर में रहे श्री सीमंधर स्वामी को भक्ति भाव से नमस्कार कर आनंदित हुई। कुमारी की जिनभक्ति देखकर तोते को भी जातिस्मरण ज्ञान हुआ। तोते ने स्मरण किया कि मैं पूर्वभव में साधु था। शुद्ध सिद्धांत का अध्ययन करता था, किन्तु **मैंने उपधि का परिग्रह रखा हुआ था। व्रत की विराधना करने से, मैं मरकर इस जन्म में तोता बना हूँ।** मुझे धिक्कार हो, जो ज्ञानरूपी देदीप्यमान दीपक हाथ में होने पर भी मोहान्ध बना। अब मैं इस तिर्यंचभव रूपी संकट के खड्डे में गिरा हुआ हूँ। भाग्य से मैंने इस अवस्था में भी भवपार पहुँचानेवाले प्रभु के दर्शन पाये हैं। जिनेश्वर भगवंत को वंदना कर ही मैं भोजन करूँगा। इस प्रकार तोते ने अभिग्रह ग्रहण किया। कुमारी तोते को लेकर वापिस अपने महल में आ गयी। जब वह तोते को पिंजरे से बाहर निकालकर, खिलाने के लिए बैठी, तब 'अरिहंतों को नमस्कार हो' इस प्रकार कहकर उड़ गया। जिनेश्वर भगवंत को नमस्कार करने के पश्चात् ही वह

फलाहार करता और उसी वन में रहता।

इधर तोते के विरह को सहने में असमर्थ सुलोचना ने भी भोजन करना छोड़ दिया था। दिन-रात विलाप करती और दुःखी होती! राजा के द्वारा नियुक्त सेनानियों ने जाल बिछाकर, तोते को पकड़ लिया और हर्ष से सुलोचना को दिया। कुमारी ने उसे पकड़कर पिंजरे में डाल दिया और कठोर वाणी में कहने लगी- अरे! मुझे छोड़कर तू कहाँ चला गया था? दिन-रात मैं तुझे ही याद करती थी। आज के बाद, मैं कभी भी तुझे जाने नहीं दूँगी। इस प्रकार कहते हुए कुमारी ने तोते के दोनों पंख काट दिये और वापिस पिंजरे में रख दिया। बुद्धिमान् तोता भी हृदय में सोचने लगा-पराधीन प्राणियों को धिक्कार हो। पराधीन प्राणी अपने हित का आचरण करने में असमर्थ होता है। अहो! नरकावास के समान अत्यन्त दुःखदायी पराधीनता को धिक्कार हो जहाँ हठ/बलजबरी से नीच कार्य कराये जाते हैं। और फटकारा भी जाता है। साधु के भव में, मैंने अपने स्वाधीन तप क्रिया आदि अनुष्ठान नहीं किये थे। इसलिए अब थोड़ा सा भी धर्म अनुष्ठान करूँगा और आनेवाली विडंबना को सहन करूँगा। इस स्थिति में, मैं जिनेश्वर भगवंत के मुख और चरणकमल के दर्शन से वंचित रह गया हूँ। इस प्रकार आँसु बहाते तोते ने अनशन स्वीकार किया। पाँच दिनों के अनशन के बाद आयुष्य पूर्णकर सौधर्म देवलोक में देव हुआ। सुलोचना भी उसके पीछे अनशन कर मर गयी और उसी देव की वह देवी बनी। वहाँ से च्यवकर, तुम शंखराजा हुए हो और सुलोचना च्यवकर यह कलावती हुई है।

पूर्वभव में सुलोचना ने क्रोध से तोते के दोनों पंख छेदे थे, उससे राजन्! तुमने भी क्रोध से इसकी दोनों भुजाएँ काट दी थीं। इस प्रकार सद्गुरु के मुख से अपने पूर्वभव के वृत्तान्त को सुना! तब पत्नी सहित राजा को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। भव समुद्र को तीरने की इच्छावाले राजा ने बोधिलाभ प्राप्त किया। गुरु से कहने लगा-जब तक यह बालक राज्य धुरा को वहन करने में समर्थ न बन जाये, तब तक मैं इसका पालन करूँगा, बाद में दीक्षा अंगीकार करूँगा। हे स्वच्छमतिवाले यति! इस समय तो मुझे गृहस्थ धर्म के नियम दीजिए। यौवन अवस्था को प्राप्त पूर्णकलश नामक पुत्र को राज्य सौंपकर आनंदपूर्वक राजा-रानीने दीक्षा ग्रहण की। सुंदर पालनकर सौधर्म देवलोक में उत्तम देव बने। वहाँ पर भी पूर्वभव के प्रेम से प्रीतिपूर्वक रहने लगे।

इस प्रकार श्री सत्यराजगणि द्वारा विरचित श्रीपृथ्वीचंद्रमहाराजर्षि के चरित्र में श्री शंखराजा-कलावती चरित्र वर्णन रूपी प्रथम भव का भाषांतर संपूर्ण।

द्वितीय भव

भरतक्षेत्र के मणिपिंगल नामक देश में पोतनपुर नामक नगर है। वहाँ शत्रुंजय नामक राजा राज्य करता था। विष्णु को लक्ष्मी के समान, इन्द्र को इन्द्राणी के समान, शंकर को पार्वती के समान, शत्रुंजय राजा को वसंतसेना रानी थी। मानस सरोवर में हंस के समान, वह शंखराजा का जीव देवलोक से आयुष्य पूर्णकर वसंतसेना की कुक्षि में आया। तब रानी ने स्वप्न में कमल के समूह को देखा था। गर्भ के प्रभाव से, रानी को दीन आदि मनुष्यों को दान देने का दोहद उत्पन्न हुआ। राजा ने भी उसे शीघ्र पूरा कर दिया। जिस प्रकार पूर्व दिशा सूर्य को, रोहण पृथ्वी सुंदर रत्न को जन्म देती है, उसी प्रकार रानी ने भी सुखपूर्वक, भुवन को आनंददायक पुत्र को जन्म दिया। दासी ने आकर, राजा को बधाई दी। राजा ने भी उसे ईनाम दिया। राजा ने लोगों को आनंदित करनेवाला पुत्र जन्ममहोत्सव मनाया। कमल समूह के स्वप्न से राजा ने उसका कमलसेन नाम रखा। शुक्लपक्ष के चंद्र के समान कमलसेन भी बढ़ने लगा। बाल वय को छोड़कर यौवन अवस्था में आया। पूर्वभव के संस्कारों से वह विषयसुख से अत्यन्त विमुख था क्योंकि पूर्वभव के संस्कार ही प्राणियों के पीछे आते हैं।

कमलसेन सतत सकल कलाओं का अभ्यास करता था। अन्यदिन वह क्रीड़ा करने के हेतु से, अपने मित्रों के साथ नंदनवन गया। वहाँ उन्होंने विकसित फूलों की सुगंध से, मधुर गुंजराव करते मधुमक्खी से, मत्त कोयलवधू के पुष्कल गीत समूह से तथा वसंतऋतु से विशेष विकसित बने सुंदर वन को देखा। साथी मित्र लोग यहाँ-वहाँ क्रीड़ा करने के लिए लीला पर्वतों पर खेलने लगे। पर्वत के किसी प्रदेश पर रहे कमलसेन ने अहो! यह जगत् नायक रहित है, इस प्रकार किसी के शब्दों को सुना। तब कमलसेन सोचने लगा-अहो! न्याय मार्ग से, पृथ्वी की रक्षा करनेवाले मेरे पिता राज्य की परिपालना कर रहे हैं, तो यह विश्व नायक रहित कैसे हो सकता है? कमलसेन हाथ में तलवार लेकर, भय रहित होते हुए चारों ओर देखने लगा। किन्तु किसी को भी नहीं देखा। कुमार उन शब्दों को बार-बार सुनने लगा और बार-बार दसों दिशाओं में देखने लगा। दूर पर, देवमंदिर में प्रवेश करती किसी स्त्री को देखा। निश्चय ही यह शब्द इसी स्त्री के हैं। तो मैं इसे ही पूछता हूँ ऐसा सोचकर कुमार भी देवमंदिर में गया। उतने में ही वह देवमंदिर आकाश में उड़ गया और वायुवेग से आगे बढ़ने लगा। दूर किसी प्रदेश पर उतरकर, वहाँ स्थिर हो गया। कुमार यह देखकर आश्चर्यचकित हो गया। इसी बीच कुमार ने पूर्व में देखी कन्या को, किसी दूसरे भवन से निकलती हुई देखी।

वत्स! तेरा स्वागत है, इस प्रकार कहकर कुमार को आसन दिया। कुतूहल से कुमार भी बैठ गया। बाद में कुमार ने पूछा-भद्रे! तू कौन है? क्या यह

इन्द्रजाल है? तूने विश्व को नायकरहित क्यों कहा? तब उस कन्या ने कहा-जिसका कोई नाथ नहीं है, उसके लिए तो विश्व अनायक ही है। पुनः यह इंद्रजाल मैंने नाथ के हेतु से ही बनाया है। इसका कारण सुनो। मैं अंगश्री नामक प्रौढ स्त्री हूँ। मैं बहुत से पुरुषों के द्वारा भोगी गई हूँ। इस समय यदि अनाथ मुझ स्त्री के आप नाथ बनते हैं, तो मैं पृथ्वी को सनाथ मानूँगी। तब कुमार ने कहा-सुंदरी! मैं स्वप्न में भी परस्त्री का स्वामी बनने की इच्छा नहीं रखता हूँ। छरी के समान परस्त्रियों से, जिनका मन विरक्त हो चुका है, उन उत्तम पुरुषों को मैं मन, वचन, काया से नमस्कार करता हूँ। दीन आदि लोगों के परिपालन करने में, मैं नाथ बन सकता हूँ, किंतु प्राणनाश होने पर भी परस्त्री का संग नहीं करूँगा। तब कन्या ने कहा-गुण सम्पन्न तूने मेरे चित्त का हरण कर लिया है। इससे बात करना व्यर्थ है, इस प्रकार सोचकर कमलसेन वहाँ से चलने लगा।

इसी बीच भवन के अंदर से गर्जना और तर्जना करते किसी पुरुष की इस प्रकार की वाणी सुनाई दी-रे रे! कुत्ते के समान शून्य घर में प्रवेश कर, निकल रहे हो। सुंदरकुमार! यदि तुम शूर हो तो, मेरे सामने आ जाओ। कुमार भी सिंह के समान, उसके संमुख होकर कहने लगा-रे! स्वेच्छा से फिर रहे सिंह को क्यों रोक रहे हो? उस पुरुष ने कहा-यदि तू सिंह हो तो मेरे सिद्ध शस्त्र का सामना करो। कुमार ने प्रहार करने को कहा। तब उसने कहा-पहले तुम प्रहार करो। कुमार ने कहा-मुझ पर प्रहार नहीं करनेवाले पर, मैं कभी भी पहले प्रहार नहीं करता हूँ। सत्त्व से भरे कुमार को देखकर, वह पुरुष कहने लगा-तुम सत्त्वशाली हो और अंगदेश राज्य का भोक्ता बनोगे। महासत्त्वशाली! मुझे क्षमा करना। मैंने तुझे बहुत खेदित किया है। मैंने खुद के कार्य के लोभ से तुझे अपने माता-पिता से दूर किया था और तुम्हारी सत्त्व की परीक्षा करने के लिए स्त्री और पुरुष का रूप बनाकर मोहित किया था। मैं चंपादेश राजा का सान्निध्यकारी देव हूँ। और इस समय तुझे अंगदेश का राजा बनाना चाहता हूँ। उससे तुम जरा भी खेद मत करना। इस प्रकार कहकर देव अदृश्य हो गया।

कुमार भी यह सुनकर विस्मित हुआ। घूमते हुए एक सरोवर को देखा। वहाँ स्नान कर, विशाल आम्रवृक्ष की छाया में विश्राम करने लगा। उतने में ही कोई पुरुष सामने से आकर, कुमार से कहने लगा-प्रभु! कृपा कर सुने! चंपा देश के राजा गुणसेन, क्रीड़ा करने के लिए वन में आये हुए हैं। आपको बुलाने के लिए उन्होंने मुझे भेजा है। आप शीघ्र ही घोड़े पर चढ़कर वहाँ आये। इसका कारण तो राजा ही जानते हैं। यह झूठ नहीं बोल रहा है, इस प्रकार सोचकर कुमार घोड़े पर चढ़ गया और राजा के पास आया। वहाँ अशोकवृक्ष के नीचे बैठे राजा को, कुमार नमस्कार करने लगा। राजा ने ईशारे से निषेध किया। यह क्या है? इस प्रकार के

दुःख से कुमार चिंतित हुआ। मंत्री के सामने देखते हुए, बीच-बीच में अटकते शब्दों से राजा कहने लगा-सु... सु... सुंदर! तुम अकेले क..क..कहाँ से आये हो? तु...तु... तुझे कु...कु...कुशल है? तेरा स..स... स्वागत है। तब कमलसेन सोचने लगा-अहो! ऐसा गुणीपुरुष भी जीभ की जडता से क्यों दुःखित है? और क्यों नमस्कार करने से रोका? उतने में ही मंत्री राजा से कहने लगा-स्वामी! राजपुत्र थक गया है और आप भी थक चुके हैं। अब हमें नगरी में प्रवेश करना चाहिए। देव को जो इष्ट है, उस कार्य को यह कुमार दोनों प्रकार से भी कर देगा। बाद में वे सभी चंपापुरी चले गये। मंत्री ने कमलसेन को अपने महल में ले गया। कुमार ने स्नान, भोजन आदि किये। पश्चात् कुमार को सुखासन पर बिठाकर, मंत्री उससे उद्देशकर कहने लगा-हे परोपकार करने में तत्पर कुमार! तुम मेरी बात सावधान होकर सुनो। करुणा कर इस अंगदेश के राज्य को स्वीकार करो। हे कृपानाथ! हमारे राजा के मनोरथों को पूरा करो।

यह सुनकर कुमार आश्चर्यचकित हुआ और मंत्री से कहने लगा-मंत्रीजी! यह बात विचित्र लग रही है। एक राजा के विद्यमान होते हुए भी दूसरा राजा किया जा रहा है। तुम्हारे राजा का मनोरथ क्या है? तुम मुझे वास्तविक सत्य कहो। मुझे बहुत आश्चर्य हो रहा है। तब मंत्री ने कहा-कुमार! ध्यान से सुनो! इसी महानगरी में श्रीकेतु नामक राजा था। इन्द्र की पुत्री जयंती के रूप को जीतनेवाली उसकी विजयन्ती नामक पत्नी थी। एक दिन राजा ने सभा के सदस्यों से पूछा-इस नगर में कौन ज्यादा सुखी है? सभी सदस्य अपने-अपने विचार व्यक्त करने लगे। तब किसी अत्यन्त स्पष्ट तत्त्ववेत्ता ने कहा-इस नगरी में विनयन्धर नामक श्रीमंत अत्यन्त सुखी है। जिसके पास कुबेर के समान लक्ष्मी है, बृहस्पति के समान बुद्धि है, कामदेव के समान रूप है और समुद्र के समान गंभीरता है। उस विनयन्धर को बुद्धिशाली, आज्ञा का परिपालन करनेवाली, सन्माननीय और रूप से मेनका को जीतनेवाली चार पत्नीयाँ हैं।

इसी बीच कोई दूसरा व्यक्ति कहने लगा-अरे! तुम व्यापारी की स्त्रियों का वर्णनकर, राजा के अंतःपुर की स्त्रियों का अपमान क्यों कर रहे हो? तब पहले व्यक्ति ने कहा-अहो! दूसरों के सद्गुण के स्तवन करने से निंदा कैसी? मैं मानता हूँ कि सभी लोग गुण संपन्न वस्तु की प्रशंसा करते हैं। और यह बात सर्वलोक में प्रसिद्ध है। सभी नगर की स्त्रियाँ उनके समान रूप तथा सौभाग्य आदि सामग्री प्राप्त करने के लिए, अनेक देवीयों की उपासना कर रही हैं। इनका वर्णनकर, तुमने अच्छा किया है, अब आगे हमें स्त्रियों की बातचीत नहीं करनी चाहिए। राजा उनका अद्भुत वर्णन सुनकर, शराब पीनेवाले के समान उन स्त्रियों पर राग से मत्त हुआ। कहा गया है कि-गुणी अथवा निर्गुणी को देखने पर भी लोग उतने

रागी नहीं बनते हैं जिस प्रकार अनदेखे लोगों के गुणों को श्रवणकर रागी बनते हैं।

कामांध बने राजा की संपूर्ण धर्मबुद्धि भी मन से भ्रष्ट हो गयी। कामीलोगों को अकृत्य क्या हो सकता है? कहा गया है कि पुरुष तब तक ही बुद्धिमान् कहलाता है, जब तक वह कामांध न बन जाये। नटकन्या में आसक्त बने इलापुत्र ने अपने कुल को भी कलंकित कर दिया था। राजा सोचने लगा-एक ओर कुल की मलिनता, दूसरी ओर काम की पीड़ा। राजा खुद को सिंह और तट की परिस्थिति में फंसा पाया। यदि उस व्यापारी में कोई दोष निकालकर, उसकी स्त्रियों को ग्रहण कर लूँ, तो लोक में मेरा अपयश भी नहीं होगा। इस प्रकार निश्चित कर, राजा रहस्य में पुरोहित को बुलाकर कहने लगा-कपटता का प्रयोगकर, श्रेष्ठी विनयन्धर से मैत्री करना। भोजपत्र पर इस श्लोक को लिखवाकर किसी को मालूम न पड़े वैसे रहस्य में मुझे देना। वह श्लोक इस प्रकार है-

अद्याभाग्यनियोगेन त्वद्वियोगेन सुंदरि।
शर्वरी सा त्रियामाऽपि शतयामेव मेऽभवत्।।

सुंदरी! आज तेरे वियोग रूपी अभाग्य के संबंध से, तीन प्रहरवाली यह रात्रि भी मुझे सो प्रहरवाली के समान मालूम पड़ रही है।

इस प्रकार राजा ने पुरोहित को शिक्षा देकर भेज दिया। पुरोहित ने भी विनयन्धर से मैत्री की। उससे वह श्लोक लिखवाकर राजा को दे दिया। राजा ने भी भोजपत्र पर लिखे गये उस छंद को सुगंधी पदार्थ में बांध दिया। बाद में दासी को बुलवाकर, सभा में मंगवाया। श्लोक को नगर के मंत्रियों को दिखाकर, राजा ने कहा-रानी के सुगंधी गंधपुट पर यह किसने लिखा है? उसकी परीक्षा करो। लिपि के अक्षरों को पढ़कर सभी मंत्री विनयन्धर के बारे में चर्चा करने लगे। चतुर मंत्री अपने चित्त में सोचने लगे -जिस प्रकार दूध में पोरे की संभावना नहीं होती है, वैसे ही विनयन्धर में भी दोष की संभावना नहीं है। किन्तु उसकी लिपि प्रत्यक्ष दिखायी दे रही है। यहाँ कोई रहस्य होना चाहिए। तब मंत्री मिलकर राजा से कहने लगे-जो हाथी सदैव द्राक्ष के उद्यान में क्रीड़ा करता है, वह कभी भी वांस के अंकुरों पर अथवा करेडे पर आसक्त नहीं होता है।

क्षणमात्र के लिए भी, जो व्यक्ति विनयन्धर के साथ गोष्ठी करता है, वंजुल (बरु) से सर्प के समान वह व्यक्ति भी विष रूपी पाप से दूर हो जाता है। हमारा सूचन है कि आप सब तत्त्व के द्वारा अपने हृदय में विचार करें। किसी चुगलीखोर की ही यह चालबाजी है। वह दुर्जन पुरुष सर्प से भी अतिवक्र होगा। क्योंकि सर्प, नोलियें का द्वेषी होता है किन्तु दुर्जन तो खुद के कुल का द्वेषी होता है। राजा ने उनके वचनों को निरंकुश हाथी के समान अवज्ञाकर, न्यायमार्ग से विमुख बन गया। क्रोध से उग्र बनकर, राजा ने सुभटों को भेजा और विनयन्धर

को बंधवाया। राजमर्यादा छोड़कर उसका सर्वस्व लूंट लिया। दुर्बुद्धि राजा ने अपने अंतःपुर में विनयन्धर की पत्नीयों को रखा। तुम विरुद्धपक्ष की रक्षा करना चाहते हो, इस प्रकार राजा ने नागरिकों की निंदा करने लगा। राजा उन स्त्रियों का रूप देखकर, न्यायमार्ग में अत्यन्त शिथिल बन गया और सोचने लगा-स्वर्ग की देवियाँ भी ऐसी नहीं होगी। इस कारण से मैं धन्य हूँ, सन्माननीय हूँ, क्योंकि मेरे पास ऐसी स्त्रियाँ हैं। यदि ये स्त्रियाँ, स्वयं ही मुझ से प्रीति करती हैं, तो सौभाग्य के ऊपर मंजरी के समान होगा। मुझे चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं है। सब मनोरथ धीरे से सिद्ध हो जायेंगे। क्या भूखे मनुष्य से उदुंबर का फल शीघ्र ही पच जाता है? इस प्रकार सोचकर राजा ने उनको शयन, आसन, आभूषण आदि दिलाये।

विनयन्धर की स्त्रियों ने विष के समान उन चीजों की ओर लक्ष्य नहीं दिया। अन्य दिन राजा उनके पास दासियाँ भेजी। दासियाँ विनय से झुककर कहने लगी-स्वामिनी! आप चिंता छोड़ दें। आपका पुण्य फलित हुआ है, क्योंकि हमारा राजा, तुमको चाहिए उतनी अनुकूलता दे रहा है। राजा यदि क्रोधित बन जायें, तो यम का रूप धारण कर लेगा और खुश हो जाय तो आपको मालामाल करेगा। इसलिए अपने चित्त से शोक रूपी चंडाल को दूरकर, मानव भव के दुर्लभ भोग, राजा के साथ भोगो।

शील रूपी श्रृंगार से श्रेष्ठ विनयन्धर की स्त्रियों ने दासियों से कहा-सखि! कोलाहल से आकुलित बनी तुम यह बात बार-बार मत कहो। यदि यह दुष्ट राजा क्रोधित हुआ है, तो हमारा प्राणांत ही करेगा। वह भी हमारे लिए सुंदर ही होगा। क्योंकि **अखंड शीलवती स्त्रियों को मृत्यु भी श्रेयस्करी होता है।** अग्नि में प्रवेश करना उचित है, किन्तु व्रत का खंडन करना ठीक नहीं। मृत्यु श्रेष्ठ है किन्तु शील से भ्रष्ट का जीवन उत्तम नहीं है। इस प्रकार के अद्‌भुत वाक्यों से, उन्होंने दासी का तिरस्कार किया। दासियों ने भी आद्यपर्यंत राजा को कह सुनाया। राजा उनका निश्चय जानकर भी, अपने इष्ट की सिद्धि के लिए, अपने चित्त में अत्यन्त चिंतित होते हए उनके पास आया। दुष्ट, अनिष्ट और निष्ठुर राजा को, उन्होंने आँख से भी नहीं देखा। तथापि राजा वहाँ से नहीं हटा। अहो! मोह के खेल को धिक्कार है।

दूसरे दिन अग्नि के ज्वाला के समान लाल-पीले बालोंवाली, टेडे दांत, होंठ और नाक को धारण करनेवाली, इस प्रकार सर्व अंगों से अत्यन्त गर्हनीय और उद्वेग पैदा करती उनको देखकर, राजा चित्त में सोचने लगा-क्या यह आँखों का धोखा है? अथवा भाग्य की लीला है? अथवा यह कोई पाप का प्रयोग है? जो अकस्माद् ही प्रकट हुआ है। इस घटना के बारे में जानकर, रानी विजयन्ती

राजा के पास गयी। क्रोध सहित उपालंभ देते हुए राजा से कहा-आपको धिक्कार है, जो अंतःपुर की राजकन्याओं को छोड़कर, परस्त्री के संग की इच्छा कर रहे हैं। अपने आधिन स्त्रियों से विरक्त होकर, परस्त्रियों पर रागी बन रहे हैं। कहा गया है कि - खुद के आधीन स्त्रियाँ होने पर भी नीच पुरुष परस्त्रियों में रागी बनता है। सरोवर भरा हुआ होने पर भी कौंआ घड़े के पानी को पीता है। रानी की बातें सुनकर, राजा शर्म से झूक गया और जवाब देने में भी असमर्थ हुआ। बाद में धन आदि वापिस देकर, विनयन्धर और उसकी स्त्रियों को छोड़ दिया।

पुनः घर में लौटने के बाद, वे सहज रूपवाली बन गयी। उस कारण को जानने की कुतूहलता से, राजा किसी ज्ञानी की राह देखने लगा। दूसरे ही दिन, उद्यान में चार ज्ञान के धारक गुरु भगवंत पधारे। उनको वंदन करने के लिए राजा भी नागरिकों के साथ चला। देशना सुनने के बाद राजा ने उनसे पूछा-प्रभु! पूर्वभव में विनयन्धर के जीव ने ऐसा कौन-सा उत्तम पुण्य उपार्जन किया था, जिससे इसको स्वर्ग की देवियों के समान स्वरूपवान् पत्नीयाँ मिली हैं? और किस कारण से वे महल में कद्रूपी बनी थीं? सूरिभगवंत ने कहा-गजपुर में विचारधवल नामक राजा राज्य करता था। राजा को दया, उदारता आदि गुणों से युक्त एक स्तुतिपाठक/चारण था। एक दिन मुनि की देशना सुनकर उसने अभिग्रह ग्रहण किया कि-किसी सुपात्र को सुंदर अशन आदि देकर ही, मैं भोजन करूँगा।

एक दिन बिन्दु नामक उद्यान में, नौंवे जिनेश्वर श्री सुविधिनाथ भगवान् के बिंब समक्ष चारण ने नमस्कार, स्तुति आदि की। बाद में पात्र को भोजन देकर, स्वयं ने भोजन किया। भाग्य के योग से, एक दिन उस चारण के घर श्री सुविधिनाथ भगवान् पधारे। उसने प्रभु को निर्दोष (प्रासुक) भोजन वहोराया। तब दान के महात्म्य से पाँच दिव्य प्रकट हुए। और देव-मनुष्य भी उसका चारणत्व करने लगे। चारण ने बोधिलाभ प्राप्तकर आयुष्य पूर्णकर, धर्म के प्रभाव से सौधर्म देवलोक में देव हुआ। वहाँ से च्यवकर इस नगर में यह श्रेष्ठी विनयन्धर हुआ है। राजन्! इसको दानधर्म रूपी कल्पवृक्ष फलित हुआ था। उससे हे भव्यप्राणियों! तुम भी दानधर्म के विषय में आदर से प्रयत्न करो। यही विनयन्धर का पूर्वभव है। अब उसकी चारों पत्नीयों का पूर्वभव सुनें।

इसी पृथ्वीतल पर शत्रुओं से आक्रमण न की जा सके ऐसी अयोध्या नामक महानगरी थी। यत्नपूर्वक नरकेशरी राजा अयोध्या पर राज्य करता था। उसके अंतःपुर की मुख्य रानी कमलसुंदरी थी। उन दोनों की सुशील, कला से युक्त रतिसुंदरी नामक पुत्री थी। उसी नगरी के श्रीदत्त नामक मंत्री की बुद्धिसुंदरी पुत्री, सुमित्र नामक श्रेष्ठी की ऋद्धिसुंदरी पुत्री और सुघोष पुरोहित की गुणसुंदरी पुत्री थी। समान उम्रवाली इन चारों कन्याओं में परस्पर मैत्री थी। वे साथ में ही

सोती, खाती, बैठती और फिरती थी। क्षणमात्र के लिए भी, वे एक-दूसरे से अलग नहीं होती थीं।

एक दिन चारों कन्याएँ सुमित्रश्रेष्ठी के घर बैठी हुई थी। वहाँ पर गुणश्री नामक साध्वी आयी। उन्होंने हर्ष से स्वागत किया। तब रतिसुंदरी ने पूछा-सखि! श्वेत वस्त्र को धारण करनेवाली यह कौन है? जो मूर्तिमंत सरस्वती के समान नयनों को आनंद दे रही है। श्रेष्ठी की पुत्री ने कहा-यह हमारी पिता की अत्यन्त पूजनीय तपस्वी है जो मूर्तिमंत संतोष रूपी लक्ष्मी और श्रुत की अपूर्ण वाणी के समान दिखायी पड़ रही है। इनको नमस्कार करनेवाले, इनकी सेवा करनेवाले और इनकी वाणी सुनने में प्रयत्नशील मनुष्यों को धन्य है। प्रशस्त पुण्य से युक्त उन कुमारियों ने साध्वी को वंदन किया। साध्वी ने भी सविस्तार अर्हत् धर्म के स्वरूप को समझाया। तुरंत ही उन कन्याओंने मिथ्यात्व के क्षयोपशम से, सम्यक्त्वमूल गृहस्थधर्म का अंगीकार किया। वे परपुरुष संगत्याग के नियम में विशेष दृढ़ थी। क्योंकि कुलीन स्त्रियों का शील ही अभ्यन्तर भूषण है। भव-भव में भी मानवभव भौतिक सामग्री सुलभ है किन्तु यह शील लक्ष्मी प्राप्त करना अत्यन्त दुर्लभ है। इस प्रकार वे चारों भी जैनधर्म का शुद्ध परिपालन करने लगी। और कितना ही समय सुखपूर्वक बीताया।

एक दिन रतिसुंदरी के अद्‌भुत रूप अतिशय के बारे में सुनकर, चन्द्रराजा ने उससे विवाह करने के लिए अपने गुप्तचर को भेजा। पिता के द्वारा रतिसुंदरी को स्वयंवर की अनुज्ञा देने पर, चंद्रराजा ने महोत्सवपूर्वक उससे विवाह किया। नगर की स्त्रियाँ रतिसुंदरी का रूप देखकर आश्चर्यचकित होती हुई कहने लगी-क्या यह कामदेव की पत्नी रति है अथवा इन्द्राणी है अथवा लक्ष्मी है अथवा पार्वती है? विविध राज्यों में उसके रूप का ही वर्णन होने लगा। एकदिन कुरुदेश के राजा, महेन्द्रसिंहराजा ने यह बात सुनी। उसने रतिसुंदरी के लिए चंद्रराजा के पास दूत भेजा। दूत भी चंद्रराजा से कहने लगा-चंद्र! मेरे स्वामी ने तुझे इस प्रकार संदेशा दिया है कि - पूर्व से ही हम दोनों के बीच हार्दिक मित्रता चली आ रही है, इसमें कोई संशय की बात नहीं है। तुझे जो कुछ भी दुःसाध्य कार्य है, वह कहना। क्योंकि हम दोनों प्रीतिपात्र के बीच केवल देह का ही अंतर है।; और दूसरी बात यह है कि-जो यह तेरी नवविवाहित पत्नी रतिसुंदरी है, उसको मेरे पास भेजना। कहा भी गया है कि प्रीतिपात्र के बीच अदेय कुछ भी नहीं होता है।

दूत की बातें सुनकर, चंद्रराजा हँसा और कहने लगा-दूत! तू अपने स्वामी से कहना कि-जो तुम्हारा कुछ अन्य कार्य हो तो शीघ्र आज्ञा करना। प्राणांत कष्ट आने पर भी, कुलीन पुरुषो का स्त्रीसमर्पण योग्य नहीं है। तब दूत ने कहा-महेन्द्रराजा देवी के दर्शन के लिए अत्यन्त उत्कंठ है। उसके कही बात का

तुझे विपरीत करने का अधिकार नहीं है। मैं तेरे हित के बारे में कह रहा हूँ कि तुम राजा के आदेश का पालन करो। बाद में बलजबरी से रतिसुंदरी को ग्रहण करते महेन्द्र राजा को कौन निषेध कर सकता है? तब भ्रूकुटी चढ़ाकर चंद्रराजा ने कहा-कुलीन पुरुषों को दूसरों का स्त्री पर नजर करना योग्य नहीं है। महेन्द्रराजा का यह कौन-सा कुलाचार है? यह उसकी कौन-सी मर्यादा है? कैसा जीवन है? उसके पास कौन-सा राज्य है? और कैसी लज्जा है? अन्याय की इच्छा करनेवाले उसके पास कौन-सा न्याय है? यौवन अवस्था के मद से, रहस्य में जो माता ने आचरण किया था, वही चेष्टा ऐसे आचरणों से उसके पुत्र भी करते हैं। यह बात घट नहीं सकती कि कोई अपनी पत्नी दूसरे को समर्पित करे। क्या जीवित सर्प के पास से मणि, और सिंह के केसर ग्रहण किये जा सकते हैं? इस प्रकार चंद्रराजा ने दूत का तिरस्कार कर, अपने सुभटों के द्वारा बाहर निकाल दिया।

दूत ने यह बात जाकर महेन्द्रराजा से कही। राजा क्रोधित होकर युद्ध के लिए तैयार हुआ। दोनों सेनाओं के बीच भयंकर युद्ध हुआ। भाग्य के योग से, महेन्द्रराजा ने चंद्रराजा को बांध लिया। चंद्रराजा की सेना पराजित होकर भागने लगी। रतिसुंदरी को ग्रहणकर महेन्द्रराजा अपनी नगरी की ओर प्रयाण किया और चंद्रराजा को कैद से मुक्त कर दिया। महेन्द्रराजा उससे कहने लगा-तेरे बारे में सुनने के बाद, तुझ पर राग जगा था। इसलिए यह युद्ध तेरे लिए ही किया है। प्रिये! मुझे स्वीकारकर, मेरे प्रयत्न को सफल करो। यह सुनकर रतिसुंदरी सोचने लगी-दुःख के समूह को उत्पन्न करनेवाले मेरे रूप को धिक्कार हो। हा! मेरे लिए ही आर्यपुत्र ने अपने प्राणों को संकट में डाल दिये थे। क्योंकि महेन्द्रराजा का कुशीलत्व ही इस बात को व्यक्त कर रहा है। पापी ऐसे इस राजा से, मैं अपनी शील की रक्षा किस प्रकार करूँ? बुद्धिमंत मनुष्यों को अशुभकार्य में विलंब करना चहिए। इस प्रकार सोचकर शांति से रतिसुंदरी ने कहा-मुझे नियम है कि चातुर्मास पर्यंत मैं शील का खंडन नहीं करूँगी। महेन्द्रराजा ने यह बात स्वीकारी। उससे थोड़ी स्वस्थ बनी रतिसुंदरी, तप करने में तत्पर बनी। वह स्नान, विलेपन और आभूषण आदि का उपयोग नहीं करती थी। क्रम से वह दावानल से जलाई हुई कमलिनी के समान, अत्यन्त कृश देहवाली बनी।

एक दिन महेन्द्रराजा ने मल से लिप्त देहवाली तथा मलिन वस्त्र धारण की हुई रतिसुंदरी से पूछने लगा-भद्रे! तूने किस कारण से यह दशा प्राप्त की? उसने कहा-जो मैंने इस कठिन व्रत का स्वीकार किया है, उससे कृश बनी हूँ। तथापि मैं इस व्रत का पालन करूँगी, क्योंकि व्रतभंग भवोभव दुःखदायी होता है। राजा ने पूछा-भद्रे! तुझे यह अद्‌भुत वैराग्य कैसे आया? उसने कहा-राजन्! यह मेरा शरीर ही वैराग्य का कारण है।

सुधीः कोऽमेध्यपूर्णेऽस्मिन् कृमिजालशताकुले।
रज्येत् कलेवरे विस्रदुर्गंधरसभाजने?।।

विष्टा से भरपूर, सैंकडों कृमियों के समूह से आकुलित, मांस के दुर्गंध रस का पात्र इस शरीर पर, कौन बुद्धिमान् रागी बन सकता है? ऐसी वैराग्यवाणी सुनने पर भी, व्रत की अवधि पूर्ण होने पर, राजा पूर्ववत् भोगों की अभिलाषा करते हुए उसके पास गया। रतिसुंदरी ने फिर से समझाया-यदि इस शरीर के अंदर रहा हुआ, सब बाहर हो जाये तो विषयासक्त पुरुष भी दंड आदि को धारणकर, गीध आदि मांसभक्षी पक्षियों से इस शरीर के रक्षण में लग जायेगा। मल-मात्र आदि धारण करने में पात्र के समान, कौन बुद्धिमान् पुरुष स्त्रियों के शरीर पर रागी बन सकता है? घर में पड़ी विष्टा पर कोई राग नहीं करता है, वैसे ही मल-मूत्र से भरे स्त्री के शरीर पर चतुर पुरुष राग नहीं करता है। राजन्! बहुत से छिद्रों से झरते दुर्गंध से युक्त, अशुचि के लिए घर रूप बनें इस देह में, तुझे क्या राग उत्पन्न कर रहा है? राजा ने कहा-तेरी सुंदरता के बारे में क्या कहें? तेरी दोनों आँखों ने ही मेरा मन मोह लिया है। यह पृथ्वी/राज्य देने पर भी, उसका मूल्य किया नहीं जा सकता है। राजा का राग, अपने ऊपर से कम होता न देखकर शीलरक्षा की विधि में दूसरा उपाय न देखकर, उस चतुर महासती ने साहसकर किसी अस्त्र से अपनी दोनों आँखों को निकाल दी। सहसा ही राजा के हाथों में सोंपती हुई कहने लगी-राजन्! तुम्हारी प्रिय दोनों आँखों को ग्रहण करो। नरक का कारणभूत, दूसरे के शरीर से संग करने से आज के बाद जिंदगी पर्यंत रहा।

राजा भी यह देखकर दुःखित हुआ और कहने लगा-हा! धिक्कार है! तूने अचानक ही यह भयंकर कार्य क्यों किया? उसने कहा-जिससे कुल की मलिनता हो, पृथ्वी पर अपयश होता हो और अंत में दुर्गति की प्राप्ति होती हो, उस कार्य को करने से पहले मरण ही श्रेष्ठ है। शील के जीवित रहने पर कुल और दोनों लोक में यश भी जीवित रहते हैं। इसलिए ही प्राण त्याग कर भी कुलीन स्त्रियों को शील की रक्षा करनी चाहिए। राजन्! अन्य स्त्री में आसक्त तेरा भी इहलोक और परलोक में न ही धर्म की प्राप्ति होगी और न ही सुख की। इस बात को अपने हृदय में अच्छी प्रकार से विचार कर लेना। राजा भी युक्तियुक्त उसकी बातों को सुनकर, बोध प्राप्त किया और हर्ष के साथ रतिसुंदरी से कहने लगा-भद्रे! तूने मुझे सुंदर बोध दिया है। मैं इस पाप से निवृत्त होता हूँ। आज के बाद मैं भी परस्त्री-विरति का नियम ग्रहण करता हूँ। हा! मैंने तुझ महासती पर कैसे अनर्थ किये हैं? महासती! कृपावती! तुम मेरे उन अपराधों को क्षमा करो। बाद में रतिसुंदरी कायोत्सर्ग में रहकर, शासनदेवता का स्मरण किया। पुनः दोनों आँखों को प्राप्तकर वह सुंदर बनी। यह देखकर राजा अत्यन्त खुश हुआ। और वस्त्र, आभूषण आदि

से उसका सन्मान कर, अपने विश्वसनीय पुरुषों के द्वारा उसको अपनी नगरी में पहुँचा दिया। चंद्रराजा, महेन्द्रराजा से इस वृत्तान्त को जानकर, अखंडित व्रत से युक्त रतिसुंदरी को बहुमानपूर्वक अपने महल में ले गया। इस प्रकार मन-वचन और काया की निर्मलता पूर्वक साध्वी के द्वारा प्रदत्त इस व्रत को, रतिसुंदरी ने अपने जीवनपर्यंत तक पालन किया।

॥ रतिसुंदरी का चरित्र संपूर्ण ॥

सुसीमनगर में जितशत्रु राजा राज्य करता था। उसका सुकीर्ति नामक मंत्री था। श्रीदत्त मंत्रीने सुंदरव्रत से युक्त बुद्धिसुंदरी का विवाह सुकीर्तिमंत्री से किया। एक दिन गवाक्ष में बैठी, बुद्धिसुंदरी का रूप देखकर जितशत्रु राजा मोहित हो गया। मंत्री में दोष निकालकर, उसने बुद्धिसुंदरी को ग्रहण कर लिया और अपने महल में ले गया। कहा गया है कि-

न पश्यति दिवोलूको द्विको निशि न पश्यति।
कामान्धः कोऽपि पापीयान् दिवा नक्तं न पश्यति॥

उल्लू दिवस में नहीं देखता है, कौआ रात में नहीं देख सकता है। कोई कामान्ध पापी, दिवस-रात दोनों को नहीं देखता है। उसके बाद राजा ने नगरवासियों की विज्ञप्ति से, मंत्री को छोड़ दिया। राजा अपने इष्ट की सिद्धि के लिए बुद्धिसुंदरी के पास गया। खुद के सत्त्व में अत्यन्त दृढ़ बनी बुद्धिसुंदरी ने अपने हृदय में विचारकर राजा से कहने लगी-राजन्! ध्वजा के समान तेरा चित्त चंचल क्यों है? परवश स्त्री पर तेरी बुद्धि परवश क्यों है? राग रूपी समुद्र में निमग्न तुझे भयंकर दुःख का सामना करना पड़ेगा। यह विषयसुख तिलमात्र है और दुःख मेरु के समान है। टेढ़ी चालवाली और क्रोध करती सर्पिणी का आलिंगन करना उचित है किन्तु नरक की तरफ प्रयाण करने के लिए मार्ग के समान नारी का आलिंगन कामी पुरुष को उचित नहीं है। राजन्! अपने मन को माया रहित बनाओ और खराब ग्रह रूपी इस कलह को छोड़कर, खुद को अमृत से भी श्रेष्ठ ऐसे संतोष से सिंचित करो। यदि तेरी हृदय की इच्छा शांत नहीं होती है, तो जब तक मेरे व्रत का नियम पूर्ण न हो जाये, तब तक रुको। राजा ने उसकी बात स्वीकार की।

बुद्धिसुंदरी ने खुद की एक प्रतिमा बनाई। उसने प्रतिमा के अंदर छिद्र बनायें और बीच में विष्टा से भर दी। प्रतिमा को चंदन से विलेपन किया और सुंदर आभूषणों से सजाया। राजा को दिखाकर, उसने पूछा-क्या मैं ऐसी ही हूँ अथवा नहीं? राजा ने कहा-अहो! तेरे शिल्प की कुशलता के बारे में क्या कहूँ? तेरा पति भी इसे देखकर, रागी बन जायेगा। तब उसने कहा-यदि ऐसा है, तो इसको अपने पास रख ले और मुझे छोड़ दे। अपने कुल को कलंकित मत करो। यह सुनकर राजा क्रोधित हुआ और पैरों से लात मारकर प्रतिमा को तोड़ दी।

प्रतिमा के अंदर रहा हुआ सब अशुचि पदार्थ बाहर आ गया। उसके वस्त्र बिगड़ गये। राजा ने पूछा-क्या यह प्रतिमा दुर्गंधी पदार्थ से बनायी है? बुद्धिसुंदरी ने कहा-मैं तो इस प्रतिमा से भी हीन हूँ। अग्नि और पानी के द्वारा इसकी शुद्धि की जा सकती है, किन्तु अशुचि से उत्पन्न और अशुचि का स्थान रूप यह मेरा शरीर शुद्ध नहीं किया जा सकता। उसकी यथार्थ वाणी सुनकर, राजा ने कहा-तूने मोहरूपी अंधकार से ग्रसित बनें मुझे सुंदर बोध दिया है। तुम मेरे समस्त पापों को क्षमा करो। बहन! मैं तेरा कौन-सा प्रिय कार्य कर सकता हूँ? तेरी वाणी से, मैं भी आज के बाद परस्त्रियों से विमुख बनता हूँ। वस्त्र, आभूषण आदि से सन्मान कर, राजा ने उसे वापिस भेज दिया। बुद्धिसुंदरी ने जीवनपर्यंत दृढ़शील का परिपालन किया।

॥ बुद्धिसुंदरी चरित्र संपूर्ण ॥

ताम्रलिप्ती नामक नगरी है। वहाँ कुबेर के समान पुष्कल संपत्ति से युक्त धर्म नामक श्रेष्ठी रहता था। एक दिन वह अयोध्या नगरी में आया। दुकान में बैठे धन ने, बाजार से निकलती ऋद्धिसुंदरी को देखकर तत्क्षण ही मोहित हो गया। सुमितश्रेष्ठी की आज्ञा लेकर, धन ने उससे विवाह किया और अपने नगर लेकर आया। वे दोनों दंपति सुखपूर्वक रहने लगे। एक दिन धनश्रेष्ठी अपनी प्रिया सहित बेचने का माल लेकर सिंहलद्वीप गया और बहुत धन का उपार्जन किया। वहाँ पर रहे दूसरे माल को ग्रहणकर, वापिस अपनी नगरी की ओर लौटने लगा। भाग्य के योग से, खराब हवा के कारण, समुद्र के बीच ही जहाज तूट गया। दंपति ने लकड़े के पटिये को ग्रहणकर, समुद्र तीरा। भवितव्यता के वश से, पाँच दिनों के बाद दोनों दंपति किसी दूसरे द्विप में वापिस मिले। वे वन के फलों का आहारकर, अपने प्राणों का निर्वाह करने लगे। जहाज के निर्यामक को सूचित करने के लिए उन्होंने एक ध्वजा लहराई।

ध्वजा को देखकर वहाँ कितने ही पुरुष आये और उन दंपति को देखा। बाद में उन्हों ने अपने स्वामी के पास जाकर कहा-सुलोचन नामक जहाज के मालिक ने, उन दोनों को जहाज में चढ़ने की अनुमति दी। ऋद्धिसुंदरी को देखकर, सुलोचन कामदेव के बाणों से वेधा गया। वह सोचने लगा-यदि यह स्वयं उत्कंठित बनकर, मुझे कंठ से आलिंगन न कर ले, तो मेरे जीवन अथवा इस यौवन से क्या प्रयोजन? इसके पति के जीवित रहते, यह किसी भी तरह से मेरा स्वीकार नहीं करेगी। इस प्रकार सोचकर, सुलोचन ने मध्यरात्रि के समय धर्म को समुद्र में फेंक दिया। प्रातः पति को नहीं देखने पर, ऋद्धिसुंदरी रोने लगी। सुलोचन ने मधुर शब्दों से कहा-भद्रे! रोने से रहा। यदि निःस्नेही तेरा पति चला गया है तो जाने दो। मैं तेरा सेवक बनकर तेरी सब इच्छाओं को पूर्ण करूँगा।

करवत के समान कर्कश उसकी बातों को सुनकर ऋद्धिसुंदरी अपने अभिप्रायों को छिपाती हुई चित्त में सोचने लगी-यह इसी दुष्ट की चेष्टा दिखायी देती है। अनर्थ का कारणभूत मेरे रूप को धिक्कार हो, जिसके लिए इसने ऐसी आचरणा की है। वास्तविक में कामीपुरुष क्या नहीं कर सकते हैं? तो क्या पति रहित बनी मैं भी समुद्र में गिर जाऊँ? किन्तु श्रीजिनधर्म में बालमरण का निषेध किया गया है। तो फिर मैं जीवित रहकर सुकृत (पुण्य) का उपार्जन करूँगी क्योंकि संसार में मानवभव अत्यन्त दुर्लभ है। मैं अखंडशील सहित इस समुद्र से तट को प्राप्त करूँगी। शील की रक्षा के लिए मुझे कालक्षेप करना चाहिए, जिससे कि आशा रूपी पाशे में बंधा हुआ यह सुलोचन सौ वर्ष भी बिता दे।

ऋद्धिसुंदरी ने सुलोचन से कहा-हा! अब मेरा कौन आधार है? इसलिए समुद्र पार करने के बाद, मैं यथोचित करूँगी। ऐसे ऋद्धिसुंदरी ने उसे आशारूपी पाशे में बांधा। सुलोचन ने भी इस बात को स्वीकार किया। कुछ समय पश्चात् कच्छे बर्तनों के समान, जहाज भी तूट गया। पुण्य के योग से, ऋद्धिसुंदरी ने लकडे के पाट को पकड़कर, समुद्र पार किया। धर्मश्रेष्ठी भी पूर्व में भांगे हुए जहाज के लकडे की सहायता से उसी तट पर आया। दैवशात् दोनों दंपति वापिस मिलें और अपनी-अपनी अनुभव की गयी घटना के बारे में कहा। किसी गाँव के स्वामी ने उन दोनों को देखा। आदर सहित उनको अपने घर ले गया। हर्ष से अतिथि-सत्कारकर, धर्म से वही रुकने को कहा। वे वहीं रहे। इधर सुलोचन को भी जहाज के पटिये की सहायता मिली। वह भी तट पर पहुँचा। किसी पल्ली में मछली का आहार करने से उसे कुष्ठ रोग हुआ।

ऋद्धिसुंदरी ने भ्रमण करते सुलोचन को मूर्च्छित अवस्था में देखा और अपने पति को दिखाया। और उसे अपने स्थान पर लाया। कृपालु धर्म ने औषध उपचारकर, उसे नीरोगी बनाया। कहा गया है कि-

उपकारिष्वपकारं कुर्वन्ति प्राकृता अपि प्रायः।
अपकारिष्वपि ये चोपकारिणस्ते जगति विरलाः ॥

प्रायः कर सामान्य लोग भी उपकारियों पर उपकार करते हैं। किन्तु जगत् में वे विरल हैं, जो अपकारियों पर भी उपकार करते हैं। सुलोचन धर्मश्रेष्ठी की अद्भुत सज्जनता देखकर, खुद की दुष्ट चेष्टा से लज्जित बनकर, नीचे मुख किया। धर्म ने उसे खेद का कारण पूछा। सुलोचन ने कहा-मेरा दुष्ट चरित्र ही हृदय में अत्यन्त पीड़ा कर रहा है। मैंने अज्ञान से मूर्ख बनकर तुझे समुद्र में फेंका था, और कामांध बनकर इस सती की इच्छा की थी। उसका फल मैंने यहाँ ही प्राप्त कर लिया है। बाद में महात्मा धर्मश्रेष्ठी ने युक्तिपूर्वक उसे बोध दिया। सुलोचन भी परस्त्री विरति के धर्म में स्थिर बना। साध्वी के द्वारा दिये गये व्रत को,

ऋद्धिसुंदरी ने जीवनपर्यंत सुंदर पालन किया और इहलोक-परलोक में भी सुखी हुई।

॥ ऋद्धिसुंदरी चरित्र संपूर्ण ॥

अयोध्या नगरी में सुघोष पुरोहित की गुणसुंदरी पुत्री थी। गुणसुंदरी यौवन अवस्था में आयी। पुरोहित वेदशर्मा ब्राह्मण के पुत्र वेदरुचि ने उसे देखा। गुणसुंदरी को देखकर वह सोचने लगा-मैं धन्य हूँ, जिसने इसे देखा है। यदि मैं इससे विवाह कर लूँ, तो मेरा जन्म सफल हो जायेगा। किन्तु उससे विवाह करने का उपाय न मिलने से, वेदरुचि चिंतित रहने लगा। पिता के पूछने पर, वेदरुचि ने सत्य हकीकत कही। यह बात सुनकर पिता भी वेदरुचि के दुःख से दुःखित हुआ। उसने जाकर सुघोष पुरोहित से अपने पुत्र के लिए गुणसुंदरी की प्रार्थना की। किन्तु, सुघोष ने श्रावस्ति नगरी के नंदन नामक पुरोहित को अपनी कन्या दे दी थी। फिर भी, वेदरुचि ने गुणसुंदरी का राग नहीं छोड़ा था। उसको प्राप्त करने के लिए वेदरुचि ने बहुत से उपाय किये, किन्तु वे सब उषरभूमि में वर्षा के समान व्यर्थ गये।

श्रावस्ति नगरी से नंदन पुरोहित अयोध्या नगरी में आया और गुणसुंदरी से विवाह कर, वापिस अपनी नगरी में लौटा। फिर भी, वेदरुचि, गुणसुंदरी को भूल न सका। वह एक पर्वत की दुर्गम पल्ली में गया। वहाँ उसने लंबे समय तक पल्लीपति की सेवा की। पल्लीपति के खुश होने पर, उसने अपना कार्य निवेदन किया। वेदरुचि के कथन अनुसार पल्लीपति ने श्रावस्ति नगरी पर भीलों की धाड़ डाली और नगरी को लूंट लिया। विलाप करती गुणसुंदरी को ग्रहणकर, वेदरुचि आनंदित हुआ। उसे पल्ली में ले जाकर कहने लगा-सुंदरी! उस समय जो तूने मेरा चित्त का हरण कर लिया था, वह वापिस दे दो। उसके बिना मुझे सब शून्य प्रतीत हो रहा है। भाग्य ने तुझे, मुझ से अलग कर दिया था, तो भी तुम सदैव मेरे हृदय में निवास करती हो, स्वप्न में दिखायी देती हो, दिशाओं में दिखायी देती हो, और जीभ पर सतत तेरा ही नाम रट रहा हूँ।

वेदरुचि के इस प्रकार कहने पर, विचारशील गुणसंदरी ने कहा-मैं तुझे नहीं पहचानती हूँ। मैंने कब और कैसे तेरा मन हरण किया था। तब वेदरुचि ने अपनी पूर्वघटना सुनायी। वह सुनकर गुणसुंदरी ने सोचा-हा! रागांध बने यह मुझे कहाँ भीलों की पल्ली में ले आया? चाहे मेरुपर्वत चलित हो जाये अथवा सूर्य पश्चिमदिशा में उग जाये, फिर भी जीवित रहते हुए मैं अपने कुल और शील को मलिन नहीं करूँगी। मैं किसी भी तरह इसे समझाकर अपने निर्मल शील की रक्षा करूँगी। **शील की रक्षा के लिए माया का सेवन भी भावी शुभ के लिए ही होता है।**

ऐसा सोचकर गुणसुंदरी ने कहा-यदि पहले भी आप मेरे कार्य करने में समर्थ थे, तो आप को छोड़कर मुझे दूर श्रावस्ति जाने का कोई प्रयोजन नहीं था। तब मैंने आप से विवाह किया होता, तो हम दोनों के कुल और शील कलंकित नहीं होते। क्योंकि कुमार अवस्था में, युवान् का सब विरोध रहित होता है। यदि अब हमारा मिलन होगा, तो लोक में निंदा होगी, कुल की मलिनता और परलोक में भी भयंकर दुःख देनेवाला दुर्गतिगमन होगा। इसलिए महासत्त्वशाली! अब अच्छी प्रकार से विचार करना। बुद्धिमंत पुरुष वे ही कार्य करते हैं, जिससे भविष्य में हित होता हो। इस प्रकार के विविध वचनों की रचना से आनंदित बने वेदरुचि ब्राह्मण ने अपने चित्त में सोचा-मैंने कार्य के सत्य और सरल उपाय को नहीं जाना था। परंतु जिसके लिए इतना क्लेश सहा है, उसको ऐसे ही कैसे छोड़ दूँ? फिर उसने गुणसुंदरी से कहा-तुम जो कह रही हो, वह सत्य है। किन्तु भद्रे! मैं निमेष मात्र के लिए भी तेरा विरह सह नहीं सकता हूँ। क्योंकि इतने समय तक, मैं तेरी प्राप्ति की इच्छा से ही प्राण धारण किये हैं। उससे जो होनेवाला है, वह हो, मैं तुझे छोड़नेवाला नहीं हूँ।

उसके निश्चय को जानकर, बाहर से दिखावा करती हुई गुणसुंदरी ने कहा-आपके इष्ट को पूरा करना मेरा कर्तव्य है। किन्तु मैंने दुर्लभ महामंत्र की साधना प्रारंभ की है। उसके लिए चार मास पर्यंत ब्रह्मचर्यव्रत का स्वीकार किया है। दो मास व्यतीत हो चुके हैं और शेष दो मास हैं। साधना के प्रभाव से पुत्र, संपत्ति और सौभाग्यता प्राप्त होती है। उसके बाद तेरा इष्ट करूँगी। यह तो मेरे लिए गुणकर्ता ही है, इस प्रकार सोचकर वेदरुचि आनंदित हुआ और उसकी बात स्वीकार की। गुणसुंदरी भी कृत्रिम प्रीति दिखाती हुई, गृहकार्य करने लगी। स्नान, अंजन आदि छोड़कर, वह तप से अपने देह को सुकाने लगी। विरस और कम भोजन से उसने अपने शरीर को कृश बना दिया। नियम लगभग पूर्ण हो चुका था।

एक दिन वह रात के समय विलाप करने लगी। पूछे जाने पर, उसने शूल की पीड़ा के बारे में कहा। तब वेदरुचि ने मणि, मंत्र आदि का प्रयोग किया। किसी भी प्रकार से जब शूल की पीड़ा कम नहीं हो रही थी तब गुणसुंदरी ने कहा-मैं आपके साथ गृहवास के लिए अयोग्य हूँ, क्योंकि मुझे अकस्मात् ही ऐसा भयंकर दुःख आ पड़ा है, तीव्र सिरदर्द मेरे शरीर को जला रहा है। सभी सांधें तूट रहे हैं। ऐसे दुःख रूपी दावानल से जलायी गयी मैं अपने प्राणों को धारण करने में असमर्थ हूँ। आपने जो मेरे लिए कष्ट किया था, उससे आपका प्रयोजन सिद्ध नहीं हुआ है। यह मेरे चित्त को अत्यन्त दुःखी कर रहा है। अब मैं जीवित नहीं रह सकती, इसलिए मुझे काष्ठ लाकर दें। इस प्रकार से विलाप करती उसे देखकर

वेदरुचि ने कहा-खेद मत करो। मैं अपने प्राण देकर भी तुझे स्वस्थ करूँगा। सुंदरी! तेरे हृदय को कठोर करो। यह, मैं तेरा सेवक तेरा आज्ञाकारी बन चुका है। यदि तू कहे तो मैं तुझे श्रावस्तिनगरी में रहे तेरे घर पर छोड़ दूँगा। गुणसुंदरी ने कहा-जैसे तैसे बोलनेवाले चुगलीखोरों को निंदा करने से कैसे रोका जा सकता है? तब वेदरुचि ने कहा-मैं ही तेरे पति के सामने साक्षी बनूंगा।

वेदरुचि ने उसे वाहन में बिठाकर, श्रावस्तिनगरी ले गया। गुणसुंदरी को देखकर स्वजन भी संतुष्ट हुए। गुणसुंदरी ने अपने पति से कहा-पुण्यशर्मा ब्राह्मण के इस पुत्र ने, मुझे दुष्ट भीलों से छुड़ाया है। इसने मुझ पर उपकार किया है ऐसा सोचकर, नंदन ने उसे वस्त्र, भोजन आदि सामग्री से सत्कार किया। वेदरुचि भी मैं अपराधी हूँ ऐसा विचारकर शंकित मनवाला हुआ। प्रयाण करने की इच्छा से, वह रात के समय श्रावस्तिनगरी से निकलने लगा। किसी दुष्ट सर्प ने उसे डंस लिया। वेदरुचि चिल्लाने लगा। वैद्य ने विष से उत्पन्न पीड़ा को दूर करने का प्रयत्न किया। भयंकर विष रूपी लहरियों से वेदरुचि के प्राण कंठ में आ गये। वैद्यों ने भी उसका उपचार करना छोड़ दिया। तब गुणसुंदरी ने कहा-यदि इस जगत् में शील जयवंत है और मैंने मन-वचन-काया से भी शील का खंडन न किया हो तो, यह विषरहित बन जाये। इस प्रकार कहकर, गुणसुंदरी ने उस पर जल का छिड़काव किया। तुरंत ही वेदरुचि भी विषरहित बन गया। शील की महिमा देखकर, नगर के लोग भी अश्चर्यचकित हुए और हर्ष प्राप्त किया। वेदरुचि यह बात जानकर हर्षोल्लास से कहने लगा-पहले भी मैंने तुझे बहन के रूप में स्वीकारा था। और अब जीवनदान देने से मेरी माता बनी हो। पाप की बुद्धि दूर करने से गुरु भी हो। मंदभागी मैं तेरा कौन-सा इष्टकार्य कर सकता हूँ? मैंने तेरी महिमा को जान ली है। मैंने तुझ पर बहुत पाप का आचरण किया है। गुणसुंदरी ने कहा-भाई! यदि तुम परस्त्री से विमुख बन जाये, तो समझूँगी कि तूंने मुझ पर उपकार किया है। क्योंकि परस्त्रीविरमण व्रत से इहलोक और परलोक में भी सैंकड़ों सुख मिलते हैं। वेदरुचि ने भी उसकी बात स्वीकार की। अपने पापों की क्षमा मांगकर, वापिस अपनी नगरी लौट गया। गुणसुंदरी ने भी उल्लासपूर्वक शील का परिपालन किया।

॥ गुणसुंदरी चरित्र संपूर्ण ॥

इस प्रकार सत्त्वशाली रतिसुंदरी आदि उन चारों ने अपने-अपने नियम का परिपालन कर, स्वर्ग में देवियाँ बनीं। वहाँ से च्यवकर, ये चारों भी इस नगरी में अवतीर्ण हुई हैं। राजन्! मैं क्रम से उनके बारे में कहता हूँ, तुम सुनो। इस नगरी के कांचन श्रेष्ठी और वसुधारा की तारा नामक पुत्री है, वह ही रतिसुंदरी का जीव है। कुबेरश्रेष्ठी और पद्मिनी की श्री नामक पुत्री है, जो पूर्व भव में बुद्धिसुंदरी थी।

धरणश्रेष्ठी और महालक्ष्मी की जो विनया नामक पुत्री है, वह ही ऋद्धिसुंदरी थी। पुण्यसारश्रेष्ठी और वसुंधरा की जो देवी नामक पुत्री है, वह ही गुणसुंदरी थी। विनयन्धर ने उन चारों कन्याओं के साथ विवाह किया। पूर्व के पुण्य के प्रभाव से ही, ये पाँचों सुख भोग रहे हैं। राजन्! जो इन पाँचों पुण्यात्माओं को विघ्न करता है, वह दरिद्री बनता है अथवा मर जाता है। इनके हुंकार करने मात्र से ही मनुष्य भस्मीभूत हो जाता है, किन्तु मन से भी इन्होंने तेरा विपरीत नहीं सोचा है। इसलिए राजन्! तुम भी अपनी आत्मा को अच्छी तरह से भावित करना। क्योंकि दुर्निवा ऐसे परस्त्रियों की आसक्ति से, मनुष्य दुःख की परंपरा प्राप्त करता है। शील की रक्षा के लिए, शासनदेवी ने इनको कद्रूपी बनायी थी। क्योंकि पापकार्यों से अटकने के लिए कद्रूप भी शुभ के लिए ही होता है।

इस प्रकार के सद्गुरु वचन रूपी अमृत से राजा मिथ्यात्व रूपी विषसमूह रहित बना। तत्पश्चात् उदार बनकर, राजा अपने प्राण के समान जिनधर्म का पालन करने लगा। संवेगरंग से रंगे राजा ने, धैर्य धारणकर अपनी गर्भिणी रानी का राज्य पर अभिषेक किया और स्वयं विनयन्धर और उसकी पत्नियों के साथ, शांतचित्त से सद्गुरु के पास दीक्षा ग्रहण की। विजयन्ती देवी, राज्य का परिपालन करती हुई एक पुत्री को जन्म दिया। उससे मंत्री गण आदि चिंतातुर बने। पुत्र हुआ है, इस प्रकार की घोषणाकर, उसका जन्म महोत्सव मनाया। पुरुषवेष पहनाकर उसे रहस्य में रखा। क्रम से वह यौवन अवस्था में आयी। विजयन्ती देवी के आदेश देने पर, कन्या के वर की चिन्ता के लिए मंत्री ने अपनी बुद्धि का उपयोगकर, यक्ष की आराधना की। यक्ष भी प्रत्यक्ष हुआ और मंत्री से कहा-कल पुत्री के वर के रूप में पोतनपुर राजा के पुत्र को शीघ्र ही उद्यान में लाऊँगा। कन्या के पूर्वभव का पति ही इस देश का राजा बनेगा। इस प्रकार कहकर यक्ष अदृश्य हुआ।

आज मैं कन्या-राजा को साथ लेकर इस उद्यान में आया हूँ। शेष सब भी आपको प्रत्यक्ष ही है। आपको देखने मात्र से ही, कन्या को आप पर तीव्रराग हुआ है। क्षणमात्र में ही कामविकार से ग्रस्त बन गयी है। दोनों आँखों की चपलता से, शर्म से, मुख झुकाने से, शरीर के रोमांच से, स्खलना से युक्त शब्दों के उच्चार से, क्या आपके समान चतुर ने इस कन्या को नहीं पहचाना? क्योंकि बुद्धिमंत पुरुष अपनी चतुरता से दूसरों के मनोभाव जान लेते हैं। ऐसे मंत्री के वचनों को सुनकर बुद्धिनिधि कुमार ने राज्य और कन्या, दोनों का स्वीकार किया। कुमार ने आडंबरपूर्वक गुणसेना कन्या का हाथ ग्रहण किया। सुंदर बुद्धिवाले मंत्रीयों ने कमलसेन कुमार का चंपाराज्य पर अभिषेक किया। जो शंखभव में कलावती पत्नी थी, वही गुणसेना बनी है। इस कारण से उन दोनों में विशेष प्रेम

था।

वच्छदेश के राजा समरसिंह ने, दूत के द्वारा कमलसेन को आदेश दिया कि-वंश परंपरा से मिले इस पृथ्वी के विशाल राज-ऐश्वर्य को भी तुम दुःखपूर्वक भोगोगे, क्योंकि लक्ष्मी, शौर्य के आधीन होती है। तुम मुसाफिर होते हुए भी, दूसरे के राज्य को प्राप्तकर, खुश हो रहे हो और जगत् में माननीय मेरी आज्ञा भी नहीं मान रहे हो। इसलिए इस राज्य को छोड़कर भाग जा, अन्यथा मैं आ ही रहा हूँ, तुम भी युद्ध के लिए तैयार हो जाओ। दूत के वचनों को सुनकर, कमलसेन राजा ने कहा-दूत! तुम शीघ्र ही अपने स्वामी के पास जाकर कहना-यह सत्य है कि मैं स्वयंभू राजा हूँ और दूसरे की राजलक्ष्मी को भोग रहा हूँ। तुम समरसिंह होकर समरजंबूक (शियाल) मत बनना। इस प्रकार दूत को कहकर विदा किया। बाद में कमलसेन ने प्रयाण के लिए नगारा बजाया। प्रतिपक्षी राजा भी सामने आ गया। भयंकर युद्ध चालू हुआ। दया-परायण चंपा के राजा कमलसेन ने कहा-निरपराधी प्राणियों का संहार करनेवाले इस युद्ध का क्या प्रयोजन? उससे बलाबल जानने के लिए हम दोनों ही परस्पर युद्ध करें। समरसिंह ने भी यह स्वीकार किया। उन दोनों के बीच लंबे समय तक युद्ध चला। कमलसेन के द्वारा गदा से प्रहार करने पर, समसिंह अचेतन के समान बेहोश होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। शीत आदि उपचार से, उसे होश में लाया गया! तब अंगदेश के राजा ने कहा-युद्ध से मैंने तेरी भुजाबल जान ली है। इसलिए वापिस शस्त्र उठाओ और मेरे साथ युद्ध करो। यह सुनकर समरसिंह भी आश्चर्यचकित हुआ और साहसवान् कुमार से कहने लगा-अहो! तेरा पराक्रम! अहो! विश्व में अद्‌भुत ऐसा यह तेरा धैर्य! मान रूपी प्रताप से रहित बने मुझे राज्य का कोई प्रयोजन नहीं है। किन्तु मेरी विज्ञप्ति है कि तुम मेरी आठों कन्याओं के साथ राज्य भी ग्रहण कर लो। तेरी आज्ञा से, अब मैं अपना परलोक का हित करना चाहता हूँ। इस प्रकार का आग्रहकर समर राजा ने अपनी आठ कन्याएँ कमलसेन को दी और स्वयं ने दीक्षा ग्रहण की।

कमलसेन अब दो राज्य तथा नव वधूओं का स्वामी बन गया था। चंपानगरी वापिस लौटकर, अनुकंपा से शत्रुओं को छोड़ दिया। इधर, पोतनपुर के राजा शत्रुंजय ने भी अपने पुत्र कमलसेन के समाचार सुने। शत्रुंजय राजा ने उसके पास मंत्री भेजे। वे भी कुमार के समीप जाकर कहने लगे-स्वामी! आपके प्रवास के बाद पिता को जो दुःख हुआ था, वह हम एक जीभ से कहने में असमर्थ हैं। अब आपके कुशल समाचार प्राप्तकर हम स्वस्थ बने हैं। आपके विरह रूपी दावानल से पीड़ित माता-पिता को दर्शन देकर, अमृत से सिंचित के समान शांत करें। मंत्रियों के वचन सुनकर, कुमार आतुर बना और प्रमाद छोड़कर बहुत-सी

सेना के साथ प्रयाण किया। आनंदित चित्तवाला कुमार शीघ्र ही प्रयाण करते हुए पोतनपुर आया। उसके आने के समाचार सुनकर, शत्रुंजय राजा संमुख आया। सेवक बनकर, कुमार ने पिता के चरणकमल में नमस्कार किया। पुत्र को प्राप्तकर, पिता भी संतुष्ट हुआ। अपने पुत्र के चरित्र, पराक्रम, प्रभुता आदि देख और सुनकर, राजा खुद को पुत्रवालों में अग्रगणनीय मानने लगा। राज्य के उचित जानकर, शत्रुंजय राजा ने उसका राज्याभिषेक किया और महोत्सव मनाया। राजाओं में श्रेष्ठ ऐसा शत्रुंजय राजा, अब विषयभोगों से विरक्त होने लगा। उस चतुर राजा ने शीलन्धर गुरु के पास दीक्षा ग्रहण की। राजर्षि ने क्रम से, मूल से ही कर्म रूपी वृक्ष को उखाड़कर, केवललक्ष्मी प्राप्त की और शीघ्र ही मोक्ष पधारे।

कमलसेन राजा भी शुक्लपक्ष के चंद्र समान राजलक्ष्मी से बढ़ता हुआ, पृथ्वी को एकछत्री बनायी। वह पृथ्वीतल पर विरोध रहित हुआ। शाखाओं से फैले हुए वडवृक्ष के समान, वह भी पुत्रों से विस्तृत हुआ। एकदिन वर्षाकाल के समय, नदी में क्रीड़ा करने की इच्छा से, कमलसेन राजा, नगर से बहार निकला। नदी का पूर, बहुत दूर तक पृथ्वी पर फैल रहा था। प्रवाह के समूह मिलने से, वह नदी प्रतिक्षण बढ़ रही थी। उसकी बड़ी लहरें तट पर रहे वृक्षों को गिरा रही थी। बाद में नदी वापिस अपनी प्रकृति से स्थिर बन गयी। यह देखकर, राजा अपने हृदय में सोचने लगा-मनुष्यों की संपत्ति आदि का विस्तार यह सब कुछ अनर्थ का ही कारण है। मनुष्य भव में लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। यह जीव नदी के समान है और यह लक्ष्मी नदी के पूर के समान है। जो मनुष्य कृत्य-अकृत्य का विवेक प्राप्त कर लेता है, वह उसके वश नहीं होता है। अब इस चंचल लक्ष्मी से, मुझे काम नहीं है। जहाँ पर अभिमान का सुख है, पुनः भोग साधारण है। वे प्राणी धन्य हैं, जिन्होंने बिजली के समान अस्थिर राजलक्ष्मी को छोड़ दी है, और मैं शहद पर मधुमक्खी के समान अभी भी इस पर आसक्त हूँ। इस प्रकार का विचार कर, संवेगरंग से अपने मन को रंगकर, कमलसेन राजा ने अपने पुत्र सुषेण का राज्याभिषेक किया। स्वयं ने गुणसेना आदि अंतःपुर के साथ संयम ग्रहण किया। आयुष्य पूर्णकर कमलसेन राजर्षि और गुणसेना ब्रह्मकल्प में देव के रूप में उत्पन्न हुए। पूर्वभव के संस्कार से, वे दोनों वहाँ प्रीतिपूर्वक रहने लगे।

इस प्रकार पं. श्रीसत्यराजगणि द्वारा विरचित श्रीपृथ्वीचंद्रचरित्र में कमलसेन राजर्षिचरित्र का द्वितीय भवग्रहण संपूर्ण हुआ।

तृतीय भव

सूरसेन देश में मथुरा नगरी है। वहाँ पर तीनों शक्तियों से युक्त, **मेघराजा** न्यायपूर्वक राज्य कर रहा था। उसको सुंदर गुणों से युक्त, मोतीयों के हार के

समान निर्मल, सौभाग्यवती **मुक्तावली** नामक अर्धांगिनी थी। चमकती बिजली से युक्त मेघ के समान, मुक्तावली देवी से युक्त मेघराजा प्रजाओं के संपूर्ण दुःख, शोक रूपी ताप को दूर कर दिया था। एक दिन महल में प्रवेश करते समय, मेघराजा ने चंद्रमुखी ऐसी अपनी पत्नी को आँसु बहाते देखकर कारण पूछा। उसने कहा-यदि लीला से उछल-कूद करता बालक गोद में न खेल रहा हो तो इस रूप, सौभाग्य आदि संपदा से क्या प्रयोजन है? तब मेघराजा ने कहा-प्रिये! यह सब भाग्य के आधीन है? दुर्लघनीय भवितव्यता का कोई उल्लंघन नहीं कर सकता है। मुक्तावली रानी ने कहा-फिर भी कोई उपाय करें। क्योंकि भाग्य के योग होने पर, प्रयत्न से फल मिल सकता है। मणि, मंत्र, औषध आदि की अचिंत्य महिमा है अथवा देवता की आराधना से भी वांछित फल की प्राप्ति हो सकती है। मेघराजा ने देवी के वचनों को अच्छी प्रकार से विचारकर कहा-शोक छोड़ दो, मैं तेरी इच्छा पूर्ण करूँगा।

देवी को आश्वासन देकर, साहसवान् राजा कृष्णचतुर्दशी की रात्रि में, श्मशान गया। वहाँ मेघराजा ने ऊँचे स्वर में कहा-यहाँ उपस्थित भूत, पिशाच आदि मेरे पवित्र वचनों को सुनें। मैं तुम्हें मेरा मांस दे रहा हूँ, उसके बदले में मुझे पुत्र देना। कोई पिशाच उसके शब्द सुनकर कहने लगा-राजन्! मांस से नहीं किन्तु अपना सिर देकर पुत्र प्राप्त कर सकते हो। राजा ने कहा-मैं अपना सिर भी देने को तैयार हूँ। इस प्रकार कहते हुए, राजा ने साहस सहित हाथ मे तीक्ष्ण छरी लेकर गले पर वार करने लगा। पिशाच ने राजा का हाथ पकड़ लिया और कहा-मैं तेरे सत्त्व से खुश हूँ। तुझे पुत्र होगा। अपने हृदय में किसी भी प्रकार का संशय मत करना। इसकी प्रतीति यही है कि निद्राधीन देवी आज, रात के समय सिंह को स्वप्न में देखेगी। यह सुनकर मेघराजा खुश हुआ और वापिस अपने महल लौट आया।

कमलसेन का जीव भी ब्रह्मकल्प से च्यवकर, मुक्तावली की कुक्षि में, पुत्र के रूप में अवतीर्ण हुआ। तब देवी ने रात्रि के समय सिंह को स्वप्न में देखा। रोहणपृथ्वी जिस प्रकार अच्छे मणियों को धारण करती है, उसी प्रकार देवी ने गर्भ धारण किया। शुभ दिन में, देवी ने पुत्र को जन्म दिया। उसके जन्म के हर्ष से मानो मेघ ने पानी की धाराओं से वर्षा की हो! देव ने हमको सिंह स्वप्न से सूचितकर इस बालक को दिया है, ऐसा सोचकर हर्षपूर्ण हृदयवाले राजा ने उसका देवसिंह नाम रखा।

उज्जयिनी नगरी में **विजयशत्रु** राजा राज्य करता था और उसकी **कनकमंजरी** रानी थी। गुणसेना का जीव भी स्वर्ग से च्यवकर, मानस सरोवर में हंसी के समान, कनकमंजरी की कुक्षि में पुत्री के रूप में अवतीर्ण हुई। उसका नाम

कनकसुंदरी रखा गया। यौवन अवस्था प्राप्त करने पर भी, कनकसुंदरी विषयसुखों से विमुख ही थी।

समान उम्रवाली सखियों ने कनकसुंदरी को विविध प्रकार से समझाया, किन्तु विषयरस से विमुख बनी वह, पुरुषों का नाम भी सुनना पसंद नहीं करती। यह जानकर राजा चिंतातुर हुआ। मंत्री से उपाय पूछा। बुद्धि के उपयोग से अपने चित्त में सोचकर, मंत्री ने कहा-पूर्वभव में, इस कन्या का किसी पुरुष पर अधिक प्रेम होगा। इसलिए वह उसे छोड़कर किसी अन्य पुरुष को नहीं चाहेगी। उस पुरुष को पहचानने के लिए, कन्या को सभी राजपुत्रों के चित्र दिखायें जायें। इस उपाय से उसके पूर्वभव का पति मिल सकता है। कहा भी गया है कि-

श्रुतं प्रियस्य नामापि प्रतिरूपमपीक्षितम्।
ध्रुवं जन्मान्तरप्रेम प्रकाशयति देहिनाम्।।

प्रिय का नाम सुनने से, उसका चित्र देखने पर भी प्राणियों का जन्मांतर का प्रेम प्रकाशित हो जाता है। यह उपाय योग्य है, ऐसा सोचकर राजा ने विविध चित्रकार पुरुषों को बुलाया। और वे अपने साथ कन्या का चित्र लेकर विविध राज्यों में गये। चित्रकारों ने भी अनेक राजपुत्रों के चित्र ग्रहणकर वापिस अपनी नगरी आये और राजा की आज्ञा होने पर, वे चित्र दिखाये। राजा ने उन चित्रों को कन्या के पास भेजे। अन्यकार्य में विघ्न डालनेवाले, इन चित्रों को देखने से क्या लाभ होगा? इस प्रकार कहकर, कनकसुंदरी ने असूया सहित उन चित्रों को त्याग दिये। इसी बीच मथुरा से भी चित्रकार पुरुष वापिस लौटे। उन्होंने देवसिंहकुमार का अद्‌भुत रूप दिखाया। कुमार के रूप को देखकर राजा ने कहा-यदि इस कुमार के रूप पर भी कन्या का मन रागी नहीं होता है, तो उससे बढ़कर कोई नीरागशिरोमणि नहीं होगा। यह कन्या मूर्ख अथवा पशु कही जायेगी। इस प्रकार कहकर, राजा ने चित्रपट को कन्या के पास भेजा। चित्रपट के दर्शन से कन्या अत्यन्त आनंदित बनी। वह अपने मस्तक को हिलाती हुई सखियों से कहने लगी-अहो! विज्ञान से कुशल इस रूप को किसने चित्रित किया है? अथवा सखि! इस जगत् में क्या कोई पुरुष ऐसा रूपशाली भी है, जिसका चित्र भी ऐसा अद्वितीय है। सखियों ने कहा-स्वामिनी! यह मेघराजा का पुत्र देवसिंह है। वर आपके उचित है। यदि भाग्य उसके साथ मिलन करा दे, तो सुंदर होगा।

इसी बीच राजा ने, दासी से वह चित्र मंगाया। कुमारी को वर पसंद है, ऐसा जानकर, राजा ने शीघ्र ही अपने मंत्रियों को मथुरा भेजा। उन्होंने मेघराजा समक्ष, कन्या के लिए देवसिंह की याचना की। मेघराजा के आज्ञा देने पर, कुमार सुंदर सामग्री से युक्त, कन्या से पाणिग्रहण करने के लिए प्रयाण किया। महोत्सवपूर्वक कन्या से विवाहकर, कुमार कितने ही दिन तक वहाँ सुखपूर्वक रहा।

एकदिन वहाँ पर चार ज्ञान से युक्त सुरगुरु नामक सूरिभगवंत पधारे। उनका आगमन सुनकर जितशत्रुराजा परिवार तथा नागरिक लोगों के साथ उद्यान में गया। परिवार सहित सूरिभगवंत को तीन प्रदक्षिणा देकर वंदन किया और अपने स्थान पर बैठा। गुरुभगवंत ने इस प्रकार देशना प्रारंभ की - कषाय रूपी दीवार तथा राग-द्वेष रूपी कपाट से युक्त, घोर अंधकार से भरा हुआ यह संसार रूपी कारागृह अत्यंत निःसार है। इस बंदिखाने में फंसे प्राणियों को कुटुंब का बंधन होता है। चतुरपुरुषों को सदा धर्म में प्रयत्न करना चाहिए। धर्म के प्रभाव से विपदा नष्ट हो जाती है और इहलोक-परलोक में सुख की प्राप्ति होती है। मोक्ष का उपाय ही प्रशस्य है और वह भगवान् की आज्ञा का परिपालन करने से मिलता है। आज्ञा दो प्रकार की है - द्रव्य और भाव स्तव। सर्व जीवों पर दया यह भावस्तव है। साधुओं के लिए पाँच महाव्रत और रात्रिभोजन विरमण व्रत तथा पाँच समिति, तीन गुप्ति रूपी अष्टप्रवचनमाता भावस्तव रूप है। क्षमा आदि दश प्रकार का धर्म, साधुओं का मूल धर्म कहा जाता है, पिंडविशुद्धि आदि उत्तरगुण है। इनकी सम्यग् आराधना करने से मोक्षफल की प्राप्ति होती है। इसलिए जीवनपर्यंत इसकी आराधना करनी चाहिए। इसे स्वीकार कर उपसर्ग, परीषह आदि सहन करने चाहिए। पुरुषार्थ विशेष से इसकी आराधनाकर प्राणी भव-कैद से मुक्त हो जाते हैं। इसलिए भव्यप्राणियों! भव-कारावास से मुक्ति चाहते हो तो आदरसहित जिनेश्वर भगवंत की आज्ञा की आराधना करो।

चारित्रमोहनीय के उदय से यदि साधु धर्म पालन करने में असमर्थ हो तो चारित्रधर्म की प्राप्ति के लिए पाँच अणुव्रत, चार शिक्षाव्रत और तीन गुणव्रत रूपी श्रावकधर्म का पालन करो। तथा जिनमंदिर और प्रतिमा का निर्माण कराओ। विधि से प्रतिमा की प्रतिष्ठा करो, पूजा करो तथा सुपात्रों में दान दो। इस प्रकार कुशल आशयवालें मनुष्य गृहस्थधर्म का परिपालन करते हुए संसार पर्यटन को अल्पकर, स्वर्ग आदि सुखों को भोगते हुए क्रम से मोक्ष का आश्रय लेते हैं। जो जिनभवन का निर्माण कराते हैं, वे संसार-समुद्र से तीर जातें हैं। जीर्णोद्धार करानेवालें सर्व पापों से मुक्त बन जाते हैं। जिनेश्वर की प्रतिमा निर्माण करानेवाले रोग, शोक, भय आदि से रहित होकर शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त करते हैं। अरिहंतप्रतिमा की प्रतिष्ठा करनेवाले, देवलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करतें हैं और उनके दुःख, दौर्भाग्य नष्ट हो जातें है। श्रीवीतराग की पूजा करनेवाले भव्यप्राणी, अनंतभवों में उपार्जित पापकर्मों का क्षय करतें हैं। विधि से किया गया द्रव्यस्तव, भावस्तव का कारण होता है तथा सात या आठ भवों में ही मोक्ष प्रदाता होता है। पुनः धर्म परिणाम के विशेष से अनाभोग से करने पर भी शुक (तोते) के युगल के समान निश्चय ही कुशल उदय का कारण होता है। तब देवसिंहकुमार ने सूरिभगवंत से

विज्ञप्ति की - भगवन्! शुक युगल का द्रव्यस्तव कुशल अनुबंध का कारण कैसे हुआ? तब सूरिभगवंत ने इस प्रकार कथा प्रारंभ की -

दक्षिण भरतार्ध में वैताढ्यपर्वत के निकट सर्व ऋतुओं में सदैव फल, फूल आदि से सुशोभित सिद्धिकर नामक वन था। उस वनखंड के मध्य में विद्याधर के द्वारा निर्मित मणि, रत्न से जड़े स्वर्ण सिंहासन पर प्रातिहार्य से युक्त माणेक से बनायी गयी अरिहंत की प्रतिमा विराजमान थी। वनखंड में विद्या सिद्ध करने के लिए आते बहुत से विद्याधरों के द्वारा यह प्रतिमा नित्य पूजी जाती थी तथा वंदन, स्तवन और भक्तिपूर्वक ध्यायी जाती थी। उसी वन में जिनमंदिर के नजदीक में, आम्रवृक्ष पर सरलस्वभावी, लघुकर्मी, परस्पर स्नेहशील एक शुक युगल (तोते की जोड़ी) निवास करता था। विद्याधरों के द्वारा की जाती प्रतिमा की पूजा देखकर, उनके हृदय में सदा आनंद का कंद वृद्धिंगत होता।

एकदिन एकांत देखकर उस तोते के युगल ने भक्ति प्रफुल्लित मन से अरिहंत प्रतिमा के कानों पर आम्र की मंजरियों से बनायी माला स्थापित की तथा दोनों पैरों पर लेपकर भावना भायी। भाव के उल्लास से तिर्यंचगति नामकर्म का विनाशकर शातावेदनीय युक्त मनुष्यायु बांधा। कितने ही काल के पश्चात् विशुद्धिमानतोते ने आयुष्य पूर्णकर जंबूद्वीप के विदेहक्षेत्र में रमणीय नामक विजय में श्रीमंदरपुर के नरशेखर राजा की कीर्त्तिमती रानी की कुक्षि में पुत्र के रूप में अवतीर्ण हुआ। स्वप्न में रानी ने सूर्यमंडल के समान कुंडल देखें। राजा से महाराज पुत्र की प्राप्ति सुनकर रानी हर्षित होती हुयी गर्भ का पालन करने लगी। जिस प्रकार पूर्णिमा की संध्या चंद्र को जन्म देती है, उसी प्रकार रानी ने प्रशस्त दिन में पुत्र को जन्म दिया। नाल का खनन करते समय बहुमूल्य रत्ननिधि निकली। राजा ने आडंबरपूर्वक पुत्र जन्म महोत्सव मनाया। निधि की प्राप्ति से तथा कुंडल के स्वप्न से, पुत्र का निधिकुंडल नाम रखा। निधिकुंडल कुमार यौवन-अवस्था प्राप्त करने पर भी, रमणीय स्त्रियों पर मुनिंद्र के समान लेशमात्र भी ध्यान नही देता था। स्वयंवर में आयी कन्याओं को कुशल अनुबंध कर्म के उदय से वीतराग के समान सामने भी नही देखता था। धुरंधर धनुर्धर होते हुए भी शिकार के बारे में सोचता नही था। मांस को विष तथा मदिरा को विष्टा के समान मानता था। निंदक लोगों को देखकर बहुत रोष करता था। शत्रु के भी गुणों को सुनकर हृदय में आनंदित होता था। इस प्रकार पिता आदि को आनंद उत्पन्न करता हुआ, मित्रों के साथ खेलता हुआ कुमार कलाओं से बढ़ने लगा।

इस ओर माध्यस्थ तथा सरल आशयवाली वह शुकी भी आयुष्य पूर्णकर उसी विजय के विजयावतीपुरी में रत्नचूड राजा की सुवप्रा देवी की कुक्षि में पुत्री के रूप में अवतीर्ण हुयी। कालक्रम से माता ने जन्म दिया। पिता ने

उसका पुरंदरयशा नाम रखा। क्रम से बढ़ती हुयी वह यौवन-अवस्था में आयी। किंतु वह कानों से श्रृंगाररस कथाओं का श्रवण नही करती थी। भोगिलोगों का वस्त्र परिधान, श्रृंगार आदि को नही देखती थी। भोग स्त्रियों की गोष्ठि में नही बैठती थी। सखियों के साथ कामरस का संवाद नही करती थी। तारुण्य अवस्था में उसे पुरुषों से विमुख देकर माता-पिता चिंतित बने। तब राजा ने मतिसागर आदि मंत्रियों को बुलाकर पूछा - तारुण्य अवस्था में भी यह कन्या पति की इच्छुक नही है। उसके विवाह का क्या उपाय है? मतिसागर मंत्रीने कहा - स्वामी! यह कामरोग निःसत्त्वशाली पापियों के हृदय में उछलता है, किंतु महात्माओं के हृदय में नही। आपकी पुत्री पूर्वभव के पति बिना अन्य किसी भी पुरुष पर रागिणी नही होगी। इसलिए राजपुत्रों के चित्र लाकर दिखाएँ। पश्चात् कन्या के मनोभाव जानकर विवाह निश्चित करे।

राजा ने अनेक राजकुलों में अपने गुप्तचर भेजें। उन्होंनें भी राजकुमारों के चित्र लाकर दिखाएँ, किंतु पुरंदरयशा को कोई पसंद नही आया। एकदिन उसने निधिकुंडल के चित्र को देखा। चित्र देखते ही उसकी आँखें स्थिर हुयी, रोमांच होने लगा और दीर्घ निःश्वास छोड़ने लगी। पुरंदरयशा ने सखी से पूछा - यह किसका रूप है, जिसे देखकर मुझे हर्ष उत्पन्न हो रहा है? सखियोंने जाकर यह बात राजा से कही। राजा के द्वारा अपने आदमियों से पूछने पर उन्होनें कहा - यह श्रीमंदरपुर के नरशेखर राजा का निधिकुंडल नामक पुत्र है। यह गुणवान् तथा सदाचारी है। किंतु इसमें एक दूषण यह है कि स्वयंवर के लिए आयी कन्याओं को आँख उठाकर भी नही देखता है। यह सुनकर रत्नचूडराजा ने पुरंदरयशा का रूप चित्रपट पर चित्रित कराकर, निधिकुंडल की परीक्षा करने के लिए निपुण पुरुषों के हाथ में सोंपकर भेजा। वे भी प्रयाण करते हुए संध्या के समय श्रीमंदपुर पहुँचे और नरशेखर राजा से मिले।

कुलदेवी ने स्वप्न में निधिकुंडलकुमार को पुरंदरयशा का रूप दिखाया। पूर्वभव के अभ्यास से वह अत्यंत पसंद आयी। कुमार ने उसे बुलाया। तब लज्जा से सिर झुकाकर मौन रही। कुमार ने प्रेम से उसका हाथ ग्रहण किया। इसी बीच चारण लोगों की स्तुति से तथा वाजिंत्रों के घोष से कुमार जाग गया। पुरंदरयशा को नही देखकर, कुमार दुःखित होने लगा। कुमार को चिंतातुर देखकर, मित्रों ने कारण पूछा। कुमार ने अपने स्वप्न के बारे में कहा। उसी समय कुमार की आज्ञा लेकर, रत्नचूड राजा के पुरुषों ने अंदर प्रवेश किया और पुरंदरयशा का चित्रपट्ट दिखाया। विकसित नेत्रों से देखकर कुमार ने कहा - वह यह ही प्राण वल्लभा है। मित्रों ने कहा - नारी ऐसी नही हो सकती है, स्वप्न में देवी ने ही दर्शन दिएँ है। कुमार के द्वारा चित्रकारकों से पूछने पर, उन्होनें कहा विधाता ने देवी का रूप

हरणकर इसे बनाया है। यह रत्नचूडराजा की पुरंदरयशा कन्या है। कुमार ने खुश होकर उन्हें लाख स्वर्ण मुद्राएँ दी। कार्य सिद्ध हो जाने से, वे भी अपने नगर लौट आएँ।

कुमार ने शुभ मुहूर्त्त में हाथी, रथ, घोड़े, सुभटों के साथ प्रयाण किया। बीच में महाटवी आयी। कुमार घुड़सवारी करने निकला। घोडे के द्वारा अपहरण किए जाने पर, कुमार वन में भटक गया और रात्रि के समय किसी एकांत स्थल पर बैठ गया। इतने में ही रुदन करती किसी स्त्री का करुणस्वर सुनायी दिया। कुमार उस दिशा की ओर चल पड़ा और गुप्तरीति से छिप गया। वहाँ पर उसने अग्निकुंड के समीप में लाल चंदन से लिप्त, लाल कणवीर की माला धारणकर कापालिक के द्वारा मंडल में स्थापित की गयी किसी सुंदर कन्या को देखा। छोटी तलवार से युक्त योगी ने उस कन्या को बालों से ग्रहणकर घोषणा की - हे देवी भगवती! हे त्रिशूलधारी! हे शिष्यवत्सला! इस कन्या की बलि ग्रहण करो। पश्चात् कापालिक ने कन्या से कहा - भद्रे! अपने इष्ट देव का स्मरण कर लो क्योंकि शस्त्रपात की अवधि तक ही तेरा जीवन है। कन्या ने भी धैर्य धारणकर कहा - इस अवस्था में, मैं किसका स्मरण करुँ? जहाँ पर आप जैसे योगी है, वहाँ पर किसका शरण लिया जा सकता है? फिर भी सर्वप्राणियों पर वत्सलतावालें वीतराग भगवान् ही मेरे शरण है। तथा पिता द्वारा अर्पित और मेरे द्वारा मन से स्वीकृत नरशेखर राजा का पुत्र निधिकुंडल कुमार मेरा शरण हो।

अपना नाम सुनकर, कुमार शीघ्र ही वहाँ पर आ पहुँचा और कापालिक को केशों से पकड़कर कहने लगा - रे पापिष्ठ! इस कन्या को मारने की इच्छा करते हुए, तूंने खुद के ही विनाश को आमंत्रण दिया है। कुमार की कठोर वाणी सुनकर, योगी भयभीत हुआ और कहा - उत्तम पुरुष! मेरे कार्य में विघ्न मत करो। मैंनें पूर्व में ज्वालिनी देवी की आराधना की थी। बत्तीस लक्षणों से युक्त इस दुर्लभ कन्या को प्राप्त की है। विधि पूर्ण हो जाने के पश्चात् मैं विद्या सिद्धकर तेरा वांछित पूर्ण करुँगा। कुमार ने क्रोधित होकर कहा - मूढ! योगियों का वेष पहनकर, चांडाल प्रायोग्य कार्य करते हुए लज्जित नही होते हो? उस मूढ विद्या को सिद्धकर क्या करोगे? अज्ञ! तुच्छ कार्य के लिए चिर समय तक पालन कर रहे अपने व्रत का विनाश मत करो। क्या तूने नही सुना है कि प्राणीघात गहन दुःख का कारण है? इसलिए तुम इस पाप से रुक जाओ। यह ही मेरा उपकार होगा। कुमार की मधुर वाणी से कापालिक ने प्रतिबोध पाकर कहा - भाग्यशाली! तूने दुर्गति की ओर प्रयाण करते मुझे बचा लिया है। मैं अपने गुरु से प्रायश्चित्त ग्रहण करुँगा तथा पाप से विरत होकर अपनी साधना करुँगा। यह रत्नचूडराजा की पुत्री है। आप ही कन्या को वहाँ सुरक्षित पहुँचा देना इस प्रकार कहकर कापालिक

अपने स्थान पर चला गया।

यह ही पुरंदरयशा है अथवा नही? इस प्रकार कुमार को संदेह हुआ। कुमार ने उसे आश्वासन देकर कहा - भद्रे! तूने जिस निधिकुंडल का नाम उच्चार किया था, वह मैं ही हूँ। तब पुरंदरयशा सोचने लगी - इसकी वाणी सुनकर मुझे हर्ष उत्पन्न हो रहा है। अपर पुरुष मेरे मन को बहला नही सकता है। इस लिए यह ही मेरा पति है, इस प्रकार निश्चयकर कुमार से कहा - मैं नगर में पहुँचने के बाद आप से सब वृत्तांत कहूँगी। क्या आप कुशल है? कुमार ने कहा - तेरे मुख-चंद्र के दर्शन से अब मैं स्वस्थ बना हूँ। इस प्रकार परस्पर आलाप करते हुए रात्रि बीत गयी। प्रातः पद चिह्न के अनुसार वहाँ घुडसवार आ पहुँचे। उन दोनों को देखकर अत्यंत आनंदित हुए। क्रम से सेना सहित प्रयाण करते हुए वे दोनों विजयावतीपुरी आएँ। रत्नचूड राजा ने द्विगुण आनंद से बडे आडंबरपूर्वक उन दोनों का विवाह किया। कितने ही दिन पर्यंत कुमार वहाँ पर रुका। पश्चात् राजा की आज्ञा लेकर पत्नी सहित नगरी में पहुँचा। दोगुन्दुकदेव के समान, निधिकुंडलकुमार ने अनेक लाख पूर्व वर्ष सुखपूर्वक व्यतीत किएँ।

एकदिन भयंकर युद्ध में, नरशेखर राजा शत्रु के गाढ प्रहार से मरण प्राप्त हुआ। यह समाचार सुनकर, निधिकुंडलकुमार हृदय में अत्यंत दुःखी हुआ। विषयों से तथा राज्य से विरक्त होकर कुमार सोचने लगा - आत्मन्! लक्ष्मी चंचल है, जीवन चपल है, भोग अस्थिर है और संयोग वियोग अंतवाले हैं। माता-पिता आदि में स्नेह सर्व झूठा है। वे कहाँ से आएँ है? और कहाँ जानेवाले है? यह नही जाना जा सकता है। सकल स्नेह इंद्रजाल सदृश है। इस प्रकार शोक संतप्त चित्तवालें कुमार का कितना ही समय बीत गया। एक दिन वहाँ पर श्रीअनंतवीर्य तीर्थंकर ने पदार्पण किया। देवोंने समवसरण की रचना की। तब वनपालक ने आकर राजा से विज्ञप्ति की - महाराज! आपके पुण्य समूह से प्रेरित होकर भगवान् श्रीअनंतवीर्य तीर्थंकर यहाँ पर पधारे है। यह सुनकर राजा हर्षित हुआ और उसे पारितोषिक दान दिया। शोक दूरकर, अंतःपुर सहित राजा वंदन करने निकला। समवसरण देखकर, निधिकुंडल राजा ने सर्व राजचिह्न छोड दिएँ। भगवंत को तीन प्रदक्षिणा देकर, वंदनकर यथास्थान पर बैठा। भगवान ने जगज्जीव उपकार के लिए देशना दी। भगवान् की देशना सुनकर, राजा वैराग्यवासित मनवाला हुआ। पश्चात् पुत्र को राज्य सौंपकर, सात क्षेत्रों में धन का उपयोगकर पत्नी सहित राजा ने दीक्षा ग्रहण की। निरतिचार चारित्र का सुंदर रीति से परिपालनकर, वे दोनों सौधर्म देवलोक में पाँच पल्योपम आयुष्यवालें देव युगल बनें।

आयुष्य पूर्ण हो जाने से निधिकुंडल देव का जीव, स्वर्ग से च्यवकर महाकच्छविजय के विजया नगर में, महासेनराजा की चंद्राभा देवी की कुक्षि में

पुत्र के रूप में अवतीर्ण हुआ। समय पूर्ण होने पर, रानी ने तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया। राजा ने बडे आडंबर से जन्म-महोत्सवकर उसका ललितांग नाम रखा। क्रम से बढता हुआ बहोत्तर कलाओं का अभ्यासकर यौवन अवस्था में आया। इधर पुरंदरयशा का जीव भी देवलोक से च्यवकर उसी विजय के परमभूषणपुर में, पुण्यकेतु राजा की रत्नमाला देवी की कुक्षि में पुत्री के रूप में अवतीर्ण हुयी। पिता ने उसका उन्मादयन्ती नाम रखा और क्रम से वह यौवन-अवस्था में आयी। परंतु उन्मादयन्ती विषयों से पराङ्मुख थी। सखियों के द्वारा बहुत समझाने पर भी वह नही मानती थी। तब माता ने कहा - वत्स! वर बिना कन्या शोभा नहीं देती है। पुत्री ने कहा - ज्योतिष्क कला, नभोगामिविमानविनिर्मिति कला, राधावेध कला और विषघ्नगारुडमंत्र कला। इन चारों कलाओं में से, जो एक कला के द्वारा भी मेरे मन को अधिक रंजित करेगा, उसीसे मैं विवाह करुँगी। पुत्री की प्रतिज्ञा सुनकर, राजा ने स्वयंवरमंडप का आयोजन किया और राजपुत्रों को आह्वान किया। समय पर, वें भी आगएँ। राजा ने उनका सत्कारकर निवास स्थान अर्पित किएँ। शिल्पियों ने स्वयंवरमंडप का निर्माण किया जिसमें मणि-रत्नमय स्तंभ, स्फटिक पुतली, मंच की श्रेणियाँ, मध्य स्तंभ पर राधा स्थापित किये गए थे।

राजकुमार राधावेध करने लगें। किंतु वे कन्या की दृष्टि में हास्यास्पद बनें। इसीबीच ललितांगकुमार ने लीलामात्र से ही राधावेधकर जयपताका प्राप्त की। ललितांग को देखकर राजपुत्री अत्यंत संतुष्ट हुयी। इतने में ही आकाशमार्ग से किसी विद्याधर ने अकस्माद् ही राजकन्या का अपहरण कर लिया। यह देखकर परिवार सहित राजा व्याकुल हो गया। और घोषणा की - इस समय जो कन्या को वापिस लाएगा, मैं उसीसे कन्या का विवाह करुँगा। इसलिए सभी राजकुमार स्वशक्ति के अनुसार प्रयत्न करें। यह सुनकर ललितांग ने कहा - यहाँ पर कोई है, जो मुझे उस दुष्ट चोर का स्थान बता सके। तब दूसरे कुमार ने कहा - ज्योतिष्क लग्न से मैं जान सकता हूँ कि राजपुत्री का अपहरण कर्ता विद्याधर अतीव दूर चला गया है। मैं उस स्थान को भी जानता हूँ। यदि कोई मुझे वहाँ पर ले जाये तो मैं उस स्थान को दिखा सकता हूँ। तब किसी तीसरे कुमार ने विद्या के बल से आकाशगामी विमान बनाया। ललितांग तथा दूसरे राजकुमार उसमें बैठ गये। और ज्योतिष्कवेत्ता राजकुमार के निर्देश अनुसार प्रयाण करतें हुए, वे वैताढ्यपर्वत के समीप पहुँचे। वहाँ पर विद्याधर तथा राजकन्या को देखा। धनुष्धारी ललितांग ने कहा- तुम विद्याधर होकर कपट से परस्त्रियों का अपहरण करते हो। सिंह नाम धारणकर कुत्ते के समान आचरण करते हो। पश्चात् दोनों परस्पर युद्ध करने लगे। ललितांग ने एक तीक्ष्णबाण से उसके मस्तक पर प्रहारकर यमसदन में पहुँचा दिया।

इसीबीच उन्मादयन्ती को मृतप्रायः देखकर सभी कुमार चिंतित हुए। उन्होंनें जान लिया कि किसी सर्प ने इसे डंसा है। सर्प के विष को उतारने में समर्थ किसी अन्य राजकुमार ने सिद्धगारुडी विद्या से उसे जीवित कर दिया। वापिस विमान में बैठकर सभी राजा के पास आएँ। राजा के द्वारा पूछने पर, उन चारों कुमारों ने अपना-अपना वृत्तांत कह सुनाया। राजा विचारमग्न बनकर सोचने लगा - ललितांग ने विद्याधर को मारा है, ज्योतिष वेत्ता राजकुमार ने स्थान बताया, तीसरे राजकुमार ने विमान बनाकर उन सबको वहाँ पर ले गया, चौथे राजकुमार ने मृतप्रायः इस कन्या को जीवित किया है। चारों भी समान रूपवालें हैं, बडे सामंत राजाओं के पुत्र हैं, बलशाली है और कन्या के दृढ आग्रही है। तीनों का अपमानकर किसी एक को कन्या कैसे दूँ? अथवा कन्या के लिए उचित-अनुचित वर कौन है? यह मैं नही जानता हूँ। चारों ने कन्या की प्रतिज्ञा पूर्ण की है। यह देखकर राजा, मंत्री आदि चिंता-समुद्र में डूबनें लगें। इस व्यतिकर को सुनकर कन्या भी सोचने लगी - ललितांग पर ही मेरा मन है। फिर भी मेरे दुर्भाग्यवश कुमारों का परस्पर विवाद हुआ है। पिता भी इस कलह को देखकर दुःखित है। मेरा रूप ही अनर्थकारी है। मेरे जीवन को धिक्कार हो। इस प्रकार सोचकर उसने माता-पिता से विज्ञप्ति की - आप दोनों विषाद न करें। आप मेरे चिता प्रवेश का प्रबंध करे, जिससे सब स्वस्थ हो जाएगा। अन्यथा यहाँ पर बहुत संहार होगा और लोगों में भी निंदा होगी। पुत्री के वचन सुनकर राजा ने सुबुद्धिमंत्री से कहा - मंत्री! संकट में गिरे हमें देखकर, मौन क्यों हो? मंत्री की वही बुद्धि प्रशंसनीय है, जो विषमकार्य को सरल बनाने में समर्थ हो। कार्य सरल होने पर उसकी बुद्धि का क्या प्रयोजन है? राजा की बातें सुनकर, मंत्री ने कहा- कन्या अपने कथन अनुसार करें। मैं परिणाम विशेष से वर का प्रयत्न करुँगा, जिससे वर-कन्या दोनों सुखी होंगें और हमारा भी कल्याण होगा।

राजा की आज्ञा से सुगंधि लकडों से वहाँ पर चिता की रचना की गयी। मंत्री ने चारों कुमारों को बुलाकर कहा - तुम समान गुणवालें हो और संमाननीय हो। इसलिए तीनों का अपमानकर, कन्या एक को कैसे दी जा सकती है? अग्नि में प्रवेश कर रही इस कन्या को अनुमति दें। यदि आप में से कोई कन्या पर गाढ़ अनुरागवाला है, तो वह कन्या का अनुसरण करे, क्योंकि स्नेह का फल यह ही है। मंत्री की बातें सुनकर, सभी सोचने लगें - अहो! मंत्री की बुद्धि! विवाद मिट गया है और हमारा संमान भी हुआ है। इसलिए कन्या का यह कार्य उचित है। राजपुत्र इस प्रकार कह रहे थें, उतने में ही कन्या श्रृंगार आदि से सज्ज होकर, याचकों को दान देती हुयी वहाँ पर आयी। उसने चिता में प्रवेश किया। पश्चात् चारों ओर अग्नि प्रकट की गयी। इधर ललितांग सोचने लगा - मेरी प्रिया अकेली

अग्नि में कैसे प्रवेश कर सकती है? इसके बिना मुझे जीवन से क्या प्रयोजन है? ऐसा विचारकर सामंत, मंत्री, मित्रों के द्वारा मना करने पर भी, शीघ्र ही ललितांग ने अग्नि में प्रवेश किया। यह देखकर सभी आश्चर्यचकित हो गए। ललितांग को देखकर उन्मादयन्ती ने कहा - आर्यपुत्र! मुझ निर्भागी के लिए यह क्या किया? जबतक ललितांग उसे प्रत्युत्तर दे, उतने में ही मंत्री के द्वारा नियुक्त पुरुषों ने सुरंग का दरवाजा खोल दिया। उस मार्ग से वे दोनों मंत्री के महल में पहुँच गएँ। चिताग्नि को देखने में असमर्थ राजकुमार परस्पर आलाप करनें लगें। तब मंत्री ने कहा - अहो! ललितांग का साहस, अहो! उसका पत्नी का स्नेह! तुमने प्राणों की प्रीति से राजकन्या को छोड़ दी है। यदि देवता की सान्निध्यता से वे दानों जीवित है, तो पुनः जन्म की प्राप्ति से कुमारी को स्वीकार करने के लिए ललितांग योग्य है, तुम नही। उन्होंनें कहा - यदि ऐसा होगा तो हमें इस विषय में कुछ नही कहना है। इस प्रकार उन राजकुमारों के द्वारा स्वीकार करने पर, मंत्री ने सत्य हकीकत कह सुनायी और अपने महल से उन दोनों को बुलाया। उन दोनों को देखकर सभी विस्मित हुए। राजा ने शीघ्र ही आनंदपूर्वक उनका विवाह महोत्सव मनाया।

ललितांगकुमार ने उन्मादयन्ती के साथ अपने नगर की ओर प्रयाण किया। पिता ने बड़े आडंबरपूर्वक उनको नगर प्रवेश कराया। उन्मादयन्ती के साथ दोगुन्दुक देव के समान पंचविध विषयों का उपभोग करते हुए, ललितांग का बहुत समय व्यतीत हो गया। पिता ने सुमुहूर्त में, ललितांग को राज्य पर स्थापित किया और वह पिता के समान प्रजा का पालन करने लगा। एकदिन विकसित कमलों से शोभित शरद्ऋतु में, ललितांग, उन्मादयन्ती के साथ झरुखे में बैठा था। उतने में ही आकाश में मेघ समूह से निर्मित पंचवर्णवालें महल को देखा। क्षणमात्र में ही हवा के द्वारा बिखेर जाने पर, राजा खेद प्राप्त करने लगा। राजा ने अपनी प्रिया से कहा - प्रिये! विधाता ने महल के प्रेक्षण में विघ्न डाला है। तुम शरद् मेघों की चपलता देखो, जिसने क्षणमात्र में ही सुंदर महल को भी नष्ट कर दिया है। जिस प्रकार ये बादल हैं, वैसे ही धन, आयु, जीवन आदि मिलतें है और नष्ट हो जातें हैं। वायु के समान आयु अनित्य है। चतुरंग सेना के धारक राजा को भी मृत्यु पलभर में अपना कवल बना लेती है। काम का प्रवर्धक और रोग का मूल तारुण्य भी भयंकर है। शरीर भी सप्त धातुमय तथा अशुचि का स्थान है। इस काया में कौन सी सारता (शुद्धता) है? विषयसुख भी दुःख का कारण है, इस संसार में सुख कहाँ है? जब राजा इस प्रकार के वैराग्य में लीन था, तब आकाश को विमानों से आकुलित देखकर और पृथ्वी पर विविध वाजिंत्रों के घोष सुनकर राजा कुतूहल बना। उसी समय वनपालक ने आकर विज्ञप्ति की - देव! आज उद्यान में जिनेश्वरभगवंत ने पदार्पण किया है। राजा ने उसे लाख स्वर्ण मुद्राएँ दी

और अंतःपुर सहित वंदन करने निकला। समवसरण दिखायी देने पर राजचिह्न छोड दिएँ और विधिपूर्वक वंदनकर उचित स्थान पर बैठा। भगवान् के तत्त्व वचन रूपी अमृतपान से संसार की असारता समझकर संवेग मनवाला बना। पुत्र को राज्य सौंपकर, रानी के साथ दीक्षा ग्रहण की। चिर समय तक निरतिचार चारित्र का पालन किया। अंत में संलेखनाकर समाधिपूर्वक काल किया और दोनों ईशान देवलोक में पाँच पल्योपम आयुष्यवालें देव-देवी हुए।

देव भोगों को भोगकर, ललितांग देव का जीव स्वर्ग से च्यवकर इसी जंबूद्वीप के सुकच्छविजय की विश्वपुरी नगरी में सुरतेज राजा की पुष्पावती रानी की कुक्षि में पुत्र के रूप में अवतीर्ण हुआ। संपूर्ण समय हो जाने पर, रानी ने पुत्र को जन्म दिया। उसका देवसेन नाम रखा गया। क्रम से बढता हुआ शस्त्र और शास्त्र कला में प्रवीण हुआ। तारुण्य अवस्था प्राप्त करने पर भी स्त्रियों से विमुख था किंतु गुणग्रहण के संमुख था। उन्मादयन्ती का जीव भी देवलोक से च्यवकर उसी विजय में, वैताढ्यपर्वत की दक्षिण श्रेणी में, सुरसुंदरपुर नगर में विद्याधर शिरोमणि रविकिरण राजा की रविकांता पत्नी की कुक्षि में पुत्री के रूप में अवतीर्ण हुयी। क्रम से माता ने उसे जन्म दिया और उसका चंद्रकांता नाम रखा गया। चौसठ कलाओं में भी कुशल हुयी, किंतु पुरुषों से पराङ्मुख थी। सखियों के द्वारा राजकुमारों का वर्णन करने पर भी, चंद्रकांता उनका नाम भी सहन नही करती थी। इससे माता-पिता चिंतातुर रहने लगें।

एक दिन चंद्रकांता सखियों के साथ उद्यान में क्रीडा करने गयी। वहाँ पर किन्नर का युगल तान-मान सहित मधुर स्वर में देवसेनकुमार का गुण-गान कर रहा था। उसे सुनकर चंद्रकांता आनंदित हुयी। उसके भाव जानकर, सखी ने किन्नर युगल से पूछा - जिसके गुणों का आप दोनों वर्णन कर रहें है, वह देवसेनकुमार कौन है? तब उन्होंनें कहा -पृथ्वी पर स्वेच्छा से विचरण करते हुए हम दोनोंनें विश्वपुरी के बाह्य उद्यान में देवसेनकुमार को देखा था। उसके रूप के सामने कामदेव भी न्यून दिखायी देता है। चंद्र से अधिक सौम्य, सूर्य से अधिक प्रतापवान् और बृहस्पति से अधिक बुद्धिशाली है। जो सदैव दान से भिक्षुकों को, मान से मानियों को और संतोष से मित्रों को आनंद देता है। पश्चात् सखी ने चंद्रकांता से कहा - यहाँ आकर बहुत समय बीत चुका है। माता चिंता कर रही होगी। इस लिए अब हमें चलना चाहिए। महल में पहुँचने पर भी उसका हृदय कही पर नही लग रहा था। सखी ने माता के आगे सब कुछ कह दिया। चंद्रकांता के भाईयों नें विद्याधरों को उच्च तथा भूचर मनुष्यों को जघन्य सिद्ध करना चाहा, किंतु चंद्रकांता के दलिलों के सामने वे निरुत्तर हो गएँ। इस चर्चा से, पिता ने चंद्रकांता का देवसेनकुमार पर पूर्वभव के स्नेह को परख लिया।

रविकिरण राजा ने अपने पुरुषों के साथ कन्या का चित्रपट देकर, देवसेनकुमार के पास भेजा। उसका चित्र देखकर, कुमार गाढ अनुरागी बना। विद्या से चंडाली का रूप बनाकर, रविकिरण राजा गान्धर्व नट के साथ देवसेनकुमार की राजसभा में आया। उसने मधुरस्वर में गाना प्रारंभ किया। सभी सदस्यगण मंत्रमुग्ध बन गएँ, किंतु कुमार चंद्रकांता के चित्र में व्यग्र होने से उसकी ओर ध्यान नही दिया। गाते-गाते वह भी थक गया। तब कुमार ने पूछा - गान्धर्व! तेरी पुत्री के पास कौन-सी कला है? उसने कहा - आपको इससे क्या कार्य है? आप मेरे गीत के बारे में विचार करे। कुमार ने कहा - पुनः गाओ! सदस्यों ने कहा - प्रभु! यह लंबे समय तक गाते हुए थक चुका है। अब क्लेश से क्या प्रयोजन है? यह सुनकर कुमार ने गीतगान रोक दिया। पश्चात् रविकिरण राजा सोचने लगा - कुमार भी चंद्रकांता पर गाढ अनुरागी दिखायी देता है। इसलिए इन दोनों का विवाह योग्य है ऐसा विचारकर अपने स्थान पर चला गया। उसके बाद विवाह योग्य समग्र सामग्री तैयारकर, लाखों विद्याधरों के साथ विमान में बैठकर, विविध वाजिंत्रों के घोष से आकाश को भरता हुआ विश्वपुरी नगरी के समीप पहुँचा। सुरतेज राजा विस्मय होकर कुछ सोचे, उससे पहले ही किसी विद्याधर ने आकर नमस्कारपूर्वक विज्ञप्ति की - राजन्! आपके पुत्र को अपनी पुत्री देने के लिए विद्याधर राजा रविकिरण समीप आ गए है। इसलिए आपको विवाह की बधायी दी जाती है। यह सुनकर सुरतेजराजा भी हर्षपूर्वक आडंबर के साथ संमुख गया। आवास स्थान प्रदान किए गए और शुभ मुहूर्त्त में उन दोनों का विवाह संपन्न हुआ। रविकिरण राजा भी अपने स्थान पर वापिस लौट आया और वैताढ्यपर्वत से प्रतिदिन अपनी पुत्री के लिए दिव्य भोग्य वस्तु भेजने लगा।

एकदिन सुरतेज राजा ने सद्गुरु से धर्मदेशना सुनी। संसार की असारता जानकर वैरागी बने। देवसेनकुमार को राज्य पर स्थापितकर, विशुद्ध परिणाम से चारित्र ग्रहण किया। देवसेन राजा भी न्याय मार्ग से प्रजा का पालन करता था। क्रम से चंद्रकांता ने सुंदर पुत्र को जन्म दिया। उसका शूरसेन नाम रखा गया। अन्य कार्य में चित्त व्याक्षिप्त होने से, एकदिन रविकिरण राजा इन दोनों को दिव्य भोग्य वस्तुएँ भेजना भूल गया। तब दासियोंनें चंद्रकांता के लिए महल की उद्वर्तन, विलेपन आदि सामग्री ले आयी। उनको देखकर चंद्रकांता दीन मुखवाली बनी। और सोचने लगी - आज पिता ने मुझे कुछ भी नही भेजा है। मुझे कैसे भूल गए? क्या कोप से अथवा स्नेह के लोप से मेरी विस्मृति हुयी है? इस प्रकार विचार करने लगी। तब चतुर सखियों ने कहा स्वामिनी! अन्य के द्वारा प्रदत्त सुख नित्य नही होता है, जैसे माँगकर लाएँ गए गहने के समान। इसलिए अलाभ - लाभ में रोष-तोष नही करना चाहिए। अपमान का स्थान जानकर, लोग पराशा नही करतें

हैं। इसी कारण से संत सदा संतोष रहतें हैं। चतुर पुरुष अपने देह की साधना के लिए द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अनुसार भोग - उपभोग करतें हैं। सखियों की युक्तियुक्त बातें सुनकर, रानी ने संवेगरंग प्राप्त किया और कहा - यह सत्य है कि पराशा पराभव का कारण है। पाँच इंद्रियों की पराधीनता से जिस शब्द आदि विषयों की प्रार्थना की जाती है, वह निश्चय ही आत्मा का पर उद्भाव है। फिर भी जीव व्यर्थ ही सुख का गर्व करता है। इन शब्द आदि को भोगकर, जीव कभी भी तृप्ति का अनुभव नही करता है। इसलिए अब इस मोहविलास से पर्याप्त हुआ। मैं शीघ्र ही स्वाधीन सुख देनेवाली दीक्षा ग्रहण करुँगी। उसके वचन सुनकर विलक्ष बनी सखियों ने पैरों में गिरकर कहा - देवी! देवसेन राजा के द्वारा इस पृथ्वी पर शासन करने पर, आपको लेशमात्र भी पराधीनता नही है। इसलिए आप विलेपन आदि करे, ऐसा मजाक करना योग्य नही है। तब रानी ने कहा - पराधीन भावों से मैंने जान लिया है कि - भवसुख मुख मधुर और विपाक में कटु है। जो धर्म छोड़कर विषयों की अभिलाषा करतें हैं, वें अमृतरस को छोडकर विष का भक्षण करतें हैं। इतने काल तक मैं मुनिसमूह से अनुभूत, मोक्ष दायक शम अमृतरस से वंचित थी। उन श्रमणियों ने अपना जीवन सफल किया है, जिनके तप से तपे देह में, दाह के भय से कामदेव ने कभी भी पदार्पण नही किया है। इस प्रकार देवी संवेग मनवाली हुयी। इसी अवसर पर दासी ने आकर कहा - देवी! सुर, असुर, मनुष्य समूह से सेवित श्रीविजय तीर्थंकर उद्यान में पधारे है। स्वामी का आदेश है कि आप शीघ्र तैयार हो जाए। भगवान् को वंदन करनें के लिए जाना है। देवी भी तैयार होकर राजा के साथ चल पड़ी। दिव्य समवसरण में जाकर, विधिपूर्वक वंदनकर राजा आदि योग्य स्थान पर बैठे।

प्रभु ने पापनाशिनी देशना प्रारंभ की - भव्य प्राणियों! भयंकर भव-अरण्य में भ्रमण कर रहें समस्त प्राणियों को दुःख बहुत है और सुख अल्प है। चारों गतियों में भी अपार दुःख है। इसलिए जन्म, जरा, मृत्यु रहित निराबाध, अक्षय ऐसे मोक्षस्थान ही साध्य है। दुर्वासना का त्यागकर निर्वाणपद देनेवाले श्रीजिनधर्म में प्रयत्न करो। इस प्रकार तीर्थंकर की देशना सुनकर भवभ्रमण से भयभीत बने देवसेन राजा ने संसार की असारता जानकर, विषयों से विरक्त हुआ। पश्चात् जिनमंदिरों में अष्टाह्निका महोत्सव कर, सातक्षेत्रों में धन का उपयोगकर, शूरसेनकुमार का राज्याभिषेक किया। दीन-अनाथों को दान देते हुए, बडे आडंबरपूर्वक राजा ने देवी के साथ दीक्षा ग्रहण की। विषय - विकार रहित होकर, निरतिचार चारित्र का परिपालन करने लगें। सिद्धांत का पठनकर काम को जीतकर, मुनि समाधिपूर्वक आयुष्य पूर्णकर ब्रह्मदेवलोक में इंद्र हुआ। रानी भी सुंदर चारित्र का पालनकर, उसी देवलोक में देव बनी। वहाँ पर उन दोनों की मित्रता हुयी। और

दश सागरोपम आयुष्य पर्यंत दिव्य सुख भोगें।

इसी भरतक्षेत्र के मध्यखंड में, कुरुदेश के गजपुर नगर में श्रीवाहन राजा राज्य करता था। उसकी लक्ष्मीश्री रानी थी। इंद्र का जीव भी ब्रह्मदेवलोक से च्यवकर, रानी की कुक्षि में पुत्र के रूप में अवतीर्ण हुआ। रानी ने चौदह स्वप्न देखें। रानी का जीव भी ब्रह्मदेवलोक से च्यवकर, उसी नगरी के बुद्धिसागर मंत्री की सुदत्ता पत्नी में पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ। राजपुत्र का प्रियंकर तथा मंत्रीपुत्र का मतिसागर नाम रखा गया। बाल्यावस्था से ही वे दोनों परस्पर स्नेहशील थें। संपूर्ण कलाओं को ग्रहणकर, वे दानों यौवन अवस्था में आएँ। राजा ने बहुत-सी राजकन्याओं के साथ प्रियंकरकुमार का विवाह किया। मंत्री ने भी अनेक मंत्रीकुल की कन्याओं के साथ मतिसागर का विवाह किया।

एकदिन श्रीवाहन राजा ने श्रीश्रुतसागर गुरु की देशना सुनी। वैराग्य प्राप्तकर, प्रियंकरकुमार का राज्याभिषेक कर दीक्षा ग्रहण की। बुद्धिसागर ने भी मतिसागर को मंत्रीपद देकर गुरु के पास दीक्षा ग्रहण की। एकदिन प्रियंकरराजा की शस्त्रशाला में दिव्य चक्ररत्न उत्पन्न हुआ। पश्चात् राजा ने षट्खंड जीत लिए। बत्तीस हजार सामंत राजाओं से सदा सेवित, चौसठ हजार अंतःपुर स्त्रियों से युक्त वह प्रियंकर चक्रवर्ती बहुत-से पूर्वलक्ष पर्यंत अपने भुजाओं से अर्जित मनोहर भोगों को भोगने लगा। बहुत से मंत्री होने पर भी चक्रवर्ती का मतिसागर पर अत्यधिक स्नेह था। मतिसागर भी चक्रवर्ती को देव, गुरु, बंधु, चित्त, सर्वस्व तथा खुद के प्राणों के समान मानता था। वे दोनों इस गाढ़ स्नेह से विस्मित थे। एक दिन वहाँ पर श्रीसुप्रभ तीर्थंकर पधारे। तीर्थंकर का आगमन सुनकर, वे दोनों बडे आडंबरपूर्वक चतुरंग सेना के साथ अंतःपुर सहित वंदन करने गएँ। राजचिह्न छोडकर, तीन प्रदक्षिणा देकर, अंजलि जोड़कर, भगवान् की देशना सुनने बैठें। तब भगवान् ने इस प्रकार देशना प्रारंभ की - भव्यप्राणियों! जन्म, जरा, मृत्यु से आकुलित इस दुःख आवर्त्तवाले भवसमुद्र में पुण्य रूपी जहाज में चढ़ने का प्रयत्न करना चाहिए। संपदा प्राप्त करने के लिए परिश्रम कर रहे प्राणीगण मनोरथ तूट जाने पर दुःखित होतें है। कितने ही प्राणी संसार समुद्र को तीरने में समर्थ होते हुए भी कुग्रहों से ग्रसित होकर डूब जातें हैं। कितने ही प्राणी संसार समुद्र प्रायःकर तीर जाने पर भी प्रमाद के वश से नीचे गिर जातें हैं। इसलिए भव्यप्राणियों! जागो और भयंकर संसार समुद्र में मोहित मत बनो। अप्रमत्तता रूपी पुण्यजहाज से संसार सागर का उल्लंघनकर शाश्वत सुखवाले मुक्तिपद को प्राप्त करो। भगवान् की देशना सुनकर उन्होंने कहा - प्रभु! यह सत्य है कि धर्म बिना भवसमुद्र दुस्तर है। हमने आपकी कृपा से, शुद्ध स्वरूप के बारे में जान लिया है। फिर भी हम दोनों परस्पर गाढ़ स्नेह का कारण जानना चाहतें हैं। तब भगवंत ने उन दोनों के

पूर्वभव कह सुनाएँ। तुम दोनोंने समान पुण्य का अर्जन किया है और समान फल भोगा है। तुम दोनों के पूजा रूपी बीज से उत्पन्न यह पुण्य वृक्ष वृद्धि प्राप्त कर चुका है और वह सिद्धि साम्राज्य के लाभ से अवश्य फलीभूत होगा।

भगवान् के वचन सुनकर उन दोनों को जातिस्मरणज्ञान उत्पन्न हुआ। वे दोनों चारित्रधर्म के संमुख बनें। धूल के ढेर के समान पुष्कल राज्य को छोड़कर, बेडी के समान बंधु स्नेह के तंतु को तोडकर, स्त्रियों का तृण के समान त्यागकर उन दोनों ने श्रामण्य स्वीकार किया। तप से कर्म ईंधन को जलाकर, वे दोनो भवश्रेणी के बंधन से मुक्त बनकर, शाश्वतसुख के भोक्ता बनें।

इस प्रकार अज्ञान से आर्जव-मार्दव के विशेष से किया गया द्रव्यस्तव भी उन दोनों के लिए सुख का कारण हुआ। तथा ज्ञान योग से, बहुमान के साथ श्रद्धा से युक्त किया गया तो विशेष कल्याण का कारण होता ही है। इस प्रकार गुरु के मुख से यह कथा सुनकर, देवसिंहकुमार अपनी पत्नी के साथ गुरु के समीप से जिनधर्म प्राप्तकर आनंदित हुआ। पश्चात् मुनि के चरणकमल को नमस्कारकर अपने स्थान पर गया। कितने ही दिन तक वहाँ रहकर, सदैव साधुओं की सेवा से, अनुष्ठान में कुशल हुआ। राजा की आज्ञा लेकर, प्रिया से युक्त कुमार मथुरा आया। बधाई महोत्सव हुआ। अन्य दिन मेघराजा ने अपने पुत्र को राज्य सौंपकर, सद्गुरु के पास दीक्षा ग्रहण की। तप से तपकर स्वर्ग पधारे। देवसिंह भी न्यायमार्ग से राज्य का पालन करता था और अपने गुणों से पृथ्वी पर प्रख्यात हुआ। श्रावकधर्म में अत्यन्त निष्णात हुआ और बारहव्रतों का भी अच्छी प्रकार से पालन करता था। वहाँ से आयुष्य पूर्णकर शुक्रकल्प में विमलद्युति नामक देव हुआ। कनकसुंदरी भी उसी कल्प में देव बनी। एक ही विमान में, प्रीतिपूर्वक रहते हुए उन दोनों ने सतरह सागरोपम की स्थिति पूर्ण की।

इस प्रकार पं.श्रीसत्यराजगणि द्वारा विरचित श्रीपृथ्वीचंद्रचरित्र में देवसिंहराजा का श्रमणोपासक जीवन रूपी तृतीय भव वर्णन संपूर्ण हुआ।

चतुर्थ भव

इसी जंबूद्वीप के पूर्वविदेह के, विभूषण स्वरूप सुकच्छविजय में **आग्रामही** नामक नगरी है। समृद्धि से विपुल, **विमलकीर्ति** राजा राज्य करता था और उसकी **प्रियमति** प्रिया थी। **देवसिंह** देव भी आयुष्य पूर्णकर, प्रियमति की कुक्षि रूपी सरोवर में हंस के समान, पुत्र के रूप में अवतीर्ण हुआ। तब रानी ने **देवरथ** को स्वप्न में देखा था। स्वप्न के अनुसार, पिता ने हर्ष से उसका **देवरथ** नाम रखा। क्रम से वृद्धि पाते हुए, यौवन अवस्था में आया। इसी विजय के **रतिरत्न** नामक नगर में, **रवितेज** राजा राज्य करता था। उसकी **रतिदेवी** पत्नी थी। **कनकसुंदरी** का जीव स्वर्ग से च्यवकर, प्रबल पुण्य के योग से, **रतिदेवी** की कुक्षि में पुत्री के रूप

में अवतीर्ण हुई। स्वप्न में रत्न की आवली (श्रेणि) को देखने से उसका रत्नावली नाम रखा। क्रम से यौवन अवस्था में आई। चौसठ कलाओं में भी कुशल बनी। सैंकड़ों हित शिक्षाएँ देने पर भी, किसी कारण से वह पुरुषों पर से अपना द्वेष नहीं छोड़ रही थी।

रवितेज राजा ने स्वयंवर मंडप का आयोजन किया और चारों ओर से पडौसी राजपुत्रों को आह्वान किया। पिता के द्वारा आज्ञा देने पर, श्रेष्ठ सैन्य से युक्त और देव के समान देदीप्यमान देवरथ ने भी प्रयाण किया। मार्ग में जाते हुए, कुमार ने पंख छेदे पक्षी के समान, उड़ने की इच्छावाले, किन्तु उड़ने में असमर्थ किसी विद्याधर को देखा। कुमार ने पूछा-भाग्यशाली! आप कहाँ से आये हैं? और इस भयंकर अटवी में अकेले क्यों हैं? तब विद्याधर ने कहा-वैताढ्य पर्वत के कुंडलपुर नगर में, श्रीध्वज राजा राज्य कर रहा है। मैं उसका चन्द्रगति नामक पुत्र हूँ। एक दिन मैं वंश परंपरा से प्राप्त विद्या का अभ्यास कर रहा था। अचानक ही पर्वत की ऊँची भूमि से, किसी तरुणी की दयाजनक आवाज सुनाई दी। मैं विस्मित होते हुए उस ओर दौड़ा। तब सखिजनों से वींजी जाती और मूर्च्छित बनी एक युवती को देखा। उतने में ही युवती की सखियों ने मुझे उद्देशकर कहा-सज्जन पुरुष! शीघ्र आओ। दयानिधि! सर्प के विष से विह्वल बनी गंधर्वराजा की इस पुत्री को शीघ्र ही प्राणदान देकर उपकार करो। मैंने भी अपनी मुद्रारत्न के पानी से उसे स्वस्थ किया। विष की पीड़ा नष्ट हो जाने पर, वह होश में आयी। तब उस युवती ने अपनी सखीजन के मुख अश्रुजल से भीगे तथा बाद में खिले हुए देखे। यह देखकर, कन्या ने पूछा-सखी! तुमने विरुद्ध आकृति क्यों धारण की है? इसका कारण कहो? तब उन्होंने कहा-बहन! तुम सर्प के विष से पीड़ित थी। इस परोपकारी पुरुष ने तुझे जीवित किया है। हमारी मुख आकृति इसलिए ही बदल गयी थी। यह सुनकर, वह कन्या मुझ पर अनुरागी बनी।

इसी बीच गंधर्वराजा भी वहाँ आ गया। मुझे श्रीध्वज का पुत्र जानकर, गौरव सहित इस प्रकार कहने लगा-कुमार! तुम सन्माननीय हो। मैं तुझ उपकारी को क्या दे सकता हूँ? मेरी इस कन्या का तुम हाथ ग्रहण कर लो। राजा का आग्रह मानकर, मैंने महोत्सवपूर्वक उसके साथ विवाह किया। अपनी नगरी में आकर सुखपूर्वक रहने लगा। जब मैं उद्यान से वापिस लौट रहा था, तब इसी प्रदेश में, मुझे मेरी पत्नी के फोई (पिता की बहन का पुत्र) का पुत्र सुमेघ विद्याधर मिला था। सुमेघ विद्याधर मुझ पर आक्रोश करते हुए कहने लगा-मेरे मामा की पुत्री से विवाह कर, अभी भी मेरे सामने खड़े हो? मैं तुझे अन्याय का फल चखाता हूँ। इस प्रकार कहते हुए वह युद्ध के लिए तैयार हुआ। उसका सामना करने के लिए मैं भी तैयार हुआ। किन्तु व्याकुलता के कारण, मैं विद्या का एक पद भूल गया था।

इस कारण से मैं अचानक ही भूमि पर गिर पड़ा। पंगु के समान मेरी परिस्थिति देखकर, सुमेघ मेरी पत्नी को लेकर भाग गया है। मित्र! मैंने तुम्हारे आगे सब वृत्तान्त निवेदन कर दिया है। विद्याधर के दुःख से दुःखित बने, देवरथ कुमार ने कहा-तुम मेरे सामने वह विद्या पढ़ो। विद्याधर ने भी विद्या का पठन किया। पदानुसारीलब्धि के अनुसार, कुमार ने वह पद पूरा कर दिया। निर्धन को धन की प्राप्ति के समान, विद्याधर भी हर्ष से कुमार से कहने लगा-उपकारी कुमार! तूने मुझे आज नया जीवन दिया है। वास्तव में महात्माओं का संग, सफल ही होता है। अब विलंब करना उचित नहीं है, क्योंकि मुझे दूसरा कार्य है। पाठ से सिद्ध होनेवाली वैक्रिय नामक इस विद्या को ग्रहण करो। यदि इसके द्वारा भी तुम मुझे याद करोगे, तो मैं इस विद्या के बहाने भी तुम्हारे काम आने से कृतार्थ बनूँगा। कुमार ने भी विद्या ग्रहण की। विद्याधर सुमेघ के पीछे दौड़ा और कुमार क्रम से रतिरत्न नगर में पहुँचा।

राजा ने भी आदर सहित कुमार के ठहरने के लिए सुंदर आवास दिये। बाद में सभी राजकुमारों के आ जाने के बाद, संध्या समय राजा ने चारों ओर घोषणा कराई कि-प्रातः सभी राजकुमार स्वयंवरमंडप में पधारें। देवरथ सोचने लगा-आभूषण आदि आडंबर से क्या प्रयोजन है? यदि मेरा भाग्य होगा, तो सामान्य रूप होने पर भी कन्या मुझे वरमाला पहनायेगी। ऐसा सोचकर, कुमार ने अपने मित्र को आसन पर बिठाकर, स्वयं कुरूप धारणकर वीणा हाथ में ली। इसी बीच सुखासन पर बैठकर, कन्या भी सभा में आ गयी। कन्या का रूप देखते ही सभी राजकुमार क्षोभित हो गये। किन्तु कन्या की दृष्टि किसी भी राजकुमार पर स्थिर न हुई। पूर्वभव के प्रेम से, उसने वीणावादक के कंठ में वरमाला डाल दी। तब मंडप में उपस्थित लोग इस प्रकार कहने लगे-इस कन्या को धिक्कार हो। इसने एक गन्धर्व को वरा है। सभाजनों के वचनों को सुनकर, रवितेज राजा दुःखित होकर सोचने लगा-नीचे की ओर प्रवाह करनेवाली नदियों के समान, स्त्रियाँ होती हैं। अथवा यह कोई महान् पुरुष होगा, जिसने अपना रूप परावर्तित करं दिया हो। क्योंकि कन्या की माता ने स्वप्न में रत्नावली देखी थी।

कन्या ने इस गन्धर्व को वरा है, यह जानकर मंडप में उपस्थित सभी राजकुमार आक्रोश के वश बने और युद्ध के लिए तैयार हुए। तब रवितेज राजा ने उनसे कहा-राजकुमारों! तुम मेरा वचन सुनो। जल्दबाजी में बिनजरूरी ऐसी युद्ध की तैयारी क्यों कर रहे हो? जैसे पांच दिव्यों के द्वारा सामान्य मनुष्य भी राज्य पर बिठाया जाता है, वैसे ही कन्या भी स्वयंवर में अपने इष्ट वर को चुन सकती है। इससे आप लोगों का कौन-सा मानभंग हुआ है? यहाँ पर लज्जा की क्या जरूरत है? यदि तुम ईर्ष्या धारण करोगे, तो आपत्ति में गिर जाओगे। कदाग्रह के वश बने

राजकुमारों ने देवरथ को घेर लिया। अकेले होते हुए भी, कुमार ने क्षणमात्र में ही उनको जीत लिया। रवितेज राजा उसका शौर्य देखकर विस्मित हुआ। मित्र के द्वारा कहने पर, राजा ने जान लिया कि यह विमलकीर्ति का पुत्र है। कुमार ने अपना स्वाभाविक रूप धारण किया। बाद में रत्नावली से विवाह कर, कितने ही दिन पर्यंत वहीं रहा। वहाँ से प्रयाण कर अपनी नगरी में पहुँचा। रति के साथ कामदेव के समान, कुमार भी रत्नावली के साथ विषयसुख भोगने लगा। एक दिन उस नगर के उद्यान में धर्मवसु गुरु पधारे। नगर के लोगों के साथ, राजा भी उनको वंदन करने के लिए गया। गुरु ने इस प्रकार देशना शुरु की-भव्यप्राणियों! संसार रूपी समुद्र में डूबते प्राणियों के लिए यह विशुद्ध श्रीजिनधर्म ही जहाज के समान माना गया है। रागादि दोषों से मुक्त देव सर्वज्ञ कहलाते हैं। प्रत्यक्ष नहीं होने पर भी, सर्वज्ञ देव को वे ही देख सकते हैं, जिन्होंने इस धर्म को स्वीकार किया है। जो भव्यप्राणी, पंचपरमेष्ठी महामंत्र का नित्य स्मरण करता है, वह शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त कर लेता है। जो भोजन करते अथवा सोते समय, मंत्राधिराज का तीन, पाँच अथवा सात बार ध्यान करता है, वह अवश्य ही सुखी होता है।

दृष्टांत के रूप में गुरु ने इस प्रकार कथानक शुरु की-इसी भरतक्षेत्र के सुग्राम नामक गाँव में, स्वभाव से सरल बुद्धिवाला कोई संगत नामक पामर रहता था। उसने एक दिन रहने के लिए मुनियों को उपाश्रय दिया। उन्होंने भी ध्यान करने के लिए संगत को परमेष्ठी मंत्र सिखाया। संगत भी जीवनपर्यंत तक महामंत्र का नित्य स्मरण करता था।

आयु के क्षय होने पर, नंदिनगर के पभानन राजा के रत्नशिख नामक पुत्र के रूप में जन्म लिया। उमर तथा कलाओं से बढ़ता हुआ वह क्रम से यौवन-अवस्था में आया। रत्नशिख कुमार के गुणों से रंजित होकर कोशलदेश के राजा ने बडे आडंबरपूर्वक अपनी पुत्री कौशल्या का उसके साथ विवाह किया। एकदिन कुमुदिनी रानी ने पभानन राजा के सिर से एक सफेद बाल निकालकर दिखाया। राजा उसे देखकर अचानक ही वैराग्य मनवाला हुआ। रत्नशिखकुमार को राज्य सौंपकर पत्नी के साथ वनवास गया। मंत्री तथा सामंत राजाओं से युक्त रत्नशिख संपूर्ण मंडल का आधिपत्य प्राप्तकर महाराज हुआ। रत्नशिख राजा को वार्त्ता-विनोद का शौक था। वह कथाकर पंडितों को स्वर्णमुद्रा आदि भेंट देता था। एक दिन किसी वक्ता ने वीरांगद-सुमित्र की कथा प्रारंभ की। वह इस प्रकार है -

विजयपुर नगर में सुरांगद राजा राज्य करता था। उसका गुण संपन्न वीरांगद पुत्र था। उसका सुमित्र नामक मंत्री का पुत्र परममित्र था, जो याचकों के मनोरथ पूर्ण करने में चिंतामणि समान, शरणागत के लिए लोहपिंजरे के समान, नीतिमंतों में अग्रगणनीय तथा दीन-दुःखियों पर वात्सल्य युक्त था। एकदिन वे

दोनों उद्यान में गएँ। तब वीरांगदकुमार ने कहा - मित्र! पुण्य की परीक्षा करने के लिए, हम दोनों को दूर देशांतर जाना चाहिए। विविध कौतुकों से युक्त अनेक नगरों के दर्शन होंगें, तथा सज्जन-दुर्जनों का भी विशेष ज्ञान होगा। सुमित्र ने कहा - मित्र! आपका कथन यथार्थ है। कुमार ने कहा - परंतु माता-पिता को छोडकर कैसे जा सकतें हैं? यदि गुप्तरीति से जाएँगें, तो उन्हें अधीरता होगी और पूछेंगें तो, वे जाने की अनुमति नही देंगें! इस प्रकार उपाय का विचार करते हुए, वे दोनों उद्यान में टहलनें लगें।

उसी समय वध्यभूमि की ओर ले जाए जाते किसी पुरुष ने शरण, शरण इस प्रकार कहते हुए कुमार के पैरों में गिरा। उस पुरुष के समीप में रहें दंडधारी सैनिकोंनें कहा - राजकुमार! यह दुष्ट चोर है। सुदत्त श्रेष्ठी के घर से चोरीकर निकलते समय यह पकडा गया था। पश्चात् राजा के आदेश से, इसे शूलि पर चढाने के लिए, हम इसे वध्यभूमि में ले जा रहें हैं। तब कुमार ने सोचा - शरण में आएँ का समर्पण करना योग्य नही है और चोर का रक्षण करना भी अयोग्य है। फिर भी शरण में आएँ का त्याग करना हमारे जैसे शरण देनेवालों को घटता नही है। इस प्रकार विचारकर शरण आगत की रक्षा के लिए उत्सुक कुमार ने कहा - तुम इसे ग्रहण नही कर सकते हो। पिता से कहना कि इसे छोड दे। कुमार के निश्चय को जानकर, उन्होंनें शीघ्र ही जाकर राजा से निवेदन किया। रोष में आकर, राजा ने उसे देश बहिष्कार का आदेश दिया। राजा का वचन सुनकर, कुमार खुश हुआ और अपने मित्र के साथ नगरी से निकल पडा।

मार्ग में पुण्योदय सूचक प्रशस्त शकुन हुए। क्रम से बहुत मार्ग का उल्लंघनकर एक भयंकर अटवी में आएँ। कुमार खेदित होकर वटवृक्ष की छाया में सो गया। सुमित्र उसकी थकान दूर करने के लिए पैरों की मालिश करने लगा। वटवृक्ष का अधिष्ठायक भासुरप्रभ नामक यक्ष उन दोनों का रूप देखकर खुश हुआ। अवधिज्ञान से उनका वृत्तांत जान लिया। सुमित्र से प्रत्यक्ष होकर कहा - वत्स! तुम दोनों मेरे उत्तम अतिथि हो। इसलिए मैं तुम दोनों की क्या आतिथ्य कर सकता हूँ? सुमित्र ने कहा - देव! दुर्लभ ऐसे आपके दर्शन प्राप्तकर, हमने सब कुछ पा लिया है। यक्ष ने कहा - याचना सिवाय सज्जनों में सर्व गुण होतें हैं। सज्जन पुरुष दुःखियों का उद्धार करतें हैं और बदले में कुछ भी नही मांगतें हैं। फिर भी देवदर्शन अमोघ है। इसलिए तुम इन दोनों मणि को ग्रहण करो। तीन उपवास से इस नीलमणि की पूजा करने पर, यह राज्यप्रद होगा और यह दूसरा लालमणि ॐ ह्रीं से जाप करने पर, मनोवांछित पूर्ण करता है। नीलमणि राजकुमार के लिए योग्य है और लालमणि तुम्हारें लिए उचित है। हाथों से संपुट बनाकर, सुमित्र ने विस्मित होते हुए उन दोनों मणि को ग्रहण किया। यक्ष को प्रणामकर

सोचने लगा - अहो! क्या यह वास्तविक है? इस कुमार को धन्य है, जिसका देव भी सान्निध्य कर रहा है। इतने में ही यक्ष अदृश्य हो गया।

कुमार जाग गया और पुनः दोनों ने आगे प्रयाण किया। सुमित्र ने तीन दिनों तक कुमार को फल खाने से रोका। वे महाशाल नगर के उपवन में पहुँचे। वहाँ पर सुमित्र ने कुमार को नीलमणि देकर कहा - मित्र! इस मणिरत्न की पूजा करो, जिससे तुम महाराज बनोगे। यह सुनकर कुमार विस्मित हुआ और पूछा - मित्र! तूने इसे कहाँ से प्राप्त किया है? सुमित्र ने कहा - तुम्हारे पुण्य से। शेष वृत्तांत राज्य की प्राप्ति के बाद कहूँगा। कुमार ने भी नीलमणि की पूजा की और अब राज्य की प्राप्ति कैसे होगी? इस प्रकार विचार करते हुए आम्रवृक्ष के नीचे बैठा। सुमित्र लतामंडप में जाकर, पुष्प आदि से चिंतामणि की पूजाकर, देह उपयोगी साधन-सामग्री की माँग की। तत्क्षण ही मणि के प्रभाव से दैविक अंगमर्दकोनें, उन दोनों का तैल से अंगमर्दन किया। सुगंधि द्रव्यों से विलेपन किया! स्वर्ण आसन पर स्नानकर, दिव्यवस्त्र, पुष्प, अलंकार आदि धारण किएँ। स्वर्णपात्रों में खान-पानकर, महामूल्य तांबूल का आस्वादन लिया। माया-जाल के समान, उपभोग करने के बाद सर्व सामग्री अदृश्य हो गयी। कुमार ने पूछा - मित्र! क्या यह नीलमणि का प्रभाव है? सुमित्र ने कहा - मित्र! ऐसा मत कहो। समय आने पर, मैं सब कुछ बता दूँगा। पश्चात् वे दोनों सुखपूर्वक वार्त्तालाप करनें लगें।

इधर अकस्मात् ही समीप के नगर में अपुत्रीय राजा का स्वर्गवास हो गया। पाँच दिव्यों के साथ मंत्री आदि उस उपवन में पहुँचे। तब गर्जना करते हाथी ने कलश-जल से कुमार का अभिषेककर अपनी पीठ पर बिठाया। कुमार चारों ओर से छत्र-चामर से शोभित होने लगा। स्तुतिपाठक कुमार का जयघोष करनें लगें। मंत्रियोंनें नमस्कारकर नगर में प्रवेश करने की विज्ञप्ति की। तब सुमित्र सोचने लगा - मेरे मित्र ने विस्तृत राज्य प्राप्त किया है। अब मैं स्वेच्छा से, गुप्तरीति से यहाँ से निकलकर नगर के अंदर पर्यटन करता हूँ। सुमित्र को नही देखने से, कुमार आकुलित हुआ। मंत्री ने पूछा - देव! आप शोकग्रस्त क्यों है? क्या सोच रहे है? किसकी अपेक्षा है? हम क्या लाएँ। राजा ने कहा - मेरा मित्र यही पर था, किंतु अब दिखायी नही दे रहा है। इसलिए शीघ्र ही तुम उसे ले आओ। सुभटों नें चारों ओर तलाश की, किंतु कही पर दिखायी नही दिया। मंत्री आदि ने राजा से आग्रहकर, नगर में प्रवेश कराया। उनके आग्रह से, रत्नशिख राजा ने पूर्वराजा की आठ कन्याओं के साथ विवाह किया। उनके साथ विलास करते हुए, राज्य का परिपालन करने लगा। परंतु क्षणमात्र के लिए भी हृदय से अपने मित्र को नहीं भूलता था।

इस ओर सुमित्र भी नगर में पर्यटन करने लगा। तब रतिसेना नामक वेश्या की पुत्री ने प्रेमपूर्वक सुमित्र को देखा। अपनी पुत्री का अभिप्राय जानकर, वृद्ध वेश्या ने संमानपूर्वक उसे समीप बुलाया। बाह्य आकृति से सुमित्र को धनवान् जानकर, वृद्धाने उसका सत्कार किया। वेश्या केवल धनिकों पर रागी होती है, किंतु गुणिजनों के गुण पर नही। जैसे मक्खियाँ दुर्गंधि विष्ठा पर बैठती है, किंतु चंदन पर नही। वे धन के लिए चंडाल तथा कुष्ठि का भी संग कर लेती है। इस प्रकार जानते हुए भी सुमित्र, रतिसेना के प्रेमपाश में फंस गया और थोड़ा समय बीताने के लिए, वही पर रहने लगा। वृद्धवेश्या अत्यंत खुश हुयी, किंतु धन के संदेह से उसने सुमित्र के पास आभूषण आदि माँगें। तब सुमित्र ने यह थोडे धन से खुश नही होगी ऐसा सोचकर एकांत में चिंतामणि की पूजाकर याचना की। चिंतामणि के प्रभाव से आभूषण आदि प्राप्तकर शीघ्र ही वृद्धा को दे दिए। इस प्रकार वृद्धा बार-बार माँगने लगी। सुमित्र के द्वारा भी अधिक आभूषण आदि देने पर, वृद्धा ने सोचा कि यह दान-लीला चिंतामणि के बिना संभव नही है। इसलिए उस चिंतामणि को ही चुरा लेती हूँ। एकदिन जब सुमित्र स्नान करने गया तब मौका पाकर वृद्धा ने परिधान वस्त्र के गांठ से चिंतामणि लेकर निकल गयी। पुनः वृद्धा ने धन की माँग की। चिंतामणि को नही देखकर, सुमित्र ने उसके बारे में वेश्या वर्ग से पूछा।

कपट कला में प्रवीण चतुर वृद्धा विलाप करते हुए कहने लगी - तुझे दान नही देना है तो मत दो, किंतु मुझे कलंकित तो न करो। सुमित ने जान लिया कि - इसीने मेरा रत्न चुराया है, इसमें संशय की बात नही है। अब मैं यहाँ पर कैसे रहूँ? यहाँ रुकना उचित नही है। राजा से फरियाद करने में लज्जा का अनुभव करता सुमित्र वहाँ से देशांतर चला गया। मार्ग में जाते हुए, वह सोचने लगा - लोभी वेश्या स्त्रियों के अज्ञान को धिक्कार हो। मुंहमाँगा धन देने पर भी, वृद्धा की धन की तृष्णा शांत नही हुयी। उस पापिनी ने विश्वास द्रोहकर, केवल मुझे ही नही ठगा है, किंतु तत्त्व से अज्ञान बनकर स्वयं की आत्मा को भी ठगा है। इस मणि के विधि, मंत्र से अज्ञान होने से, पत्थर के समान उस मणि से यह वृद्धा कवडीमात्र भी प्राप्त नही कर सकेगी। मैं किस प्रकार अपना सामर्थ्य बताकर, उससे वापिस मणि ग्रहण कर सकता हूँ? इस प्रकार आकुलित होते हुए मार्ग में आगे बढ़ने लगा।

क्रम से सुंदर महल, बहुत उद्यानों से युक्त एक विशाल नगर में पहुँचा। आश्चर्यसहित सुमित्र ने नगर के अंदर प्रवेश किया। समस्त नगर का अवलोकन करते हुए, राजमहल के समीप में आया। मनुष्य रहित उस महल को देखता हुआ धीरे-धीरे साँतवी मंजिल पर चढ़ा। वहाँ पर शरीर पर कुंकुम लेप से युक्त,

मस्तक पर कर्पूर, कंठ में पुष्पमाला और बेडी से दोनों पैरों से जकडी दो ऊंटनियों को देखा। ये दोनों कौन है? यहाँ पर क्यों और कैसे चढ़ी है? इस प्रकार विचार करता हुआ इधर-उधर देखने लगा। तब झरुखे में सफेद और काले अंजन से युक्त दो कूपिकाएँ देखी! पास में ही सली को देखकर सुमित्र ने जान लिया कि यह योग अंजन है। दोनों ऊंटनियों के आँखों पर सफेद बाल देखकर सुमित्र ने सोचा - किसी ने अंजन का प्रयोगकर, इन दोनों स्त्रियों को ऊंटनी बना दी है। कदाच काले अंजन के प्रयोग से, ये दोनों मूल स्वरूप में आजाएँ, इस्तेमाल कर देखता हूँ, ऐसा विचारकर उनकी आँखों पर काला अंजन लगाया। तत्क्षण ही वे दोनों मानवी बनी। सुमित्र ने उनसे कुशल-क्षेम पूछा और कहा - चित्त में आश्चर्य उत्पन्न करनेवाला, तुम दोनों का क्या वृत्तांत है। तब उन्होंनें कहा - भाग्यशाली! हमारी कथा सुनो -

गंगानदी की उत्तरदिशा में भद्रका नामक नगर है। वहाँ पर गंगादित्य श्रेष्ठी निवास करता था और उसकी वसुधारा पत्नी थी। उन दोनों को आठ पुत्रों के ऊपर, दो पुत्रियाँ थी। उन दोनों का जया और विजया नाम रखा गया और वे दोनों यौवन-अवस्था में आयी। गंगा तट के उद्यान में क्रियावान्, शौचपरायण, वैद्य-निमित्त शास्त्रज्ञ, बाह्य से माध्यस्थ तथा अंदर से क्रूर परिणामवाला शर्मक नामक संन्यासी रहता था। एकदिन पिता ने आदरपूर्वक पारणे के लिए उसे घर पर बुलाया। बहुमानपूर्वक आसन पर बिठाकर, पिता उसे सुंदर पक्वान, साग आदि पिरसने लगें और हम दोनों पवन वींजनें लगें। हम दोनों के रूप पर मोहित होकर, वह सोचने लगा - यदि रंभा सदृश इन कन्याओं का संग न करुँ, तो जप, तप, ध्यान, क्रिया, इन्द्रियरोध तथा जीवन से भी क्या प्रयोजन है? संसार में मृगाक्षि सदृश स्त्रियाँ ही सार है। देवियोंनें ब्रह्मा को, गंगा तथा गोरी ने महादेव को गोपियोंनें गोविंद को भी क्षोभित कर दिया था। तब मेरा यह कौन-सा व्रत है? इस प्रकार के कुविकल्प से, सरस भोजन का त्यागकर, हृदय में कुछ सोचने लगा। श्रेष्ठी भी व्याकुलित होकर कहा - मुनि! भोजन करे, अब तत्त्वचिंतन से क्या प्रयोजन है? अन्न ठंडा हो जाने पर सुखकारी नही होता है। बार-बार प्रेरणा करने पर उसने कहा - दुःख से जलाएँ जाने पर, भोजन सुखकारी कैसे हो सकता है? ऐसा कहकर दुर्बुद्धि ने कितने ही कवल अपने मुख में डालें।

भोजन करने के बाद श्रेष्ठी ने पूछा - तापस ! आपको क्या दुःख है? उसने कहा - सर्वसंग का त्याग करने पर भी, आप जैसों का संग ही दुःखकारी है। मैं आप जैसे भक्तिमान् तथा सज्जन पुरुष के दुःख को देखने में असमर्थ हूँ। मैं इसके आगे और कुछ नही कहना चाहता हूँ। इस प्रकार कहकर तापस अपने स्थान पर चलने लगा। श्रेष्ठी भी शंका सहित उसके पीछे-पीछे चलने लगा।

श्रेष्ठी ने एकांत स्थान में हाथ जोडकर कारण पूछा। तापस ने कहा - इस ओर शेर और इस ओर नदी वाला न्याय लागू पड रहा है। यह बात तपस्वियों के कहने योग्य नही है, फिर भी तुम भक्तिमंत होने से कह रहा हूँ। भोजन करते समय, कुलक्षणों से युक्त तथा कुलक्षयकारी तेरी दोनों पुत्रियों को देखकर, भविष्य में होनेवाले तेरे कुलक्षय की चिंता से, हृदय में अचानक ही खेद उत्पन्न हुआ था। तब मुझे सरस भोजन भी नीरस लगने लगा। लेकिन तेरे आग्रह से थोडा - बहुत भोजन किया था। यह सुनकर श्रेष्ठी ने पूछा - इसकी शांति कैसे होगी? उसने कहा - युक्ति से ठीक हो सकता है, किंतु कार्य दुष्कर है। श्रेष्ठी ने कहा - कुल की रक्षा के लिए, मैं दुष्कर कार्य भी करुँगा। तापस ने कहा - कल्याण के लिए, लक्षणरहित वस्तु का त्याग ही करना चाहिए। इस न्याय से, अपनी दोनों पुत्रियों को चंदन, अगरु से लिप्त तथा आभूषणों से अलंकृत, शांतिकर्म करने के बाद, गुप्त रीति से संदूक में स्थापित कर गंगा में बहाना। उससे वंश की वृद्धि से तुम खुश होगे। मूढमनवाले श्रेष्ठी ने भी उसका कथन स्वीकार लिया।

एकदिन श्रेष्ठी ने, हमारी माता से कहे बिना ही हम दोनों को संपूर्ण छिद्रों से आच्छादित एक नयी संदूक में डाल दिया। उसने लोगों के आगे कहा कि - यह हमारे कुल की रीति है कि विवाह योग्य कन्या को गंगा में देखी जाएँ। इस प्रकार कहकर गुप्तरीति से तापस के साथ उस संदूक को गंगा के तट पर लेकर गया। प्रातः शांतिकर्मकर, संदूक को गंगा के प्रवाह में बहाया। पिता विषाद सहित घर लौटकर शोक करने लगे। तापस भी अपने मठ में जाकर, हर्षपूर्वक शिष्यों से कहा - शिष्यों! मेरे मंत्र की सिद्धि के लिए गंगादेवी ने हिमालय से आज पूजा उपकरण से युक्त एक संदूक भेजी है। इसलिए तुम शीघ्र ही घाट पर जाकर, उस संदूक को खोले बिना इधर ले आओ, अन्यथा मंत्र विघ्न होगा। शिष्य भी दो गाउ प्रमाण जलाशय में उतरे और संदूक को देखने लगे, किंतु उन्हें दिखायी नही दी।

इधर इस नगर का स्वामी सुभूम राजा सेना की नौ दलों के साथ, गंगा के तट पर पडावकर रुका हुआ था। गंगा में बहती संदूक को देखकर, अपने सैनिकों से बाहर निकलवाया। ताला तोड खोलकर देखा। हम दोनों के अद्‌भुत रूप को देखकर, राजा हम पर मोहित हुआ और स्नेहपूर्वक बुलाने लगा। लेकिन हम दोनोंने प्रत्युत्तर नही दिया। राजा के अभिप्राय को जाननेवाले मंत्री ने कहा - प्रभु! कारण बिना श्रृंगार से युक्त इन दोनों कन्याओं को कौन छोड सकता है? किसी ने अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए इन दोनों को संदूक में डालकर, गंगा में बहाया है। इसलिए किसी अन्य स्त्रियों को इस संदूक में डालकर, इन दोनों को ग्रहण कर लें। तब किसी दूसरे व्यक्ति ने कहा - इस जगह पर कन्याएँ कहाँ से मिल सकती है? इसलिए वन की दो वानरियों को ही इस में रख देतें हैं। राजा ने

कहा - यह सुंदर विचार है। पश्चात् उन्होंनें संदूक में अत्यंत मत्त और भयंकर दो वानरियों को डालकर गंगा में बहाया। राजा हर्षपूर्वक हमें इधर ले आया।

इधर तापस के शिष्य भी सोचनें लगें - गुरु हमसे कभी झूठ नही बोलेंगें, इसलिए लंबे समयतक वही पर रुके रहे। पश्चात् संदूक को देखकर, उन्होंनें बाहर निकाली और उस पापी को सौंप दी। सूर्यास्त होने के बाद गुरु ने अपने शिष्यों से कहा - शिष्यों! आज तुम मठ में ताला लगाकर दूर चले जाना। चिल्लाहट सुनने पर भी इधर मत आना, अन्यथा मंत्रसिद्धि में विघ्न होगा। शिष्य भी स्वीकारकर दूर चलें गएँ। तापस संदूक के समीप आकर कहनें लगा - भद्रे! गंगा ने प्रसन्न होकर, तुम दोनों को वर के रूप में मुझे भेजा है। मेरी याचना का भंग मत करना, मैं तुम्हारा दास हूँ। इस प्रकार कहते हुए उसने संदूक खोलकर अंदर हाथ डाला। इतने में ही क्रोधित होकर दोनों वानरियों नें तपास के कान, नाक, कपाल, होठों को अपने दाँतों से छेद डालें तथा अपने कठोर नखों से उसके हाथ, पैर आदि छिर डालें। तब चिल्लाते हुए गुरु ने आवाज लगायी - शिष्यों! दौड़ों, दौड़ों, ये दोनों बंदरियाँ मुझे खा रही है। इस प्रकार विलाप करता हुआ वह भूमि पर गिर पडा। शिष्य भी गुरु की आवाज सुनकर सोचने लगें - गुरु ने कहा था कि आवाज सुनायी देने पर भी समीप में मत आना, अन्यथा मंत्रसिद्धि में विघ्न होगा। ऐसा विचारकर, वे वहीं पर रुके रहे। दोनों बंदरियों के द्वारा संपूर्ण शरीर पर प्रहार करने से, वह पापी तापस चार प्रहरों के बाद प्राणों से मुक्त बन गया। अज्ञान तप से मरकर वह राक्षस बना। विभंग ज्ञान से इसने जान लिया कि सुभूम राजा ने मेरी दोनों प्रियाओं का अपहरणकर, कपटपूर्वक संदूक में बंदरियाँ डालकर मुझे मरवाया है। इसलिए रुष्ट होकर उसने सुभूम राजा को मार दिया और नगर को उज्जड़ बना दिया है। पूर्व प्रेम के कारण हम दोनों को बचाएँ रखा है। यहाँ पर दो अंजन की कूपिकाएँ है। जब वह राक्षस इधर आता है, तब काले अंजन से हम दोनों को स्त्री रूप में करता है। पुनः जब वह यहाँ से जाता है, तब सफेद अंजन से ऊंटनी बनाकर चला जाता है। सज्जनपुरुष! हम दोनों का यही वृत्तांत है। आप यम की उपमावाले इस राक्षस से हमें बचाएँ।

उनकी करुण कथा सुनकर, सुमित्र ने पूछा - वह राक्षस यहाँ पर कितने दिनों के बाद आता है? और यहाँ से किधर जाता है? तब उन्होंनें कहा - वह राक्षसद्वीप में जाकर, दो-तीन दिनों के बाद शीघ्र ही इधर आ जाता है और पक्ष अथवा मास पर्यंत रहता है। किंतु वह आज यहाँ पर निश्चय ही आनेवाला है। इसलिए आप भोंयरें में गुप्तरीति से छिप जाए। वह प्रभात के समय राक्षसद्वीप चला जाएगा। पश्चात् हम उचित उपाय करेंगें। सुमित्र भी उन दोनों को सफेद अंजन से वापिस ऊंटनीकर भोंयरे में छिप गया। इधर संध्या के समय वह राक्षस वापिस

आया। उन दोनों को स्वाभाविक रूप में बनाकर कहा - मनुष्य की गंध आ रही है। क्या यहाँ पर कोई मनुष्य आया है? तब विश्वास दिलाते हुए उन दोनोंनें कहा - हम दोनों ही मनुष्य है। जब वह वहाँ से निकलने लगा, तब कन्याओं ने कहा - हम दोनों को यहाँ पर डर लगता है। इसलिए तुम शीघ्र ही वापिस आना। वापिस ऊंटनी बनाकर राक्षस चला गया। सुमित्र भी वहाँ पर आ गया। और दोनों अंजन की कूपिकाएँ ग्रहण कर ली। पहले स्त्री रूप में बनाकर, उन दोनों को वापिस ऊंटनी बनायी। एक के ऊपर रत्न की गोणिका रखी और दूसरे के ऊपर चढकर शीघ्र ही महाशालपुर की ओर प्रयाण किया।

कुछ दिनों के बाद, सुमित्र एक मंत्रसिद्धपुरुष के साथ मिला। अपना समस्त वृत्तांत कह सुनाया। सिद्धपुरुषने भी उसे आश्वासन दिया। तीनों लोकों को कंपाता हुआ, चिल्लाता हुआ, भयंकर आकृतिवाला वह दुष्ट राक्षस भी पीछे आ गया। बलिष्ठ मंत्रसिद्धपुरुष ने, मंत्र के प्रयोग से उस राक्षस को थंभे के समान निश्चल बना दिया। राक्षस भी उसकी महिमा को देखकर आश्चर्यचकित हुआ और कहा - अहो! तूने सिद्ध कर दिया है कि राक्षसों से भी मंत्र-औषधि आदि अधिक बलवान् है। स्वामी! मुझे छोडकर, कार्य की आज्ञा करे। सिद्धपुरुष ने भर्त्सना करते हुए कहा - रे दुरात्मा! दुष्ट, पापिष्ठ! सुमित्र के साथ वैर छोड दे। राक्षस ने कहा - मैं आपका सब कहा हुआ करुँगा किंतु इन दोनों प्रियाओं को मुझे अर्पण करें। तब सिद्धपुरुष ने समझाया - हे राक्षस! पूर्वभव में तप-भ्रष्ट, भयंकर मृत्यु तथा अब इस दुर्गति को प्राप्त करने पर भी, तुम नरकप्रद परस्त्रीगमन को क्यों नही छोड रहे हो? सिद्धपुरुष के बचन से, राक्षस ने प्रतिबोध पाकर अपने अपराध की क्षमा-याचना माँगी और अपने स्थान पर चला गया। तब सुमित्र ने हर्षित होकर सिद्धपुरुष की स्तुति की - सत्त्वशाली, साहसिक, धीर और करुणाशाली विश्व में आप ही अद्वितीय है, जिसने राक्षस को भी प्रतिबोध किया है। सिद्धपुरुष ने भी कहा - सुमित्र! सत्त्वशाली और धर्मी पुरुषों में तुम ही श्रेष्ठ हो, जिसने मंत्र, विद्या आदि रहित होते हुए भी महासाहस किया है, तुम धन्यवाद पात्र हो। साहस से ही कार्य सिद्धि होती है। इस प्रकार स्तुतिकर सिद्धपुरुष चला गया।

क्रम से सुमित्र भी महाशाल नगर में आया। किराएँ का घर लेकर रहने लगा। सुमित्र उन दोनों पत्नियों के साथ सुखपूर्वक समय बीताने लगा। इधर सुमित्र के जाने के बाद, रतिसेना भी उदास रहने लगी। उसने तीन दिन तक कुछ भी नही खाया। चिंतामणि से कवडीमात्र भी प्राप्त न कर, व्यग्र बनी वृद्धवेश्या ने रतिसेना से कहा - बेटी! भोजन करो, इस धनवान् का दिल बहलाओ। वेश्याओं के लिए धन ही पति है। यह सुनकर सुमित्र पर अनुरागिनी बनी रतिसेना ने कहा - नदियों से समुद्र, काष्ठों से अग्नि जिस प्रकार तृप्त नही होता है, वैसे ही तूं

पापिनी भी मेरे पति के द्वारा अर्पित धन से तृप्त नही हुयी है। कदाच अग्नि मुझे छू सकता है, किंतु सुमित्र सिवाय कामदेव सदृश पुरुष भी मेरा स्पर्श नही कर सकता है। पुत्री के दृढ निश्चय को देखकर, वृद्धा ने शपथ तथा कपट से भोजन कराकर, कुछ समय बीताया।

एकदिन सुंदर श्रृंगार से सजे तथा मार्ग पर खडे सुमित्र को देखकर, वृद्धा ने अति आग्रहपूर्वक अपने घर में ले गयी। कपटपूर्वक उसने विज्ञप्ति की - हे सौभाग्यशाली! मेरी पुत्री निर्दोष होते हुए भी तुम उसे छोडकर चले गए थे। दुस्सह ऐसे तेरे विरह से, उसके प्राण भी संकट में है। ऐसा कोई चैत्य, घर, मार्ग, दूकान, आंगण, वन नही है, जहाँ पर तेरी शोध न की गयी हो। पत्थर के समान कठोर हृदयवाले तुम, हम निरपराधियों को छोडकर कहाँ पर चले गए थे? वृद्धा के वचन सुनकर, सुमित्र मन में सोचने लगा - अहो! यह पापिनी अब भी पाप का इकरार नही कर रही है। इसने माया से चिंतामणि ग्रहण किया था, इसलिए मैं भी माया से ही ग्रहण करुँगा। क्योंकि शठं प्रति शाठ्यं कुर्यात्। ऐसा विचारकर सुमित्र ने कहा - कार्यवशात् मैं दूर देशांतर चला गया था। व्यापार की बहुलता से यहाँ पर आ न सका। किंतु खाते-पीते, दिन-रात कभी भी तुझ हितेच्छु को भूला नही हूँ। यदि तुझे विश्वास न हो तो, मैं तेरी शपथ ग्रहण करता हूँ। सुमित्र का कहा सुनकर, वृद्धा ने सोचा - यह मुझे झूठा नही मान रहा है, इसलिए उपयोगी बनेगा। किंतु किसी भी प्रकार से, मैं इसे चिंतामणि रत्न देनेवाली नही हूँ। ऐसा विचारकर वृद्धवेश्या हर्षित हुयी।

पश्चात् सुमित्र ने रतिसेना से कहा - प्रिये! मैं तुझे थोडा आश्चर्य दिखाता हूँ। ऐसा कहकर, अंजन के प्रयोग से उसे ऊंटनी बनाकर अपने स्थान पर चला गया। भोजन के समय वृद्धा ने रतिसेना को बुलाया, किंतु उसके नही आने पर, वृद्धा आकुलित हुयी। कमरे में देखने पर, रतिसेना को नही देखते हुए, वृद्धा सोचने लगी - ऊंटनी रूप को धारण करनेवाली इस राक्षसी ने ही मेरी पुत्री का भक्षण किया है। इस प्रकार दुःख से वह चिल्लाने लगी। उसकी चिल्लाहट सुनकर सभी लोग वहाँ पर एकत्रित हुए। लोगों ने वृद्धा से पूछा - रतिसेना के साथ पहले कौन था? उसने कहा - अज्ञात नामवाला कोई विदेशी पुरुष था। लोगों ने कहा - उसी पुरुष ने तेरी पुत्री के अपराध से रुष्ट होकर ऊंटनी बनायी है, ऐसा हमें प्रतीत हो रहा है। वह यहाँ से भागकर कही दूर चला न जाए, इससे पहले ही तुम राजा के पास जाकर फरियाद करो।

वेश्या ने जाकर वीरांगद राजा से फरियाद की। क्या वह ही मेरा मित्र सुमित्र तो नही है? ऐसा सोचकर राजा ने पूछा - तुम पहलीबार उससे कब मिली थी? वेश्या ने कहा - जिस दिन आपका राज्याभिषेक हुआ था, उसी दिन वह

हमारे घर पर आया था। राजा ने आरक्षकों को बुलाकर कहा - संमानसहित उस पुरुष को मेरे समीप ले आओ। वेश्या की दासी के द्वारा दिखाए गए पुरुष को, आरक्षकोंनें शांतिपूर्वक राजा के पास लेकर गए। राजा ने उसे पहचानकर, अपने सिंहासन से उठकर प्रेमपूर्वक भेंट पडा। और धूर्त्त राजा के सज्जन मित्र का स्वागत है ऐसा उपहास वचन बोला। राजा ने कुशल-क्षेम पूछा। नतमस्तक होकर सुमित्र ने कहा - देव की कृपा से कुशल हूँ। राजा के द्वारा वेश्या की पुत्री को ऊंटनी बनाने का कारण पूछने पर, सुमित्र ने कहा - यह सुखपूर्वक वृक्ष के पल्लवों को चर सके, इस लोभी वृद्धा का भार वहन कर सके तथा भोजन का भी व्यय न हो, इसलिए इसे ऊंटनी बनाया है। तब वृद्धा ने कहा - रे इंद्रजालिक! फालतू की बातें मत करो। मैंने तेरी कुशलता जान ली है। वापिस मेरी पुत्री को ठीक करो। सुमित्र ने कहा - जब तुझे भी विशाल उदरवाली गधी बनाकर विष्टा चराऊँगा और नगर को पवित्र कराऊँगा, तब मेरी कुशलता को जानोगी। अन्यथा मुझे मणि वापिस लौटा दो।

सुमित्र का वचन सुनकर राजा ने मणि के बारे में पूछा। उसने कहा - प्रभु! जिस मणि के प्रभाव से तब अरण्य में भी हम दोनों को सुखसाधन की सामग्री प्राप्त हुयी थी, उस मणि को इस वृद्धा ने चुरा लिया है। वृद्धा भी भयभीत होकर सुमित्र के चरणों में गिर पडी। शरणागत की रक्षा में माहिर सुमित्र ने राजा से उसे अभयदान दिलाया। पश्चात् वृद्धा ने सुमित्र के हाथ में मणि सौंप दी। सुमित्र ने रतिसेना को पुनः स्वस्थ बना दिया। माता का चरित्र जानकर, रतिसेना उस पर अत्यंत अनुरागी बनी। राजा के आदेश से सुमित्र ने अपने आभूषण आदि तथा रतिसेना को भी ग्रहण कर लिया। इस घटना से राजा खुश होकर पूछा - *मित्र! तूं ने मणि कैसे प्राप्त किया था?* मुझे छोडकर तुम क्यों चले गए थे? कहाँ रहे? क्या सुख-दुःख प्राप्त किया? यह सब सुनने के लिए मैं कुतूहल हूँ। सुमित्र ने भी अतः से इति तक सर्व वृत्तांत कह सुनाया। राजा भी चमत्कृत होकर कहने लगा - व्यापार से लक्ष्मी प्राप्त की जा सकती है, पथ्य आहार से नीरोगता। वैसे ही पुण्य से स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त किए जाते है। सुमित्र ने कहा - प्रभु! आपने उद्यम बिना ही राज्यलक्ष्मी प्राप्त की है। यह सब पुण्य का ही माहात्म्य है। दूसरी बात यह है कि - आप महापुर में नगर बसाएँ, जिससे स्वदेश का विस्तार हो सके। वीरांगद राजा ने भी महापुर में नगरी का निर्माण कराकर, अपनी आज्ञा का प्रवर्त्तनकर, महाशालपुर में रहने लगा। इस प्रकार भोग सुख रूपी समुद्र में मग्न बनकर, सुखपूर्वक राज्य का संचालन करने लगा।

इस प्रकार नवीन कथा कहकर, कथाकार भट्ट ने रत्नशिख राजा से कहा - प्रभु! कथा का परमार्थ यही है कि - पुण्यशाली कही पर भी जाकर व्यवसाय

करे, वह वीरांगद राजा के समान सुख प्राप्त करता है। यह सुनकर राजा हृदय में सोचने लगा-अहो! धीरपुरुषों का चरित्र सुधारस समान है। इसलिए मैं भी देशांतर जाकर, अपने पुण्य की परीक्षा करता हूँ। इस प्रकार अपने मन में निर्धारणकर, राजा ने पूर्णभद्र मंत्री से यह बात कही। मंत्री ने कहा - देव! पृथ्वीतल पर कौन आपकी इच्छा पर आटंक डाल सकता है? फिर भी आपसे विज्ञप्ति करना चाहता हूँ कि - विदेश का प्रयाण कठिनाईयों से युक्त है। मार्ग में प्रयाण करते समय बहुत अपायों की संभावना है। शत्रुराजा हमेशा छल की गवेषणा करते रहते हैं और आपका शरीर भी अत्यंत कोमल है। इसलिए आप प्राचीन पुण्य से प्राप्त इस राज्य का परिपालन करे। फलांतर की वांछा से क्या प्रयोजन है? मंत्री के द्वारा बहुत समझाने पर भी, राजा ने उसकी बात नही मानी। पश्चात् रात्रि के समय, तलवार हाथ में लेकर अकेला ही नगर से बाहर निकला। शुभ शकुनों से प्रेरित उत्तर दिशा की तरफ चल पड़ा।

गाँव, श्रेष्ठ नगर आदि का उल्लंघन करते हुए, कुमार ने किसी वन में एक बड़ा हाथी देखा। कुमार ने हाथी को वश किया और उस प[illegible]ा। तब कुमार के कंठ में अकस्माद् ही पुष्पमाला गिरी। यह देखकर कुमार विस्मित होते हुए आगे बढ़ा और सामने एक महासरोवर देखा। वहाँ जलक्रीड़ा कर, सरोवर के तट पर खड़ा हुआ। उतने में ही किसी स्त्री ने दिव्यवस्त्र दिये। स्त्री ने कहा-अपूर्वदेव ऐसे आपका स्वागत है। कुमार ने कहा-भद्रे! मैं अपूर्वदेव कैसे हूँ? तब हँसकर स्त्री ने कहा-देवों की सम्यक् प्रकार से आराधना करने पर, वे सुख देते हैं अथवा नहीं? आपको देखने मात्र से ही हमारी सखी को सुख की प्राप्ति हुई है उससे ही आपको अपूर्व देव कहा है। तब राजकुमार ने पूछा-यह तुम्हारी सखी कौन है? और उसने मुझे कैसे देखा है?

स्त्री ने कहा-वैताढ्यपर्वत पर सुरसंगीत नगर है। वहाँ पर सूरण राजा राज्य करता था। उसे स्वयंप्रभा और महाप्रभा नामक दो पत्नियाँ थीं। उन दोनों को विनयवान् तथा सुंदर नीतिवाले शशिवेग और सूरवेग नामक दो पुत्र हुए। एक दिन संसार से विरक्त सूरण राजा ने शशिवेग को राज्य देकर, स्वयं ने रवितेज गुरु के पास दीक्षा ग्रहण की। राज्य संपत्ति का लोभी बना सूरवेग ने अपने मामा सुवेग की सहायता लेकर राज्य पर युद्ध करने के लिए तैयार हुआ। शशिवेग अपने नगर को छोड़कर सुगिरिपर्वत की बाजू में नया नगर बसाकर रहने लगा। उस शशिवेग राजा की चंद्रप्रभा नामक पुत्री है। सुशिक्षित बुद्धि से युक्त किसी नैमित्तिक ने उस कन्या को देखकर, राजा से कहा-जो इस कन्या के साथ विवाह करेगा, वह ही आपके राज्य को पुनः प्राप्त करायेगा। उसे कैसे पहचानेंगे? इस प्रकार राजा के पूछने पर, ज्योतिषि ने कहा-जो वन में, मदमस्त बड़े हाथी को अपने वश करेगा,

वह बलशाली ही इस कन्या का भर्त्ता होगा।

उस दिन से लेकर महावतों ने भी गंधहस्ति को सुरक्षित रखा था। किन्तु कल ही वह हाथी आलानस्तंभ को उखाड़कर, इस अरण्य में आया था। पिता के आदेश से चन्द्रप्रभा भी वहाँ आ गयी और उसने ही आपके कंठ में वरमाला डाली थी। सुंदरकुमार! यह दिव्यवस्त्र आदि सामग्री उसीने भेजी है। इस प्रकार कहकर वह स्त्री मौन हो गयी। इसी बीच कहीं पर से, उस अरण्य में सेना आई। सेना के आगे चलते किसी घुड़सवार ने राजकुमार से पूछा-आपने इस वन में, हाथी को वश कर और उस पर चढ़े किसी पुरुष को देखा था? हमारे राजा उसका दर्शन करना चाहते हैं। विद्याधरी स्त्री ने कहा-यह राजकुमार वे ही है। घुड़सवार ने यह जानकर, अपने स्वामी वसुतेज राजा को इस घटना का निवेदन किया। मंत्रियों ने राजकुमार को आदर सहित आह्वान किया। वसुतेज राजा ने अपनी आठ कन्याएँ तथा राज्य भी रत्नशिख राजकुमार को सौंप दिया और स्वयं ने सद्गुरु के पास दीक्षा ग्रहण की। शशिवेग राजा भी इस समाचार को सुनकर, हर्ष से चंद्रप्रभा कन्या दी और हजार विद्याओं से युक्त अपराजिता विद्या भी साथ में दी।

सुवेग विद्याधर ने यह व्यतिकर सुना। उसने हाथी का रूप धारण कर, कुमार के नगर उद्यान की सीमा में आया। उस हाथी को जीतने के लिए, कुमार भी कुतूहलता से वहाँ आया। कुमार ने हाथी को वश किया और बाद में उस पर चढ़ा। इतने में ही वह हाथी आकाश में उड़ गया। इस आकस्मिक घटना से मुंझाये कुमार ने दृढ़मुष्टि से उस पर प्रहार किया। घात की पीड़ा से सुवेग विद्याधर मंत्र का स्मरण करना भूल गया। वह अपने वास्तविक स्वरूप में आ गया और 'नमो अर्हद्भ्यो' (अरिहंत भगवंतों को नमस्कार हो) कहते हुए भूमि पर गिर पड़ा। कुमार यह पद सुनकर, हा! मुझे धिक्कार हो, मैंने अपने साधर्मिक की आशातना की है, इस प्रकार विचार करने लगा और पानी के छिंटकाव तथा हवा के वींजने से उसे होश में लाया।

रत्नशिख कुमार ने कहा-आपका सम्यक्त्व अत्यंत सुंदर है, क्योंकि आपदा में भी आपने स्वस्थ चित्त से नमस्कार महामंत्र का स्मरण किया था। तत्त्व की अज्ञानता के कारण मैंने आप पर प्रहार किया था, वह अपराध क्षमा करें। तब सुवेग विद्याधर ने कहा-यह तेरा दोष नहीं है, किन्तु मैं ही महापापी हूँ। क्योंकि जान-बूझकर ही मैं तेरा बिगाड़ना चाहता था। मैं चक्रपुर का राजा सुवेग विद्याधर हूँ। पिता के द्वारा शशिवेग विद्याधर को राज्य देने पर भी, अपने भाणजे के पक्षपात के कारण, उसे नगरी से बाहर निकाल दिया था। भाणजे के राज्य पर युद्ध की बात सुनकर मैं क्रोधी बन गया था और तुम्हारा वध करने के लिए व्यर्थ ही हाथी का रूप बनाकर आया था। साधर्मिक पर वात्सल्य रखनेवाले तूने मुझे सुंदर

बोध दिया है। अब मैं संसारवास से विरक्त हो चुका हूँ। और दीक्षा ग्रहण करनेवाला हूँ। इसलिए सज्जन पुरुष! तुम मेरे राज्य को ग्रहण कर लो। मैं शशिवेग राजा से क्षमा माँगकर, शीघ्र ही अपने वांछित फल को प्राप्त करूँगा।

किसी विद्याधर से यह वृत्तान्त जानकर, शशिवेग भी वहाँ आ गया। सुवेग ने उससे क्षमा माँगकर दीक्षा ग्रहण की। क्रम से रत्नशिखकुमार विद्याधर श्रेणि का स्वामी बना। पुण्यवंत प्राणी परदेश में भी उत्तम लक्ष्मी प्राप्त करते हैं। शशिवेग का भाई सूरवेग भी, अपने मामा की दीक्षा ग्रहण की बात सुनकर, बन्धु के द्वारा रोके जाने पर भी, वैराग्य से दीक्षा ग्रहण की। रत्नशिख राजा भी पूर्व के पुण्य से, विद्याधर के ऐश्वर्य को प्राप्तकर, जिनेश्वर भगवंत, गणधर तथा केवली भगवंत के चरणकमल में नमनशील होते हुए, उत्तम बोधिरत्न प्राप्त किया। पुण्यवंतों में अग्रगणनीय ऐसे रत्नशिख राजा ने कितने ही लाखों वर्ष पर्यंत उत्तमोत्तम सुख भोगे।

एक दिन अयोध्यानगरी में सुयशमुनि ने पदार्पण किया। मुनि को वंदनाकर, राजा ने अपने पूर्वभव के बारे में पूछा। तब मुनि भगवंत ने विस्तार से उसका चरित्र कहा। राजन्! यह संपूर्ण राज्य आदि समृद्धि भी तुझे पंचमंगल नमस्कार महामंत्र के प्रभाव से मिली है। इहलोक और परलोक में, नमस्कार महामंत्र किसके सुख के लिए नहीं हो सकता है? इस प्रकार मुनिभगवंत के वचनरूपी अमृत से पाप रूपी विष से रहित बने रत्नशिख ने दीक्षा ग्रहण की। केवल ऋद्धि प्राप्त कर, सिद्धगति पहुँचे। इस प्रकार रत्नशिख के चरित्र को सुनकर विमलकीर्ति राजा संसारवास रूपी पाश से मुक्त होकर मोक्ष सुख की इच्छा से, देवरथ को राज्य सौंपकर, स्वयं ने धर्मवसु गुरु के पास दीक्षा ग्रहण की। देवरथ भी अपनी प्रिया रत्नावली के साथ अच्छी प्रकार से गृहस्थ धर्म का पालन करने लगा। राज्य पुत्र को सौंपकर, आयु के क्षय हो जाने पर, दोनों ने आनतकल्प में देव-ऐश्वर्य प्राप्त किया। इस प्रकार एक सुंदर विमान में, प्रीति-परायण वे दोनों देव बने और आनंदपूर्वक उन्नीस सागरोपम पर्यंत अनुपम सुख भोगे।

इस प्रकार पं.श्रीसत्यराजगणि द्वारा विरचित श्रीपृथ्वीचंद्रचरित्र में, देवरथ का श्रमणोपासक चरित्र रूपी चतुर्थ भव वर्णन संपूर्ण हुआ।

पंचम भव

पूर्वविदेह के पुष्कलविजय में, विशाला नगरी है। वहाँ पर **सिंहसेन** राजा राज्य करता था। मूर्तिमंत लक्ष्मी के समान उसकी **प्रियंगुमंजरी** रानी थी। वे दोनों दंपती प्रेम से सुखपूर्वक समय बीता रहे थे। छीप में मोती के समान, देवरथ का जीव स्वर्ग से च्यवकर, प्रियंगुमंजरी की कुक्षि में अवतीर्ण हुआ। पूर्णचंद्र को स्वप्न में देखने से, शुभ दिन में महोत्सवपूर्वक, पिता ने उस पुत्र का **पूर्णचंद्र** नाम

रखा। रत्नावली देव भी स्वर्ग से च्यवकर, उसी नगरी में रानी के भाई विशालमंत्री के घर में पुत्री बनी। स्वप्न में पुष्पमाला देखने से, सद्गुणों रूपी रत्न की खाण के समान तथा देवकन्या सदृश उसका **पुष्पसुंदरी** नाम रखा। वह यौवन अवस्था में आई।

एक दिन पिता के निर्देश से, वसंतऋतु के समय सखी से युक्त उद्यान देखने गयी। वहाँ लंबे समय तक वासंती लता के मंडप में क्रीड़ाकर, श्रम दूर करने के बाद आनंदपूर्वक वीणा बजाने लगी। इसी बीच मित्रों से घेरा पूर्णचंद्र भी कुतूहलता से उसी उद्यान में आ गया। पुष्पसुंदरी ने स्नेह से पूर्णचंद्र को देखा। पूर्वभव की प्रीति से, पूर्णचंद्र के रूप दर्शन से, यह पुष्पसुंदरी कामदेव के बाण से वींधी गयी। पुष्पसुंदरी के भाव जानकर, उसकी सखी अशोकदत्ता ने पूर्णचंद्र से कहा-क्षण के लिए आप इस लतामंडप में पधारे। पूर्णचंद्र भी लतामंडप के अंदर आ गया। वहाँ उसने पुष्पसुंदरी को देखा। पुष्पसुंदरी ने भी अभ्युत्थान, आसन आदि से उसका सत्कार किया। तब पूर्णचंद्र सोचने लगा-अहो! इसकी सुंदरता कुछ अद्वितीय ही है। अहो! विधाता का यह निर्माण। अहो! इसका अद्भुत लावण्य। पूर्वभव के तीव्र प्रेम संस्कार के कारण, कुतूहलता से उसे बार-बार देखते हुए पूर्णचंद्र खुद को रोक न सका।

पूर्णचंद्र ने कहा-चंद्रमुखी! अब वीणा बजाओ। शर्म से पुष्पसुंदरी ने अपना मुख नीचे झुका दिया। तब अशोकदत्ता ने कहा-सौभाग्यशाली! यह आपके सामने लज्जित हो रही है। निर्मलकुमार! उससे आप यह मत सोच लेना कि यह अविनीत है। मैं वीणा बजाता हूँ, इस प्रकार पूर्णचंद्र के कहने पर, अशोकदत्ता ने भी उसे शीघ्र ही वीणा दी। पश्चात् वे दोनों प्रसंग पाकर आपस में वार्त्तालाप करने लगे। इतने में ही पुष्पसुंदरी की माता के समीप से वहाँ कन्या की सखी आयी और कहने लगी-अहो! इस युवान् का संग अद्भुतकारी है। आप इधर इतने समय तक क्यों रुकी हुई हो? आपके बिना आपकी माता जयादेवी, आज भोजन नहीं कर रही है। उससे शीघ्र महल चलो। यह बात सुनकर, नहीं चाहते हुए भी पुष्पसुंदरी उसके साथ चली गयी। तुच्छ पानी में मछली आनंदित नहीं होती है, वैसे ही पूर्णचंद्रमुखी पुष्पसुंदरी का चित्त भी पूर्णचंद्र का सतत स्मरण करता हुआ, कहीं पर भी नहीं लग रहा था।

पुष्पसुंदरी के हृदय का आशय जानकर, उसकी सखियों ने कहा-बहन! हम तुम्हारे मन के दुःख का कारण जानते हैं। उसे शांत करने का उपाय भी तुम सुनो। आज हमने आपके पिता को देवी के साथ इस प्रकार आलाप करते हुए सुना था कि, पुष्पसुंदरी के लिए पूर्णचंद्र वर कैसा होगा? उन दोनों का यह उचित योग मणि और सुवर्ण के समान सुंदर दिखायी देता है। इस प्रकार परस्पर विचार कर,

तुम दोनों के संग की इच्छा से क्रीड़ा करने के लिए इस उद्यान में भेजा है। सखी के इन वचनों को सुनकर, वह शांत चित्तवाली हुई। कुमार भी अपने मित्रों के द्वारा यह समाचार कहने पर, हृदय में आनंदित हुआ। शुभ दिन और शुभ योग में उनके पिता सिंहसेन और विशाल ने, आनंदपूर्वक उन दोनों का पाणिग्रहण महोत्सव मनाया। रूप लक्ष्मी से कामदेव सदृश पूर्णचंद्रकुमार अपनी प्रिया पुष्पसुंदरी के साथ सुख अनुभव करने लगा।

एकदिन नगरी के पुष्पशाला उद्यान में श्रीसुरसुंदर आचार्य ने पदार्पण किया। राजा उनको वंदन करने के लिए गया। प्रिया से युक्त, पूर्णचंद्रकुमार भी वहाँ गया। सभी लोग ने द्राक्ष का अनुकरण करनेवाले उनके व्याख्यान का श्रवण किया। व्याख्यान पूर्ण होने के बाद आचार्य के अद्‌भुत रूप से विस्मय प्राप्त पूर्णचंद्र ने उनसे पूछा-प्रभु! आपका रूप अत्यन्त श्रेष्ठ है और आपकी यौवन अवस्था है। प्रत्यक्ष लक्षणों से आप ऊँचे कुल में जन्मे होंगे इस प्रकार मैं मान रहा हूँ। फिर आपने किस वैराग्य के कारण से, इस कठिन व्रत को स्वीकार किया है? हे भगवन्! मुझे यह आश्चर्य हो रहा है, इसलिए मैं आपसे इसका कारण सुनना चाहता हूँ। तब आचार्य भगवंत ने कहा-राजपुत्र! यह संसार ही हमारे वैराग्य का कारण है, फिर भी तुम इस विस्तृत कथा को सुनो।

रत्नपुर नामक एक नगर है। वहाँ पर सुधनश्रेष्ठी निवास करता था। साक्षात् लक्ष्मी के समान, उसकी लक्ष्मी नामक पत्नी थी। मैं उन दोनों का सुरसुंदर नामक अत्यंत प्रिय पुत्र था। यौवन अवस्था में, पिता ने बत्तीस कन्याओं के साथ मेरा विवाह किया। कुछ समय के पश्चात् माता-पिता का स्वर्गवास हो गया। उनके वियोग से दुःखित होते हुए भी मैं गृहव्यवस्था की चिन्ताओं से घिर गया था। ईर्ष्यालु स्वभाव के कारण, मैं अपनी पत्नियों को घर से बाहर निकलने नहीं देता था। घर में दूसरे लोगों का प्रवेश भी रोक दिया था। दरवाजे पर ताला लगाकर, मैं व्यापार के लिए जाता था। किन्तु वहाँ पर भी सैंकड़ों कुविकल्पों के कारण से चिर समय तक नहीं रुक पाता था। जैसे पक्षियाँ सूके उद्यान को छोड़ देते हैं, वैसे ही भिक्षुकों ने भी मेरा घर छोड़ दिया था. विशेष कर जैन मुनियों ने भी मुझ पापी का घर त्याग दिया था। एक दिन मैं द्वार पर ताला लगाना भूल गया था। मेरे जाने के बाद कोई मुनिभगवंत मेरे घर पर पधारे। उन्हें नमस्कार कर मेरी पत्नियाँ धर्म सुनने लगी। जिस समय मुनिभगवंत श्रीजिनधर्म के बारे में कह रहे थे, उसी समय मैं भी वापिस लौटकर दरवाजे के पास आ गया था। मैं रहस्य में छिपा रहकर, सावधान बना और अंदर की ओर झांकने लगा। मैंने देखा कि रूप के महानिधि सदृश वे मुनिभगवंत आसन पर बिराजमान थे आरै मेरी प्रियाएँ उनके मुखकमल की ओर देख रही थी। तब क्रोध के आवेश में आकर, मैं सोचने

लगा-अहो! ये मुनि उद्धत और अधम है। लज्जारहित और स्वच्छंदता से मेरी पत्नियों के साथ बातचीत कर रहे हैं। इसलिए अनीति की कांक्षावाले इस मुनि के आठों अंगों पर, मैं अपने हाथों से पाँच-पाँच बार लकडियों के प्रहार करूँगा। उतने में ही मैंने उनकी आवाज सुनी। ये कोई मंत्र कर रहे हैं, ऐसा सोचकर मैं विशेष सावचेत बना। वे इस प्रकार दयामय धर्म का स्वरूप कहने लगे-

सौभाग्यमारोग्यमयं वपुश्च रूपं परं वांछितभोगसम्पत्।
स्वर्गापवर्गादिमहासुखानि भवन्त्यहिंसाव्रतपालनेन।।
पङ्गुत्वकुष्ठित्वकुणित्वदोषाः कुब्जत्वमन्धत्वमशर्मरोगाः।
दौर्भाग्यदौर्गत्यविवर्णताश्च स्युर्जन्तुघातं सृजतामिहैव।।

सौभाग्य, आरोग्यमय शरीर, श्रेष्ठ रूप, वांछित भोगों की प्राप्ति, स्वर्ग और मोक्ष आदि महासुख अहिंसाव्रत के पालन से मिलते हैं। और प्राणियों के घात से, इस लोक में पंगुता, कुष्ठिपन, लूंलापन, कूबड़ापन, अंधत्व, दुःखकारी रोग, दौर्भाग्य, दुर्गति और कुरूप मिलते हैं। प्राणिघात करने से मनुष्य, इहलोक-परलोक में शत्रुंजय-शूर नामक पिता और पुत्र के समान बहुत भयंकर दुःख सहन करते हैं। उनका कथानक इस प्रकार है-

इसी विजय के जयपुर नगर में शत्रुंजय राजा राज्य करता था। उसके शूर और चंद्र नामक दो पुत्र थे। शूर को युवराज पद पर स्थापित करने पर, चंद्र खुद का अनादर मानता हुआ देशांतर चला गया। बाद में रत्नपुर नगर में आया। वहाँ पर मुनि भगवंत को नमस्कार कर, उनकी देशना सुनी। धर्म सुनकर, चंद्र निरपराधी प्राणियों के घात से निवृत्त हुआ। बाद में उसने जयसेन राजा का आश्रय लिया। एक दिन राजा ने उसे आज्ञा दी कि-चंद्र! तुम शंका छोड़कर, रात के समय सोये हुए उस हाथी को घेरकर मार डालना। चंद्र ने भी अपने नियम का स्मरण कर, उस कार्य में प्रवर्तित होने का निषेध किया। राजा ने उस पर अत्यंत विश्वास कर, चंद्र को खुद का अंगरक्षक बनाया। एक दिन शौर्य की वृत्ति से, चंद्र उस हाथी को बांधकर ले आया। उससे प्रख्यात बना चंद्र, मुनि द्वारा दिये गये नियम का विशेष परिपालन करने लगा।

इधर राज्य प्राप्ति की इच्छा से, युवराज शूर रात के समय अपने पिता को प्रहार से जर्जरित कर महल से निकलने लगा। रानी ने उसे देख लिया। कोलाहल शब्द होने पर, पहरेदार उसके पीछे दौड़े। और पकड़कर बांध लिया। प्रातः शत्रुंजय राजा के समक्ष ले गये। सभी लोगों ने उसे पहचान लिया। क्रोधित बने राजा ने शूर को देश छोड़ने का आदेश दिया। बाद में, मंत्रियों को शीघ्र भेजकर, चंद्रकुमार को बुलाया। प्रमाद रहित चंद्र भी पिता से मिलने की आतुरता से, जयसेन राजा से अनुज्ञा माँगकर शीघ्रगामी घोड़े के वाहन में बैठा और अपनी

नगरी लौट गया। पश्चात् शत्रुंजय राजा ने चंद्र को राज्य पर स्थापित किया। शस्त्रघात से पीड़ित शत्रुंजय राजा, शूर पर मात्सर्य धारण करते हुए आयुष्य पूर्णकर किसी जंगल में शेर बना। शूर भी घूमता हुआ उसी जंगल में आया और शेर ने उसे मार डाला। शूर मरकर उसी वन में भील हुआ। शिकार करने के लिए इधर-उधर घूम रहे भील को देखकर, शेर ने उसे मार डाला। दूसरे भीलों ने उस शेर पर बाण से प्रहार किये, जिससे वह मर गया।

पश्चात् वे दोनों उसी वन में सूवर बने। वैर के कारण परस्पर युद्ध करते उन दोनों सूवर को भीलों ने मार डाला। मरकर वे दोनों उसी वन में मृग के बालक के रूप में जन्मे। वहाँ पर भी परस्पर पुद्ध कर रहे उन दोनों को भीलों ने मार डाला। पश्चात् वे दोनों हाथी बने। परस्पर युद्ध कर रहे उन दोनों हाथी को पकड़कर, भाग्य के योग से भीलों ने उन दोनों को चंद्रराजा के पास ले गये। वहाँ पर भी वे वैसे ही युद्ध करते थे। महावत उन्हें बार-बार रोकने का प्रयत्न करते थे। एक दिन वहाँ पर ज्ञानी गुरु पधारे। चंद्रराजा ने वंदनकर उनसे पूछा-प्रभु! इन दोनों हाथियों के बीच सतत वैर क्यों है? मुनि भगवंत ने भी उन दोनों के संपूर्ण भव सुनाये। यह जानकर चंद्रराजा धर्मकार्य में प्रमाद रहित बना और संवेग पाकर गुरु के पास दीक्षा ग्रहण की। आयुष्य पूर्णकर स्वर्ग में देव हुआ। हाथी भी मात्सर्य से आपस में युद्ध करते हुए मर गये और रत्नप्रभा नरकभूमि में नारक हुए।

इस प्रकार प्राणिघात के विषय में निवृत्त तथा अनिवृत्त बने व्यक्तियों के विषय में यह दृष्टांत जानकर, सुख-दुःख तथा गुण-अवगुण का मूल समझकर, भव्यप्राणी निरपराधी प्राणी समूह के घात से होनेवाले इस पाप से विराम पावें।

इस प्रकार प्रथम अणुव्रत के विषय में शत्रुंजय-शूर-चंद्र कथा संपूर्ण हुई।

मुनिराज के मुख से कही गई इस कथा को सुनकर, विनय से नम्र बनी मेरी पत्नियों ने प्रथम अणुव्रत का स्वीकार किया और प्राणी वध से विराम पाई। यह कथा सुनकर मैं भी अपने हृदय में सोचने लगा - यह मेरे हित में ही हैं कि ये प्राणी घात से विरत हुई है। क्योंकि क्रोधित होने पर भी, ये मेरा कुछ भी बिगाडनेवाली नहीं है। इसलिए अब मैं, मुनिराज पर चार बार ही लकडी से प्रहार करुँगा। इसीबीच अमृत के समान मधुरवाणी में मुनिभगवंत कुछ कहने लगे। इनके वाक्य सुनने की कुतूहलता से मैं भी बाहर ही खडा था। वे इस प्रकार कहने लगे - यहाँ पर योग्य पुरुषों के द्वारा प्रमाण युक्त सत्य वचन ही बोलना चाहिए। क्योंकि सत्यवादी विश्वास पात्र और सभी लागों को प्रिय होता है।

सत्येनाग्निर्भवेच्छीतो मार्गं दत्तेऽम्बु सत्यतः।
नासिश्छिनत्ति सत्येन सत्याद् रज्जूयते फणी।

सत्य से अग्नि भी शीतल हो जाता है, सत्य से पानी मार्ग देता है। सत्य के कारण तलवार छेद नही सकती और सत्य से सर्प भी रज्जु (डोर) बन जाता है। जिससे इहलोक में प्राणियों को मूकत्व आदि दोष होतें हैं और परलोक में अपयश, ऐसे उस असत्य को चतुर पुरुष छोड़ दे। सत्यवादी पुरुष धन के समान पृथ्वीतल पर किसी के द्वारा भी ठगा नही जाता है और झूठ बोलनेवाला पुरुष धरण के समान खुद को ही खुद से ठगता है। धन और धरण की कथा इस प्रकार है -

इसी विजय में श्रेष्ठ ऐसा सुदर्शनपुर नामक नगर है। उस नगरी में सुदत्त व्यापारी निवास करता था। उसके धन और धरण नामक दो पुत्र थे। धन स्वभाव से ही सत्यवादी तथा सत्य का पक्षपाती था, किन्तु धरण झूठ, कपट आदि में निपुण था। उन दोनों भाईओं की परस्पर प्रीति थी। धन, मन से कपट रहित था और धरण कपटी था। कहा भी गया है कि मन, वचन और काया की शुद्धि सज्जन पुरुषों को ही होती हैं, दुर्जनों को नही। माता-पिता धन को बहुत गौरव देते थे। यह देखकर धरण सोचने लगा - इस घर में रहते हुए भी, माता-पिता मुझे थोडा भी आदर नही देते हैं। एकदिन धरण ने धन से कहा - भाई! अब दूर देशों में जाकर, मेरी धन कमाने की कुतूहलता है। तब धन ने पूछा - भाई! वहाँ जाकर धन कैसे कमाया जा सकता है? क्योंकि मार्ग बहुत लंबा और विषम है और हम दोनों अभी अनुभवहीन बालक हैं। धरण ने कहा - भाई! देशांतर जाने के बाद, हम दोनों कपट आदि युक्ति से धन कमायेंगें। यह सुनकर, धन ने अपने दोनों कानों को हाथ से ढंक दिये और धरण से कहने लगा - भाई! नरक आदि दुर्गति देनेवाले ऐसे वाक्य मत बोलो। उससे तुम मिच्छा मि दुक्कडं दो और पुनः ऐसा मत बोलना क्योंकि न्यायमार्ग से कमाई गई लक्ष्मी ही इहलोक और परलोक में सुखदायी बनती है। यह बात इसे पसंद नहीं आई है, इस प्रकार हृदय में विचारकर धरण ने कहा - मैं भी मन से यह नही चाहता हूँ, किंतु तेरे चित्त के अभिप्राय को जानने के लिए ही ऐसा पूछा था। व्यापार करने के लिए, हम नीवी (मूडी) ग्रहण कर, धन कमायेंगें इस प्रकार प्रेमपूर्वक धरण ने विश्वास दिलाया। धन ने भी इस बात को स्वीकार कर ली।

पश्चात् माता-पिता से कहे बिना ही नगर, गाँव, उद्यान आदि को पार करते हुए किसी स्थान पर रुके। एकदिन धरण सोचने लगा कि - यह मार्ग पर क्यों नहीं आ रहा है? इसलिए कोई उपाय करता हूँ। ऐसा विचार कर चतुर धरण ने धन से कहा - भाई! लोक में धर्म से जय होती है अथवा पाप से? इसका उत्तर दो। तब धन ने कहा - यह बात तो आबाल-गोपाल तक प्रसिद्ध है कि धर्म से ही विजय, संपत्ति, यश, आदि सभी लोग प्राप्त कर सकतें हैं। और अधर्म से प्राणिगण

अपयश, दुःख, दुर्गति आदि प्राप्त करतें हैं। धरण ने कहा - तुम मूर्ख हो और कुछ भी तत्त्व नहीं जानते हो। पाप से ही जय होती है। इस विषय में उन दोनों का विवाद बढनें लगा। धरण ने कहा - वाद के निर्णय के लिए हम दोनों समीप के गाँव में चलें। निर्णय में जो झूठा ठहराया जायेगा, उसकी एक आँख निकाल दी जायेगी। धन ने कहा - वास्तव में तो सत्य मेरे ही पक्ष में है। मैं आँख तो नही लूँगा इस प्रकार वाद करते हुए वे दोनों गाँव में गये और सभा में उपस्थित लोगों से इसका उत्तर पूछा। उन्होंनें कहा - इस समय पाप से जय दिखाई देता है, किन्तु धर्म से नही। यह सुनकर धरण खुश होते हुए कहने लगा - अब तुम मुझे आँख निकालकर दो। दूसरे दिन भी वे दोनों इसी प्रकार विवाद करने लगे। दूसरी आँख की भी शर्त रखकर पुनः उन्होंनें ग्रामवासियों से पूछा। उन्होंनें पुनः धरण के पक्ष में जवाब दिया।

वहाँ से वे दोनों वन में चले गये। धरण ने कहा - अब भी मेरा वचन स्वीकार कर लो। तुम यह कह दो कि मैं तेरे साथ द्यूत नही खेलूँगा। अन्यथा हारी हुई दोनों आँखें मुझे दे दो। तब उस सत्यवादी धन ने कहा - अब तो जुगार खेलने का सवाल ही नही है और मेरी आँखें तेरे आधीन है ही। जो तुझे पसंद हो वह करो। धन के इस प्रकार कहने पर, धरण ने तथा प्रकार वृक्ष के दूध को उसकी आँखों में डाला। उससे तुरंत ही आँखें निकल गई और धरण ने फेंक दी। फिर भी धन ने उस पर लेशमात्र भी क्रोध नही किया। कपट बुद्धिवाले धरण ने कहा - हा! मैंने तुझ पर कैसा अत्याचार किया है? धन ने मधुर वचनों से विलाप करते उसे आश्वासन दिया। भाई! इस ओर शेर-शेर है। उससे तुम शीघ्र भाग जाओ, जिससे हमारे कुल का क्षय न हो जाएँ। इस प्रकार धरण कहते हुए और अपने मनोरथ को सफल मानते हुए वहाँ से पलायन कर अपनी नगरी में पहुँचा। धन भी घूमता हुआ एक विशालवृक्ष के पास आया। मेरा भाई कहाँ है? कहाँ गया है अथवा वह कैसे होगा? इस प्रकार बार-बार धन खेद करने लगा। वृक्ष के अंतर में रही हुई वनदेवता ने उसे देख लिया और सोचने लगी - अहो! इस धन की सज्जनता! अहो! उस धरण की दुर्जनता! देवी ने प्रत्यक्ष होकर कहा - वत्स! उसकी चिंता से पर्याप्त हुआ। वत्स! नेत्ररोग मिटानेवाली इस अंजन औषधि को ग्रहण करो। धन को औषधि देकर देवी अदृश्य हो गई। अंजन के प्रयोग से धन की आँखें पुनः व्यवस्थित हो गई।

भयंकर अटवी को पारकर, धन सुभद्रनगर में पहुँचा। वहाँ की राजकन्या नेत्ररोग से पीडित थी। उसके लिए ढोल बजाये जा रहे थे और ऐसी घोषणा की जा रही थी कि - जो कन्या-रत्न को नेत्ररोग रहित करेगा, उसे राजा अपने राज्य का अर्द्धभाग तथा कन्या देगा। इस घोषणा को अच्छी प्रकार से सुनकर, धन ने

ढोल का स्पर्श किया। अंजन के प्रयोग से उसका नेत्ररोग मिटा दिया। पश्चात् अत्यंत प्रीति से, धन ने उस राजकन्या के साथ विवाह किया। लक्ष्मी से युक्त विष्णु के समान, उस वधू से युक्त धन अर्द्धराज्य प्राप्त कर, सुख रूपी समुद्र में मग्न बनकर उस उपमा को चरितार्थ कर दी।

एकदिन सुदर्शन नगर से कोई ब्राह्मण आया था। उसे अपने संबंधि के रूप में पहचानकर, धन अपने महल में ले गया। धन ने खान-पान आदि से उसका सत्कार किया और अपने माता-पिता तथा अपने भाई धरण के कुशल समाचार पूछे। ब्राह्मण ने कहा - जब से माता-पिता ने तेरे शेर के भय के बारे में सुना था, उस दिन से लेकर वे दोनों दिन-रात दुःख में ही बिता रहें हैं। धरण जीवित और नीरोगी है तथा व्यापार संभाल रहा है। यह सुनकर धन चित्त में प्रसन्न हुआ और उसे दक्षिणा दी। बाद में अपने नाम से अंकित मुद्रावाला लेख उसे देकर भेज दिया। ब्राह्मण भी ले जाकर, लेख आदि सर्व सामग्री धन के पिता को समर्पित कर दी। सुदत्त व्यापारी अपने पुत्र के कुशल समाचार तथा उसके अद्‌भुत भाग्य के बारे में सुनकर, हर्ष से अपने पुत्र का वर्द्धापन महोत्सव मनाया। तब धरण विचार करने लगा - वह नगर में कैसे आया होगा? क्योंकि तब मैंने वैसी परिस्थिति में ही उस बडे जंगल में छोड दिया था। मेरा प्रतिकूल करनेवाले इसने भाग्य से ऐसी संपत्ति कैसे प्राप्त की? कहा भी गया है कि - भाग्य वह कर देता है जिसके बारे में अनुमान भी नही किया जा सकता है और सुव्यवस्थित कार्य को भी बिगाड देता है। यदि धन इधर आयेगा, तो मेरा हलकापन होगा। इसलिए मैं शीघ्र जाकर दूसरे उपाय का प्रयोग करता हूँ, जिससे धन इधर न आ सके। ऐसा विचारकर उसने पिता से कहा - मैं भाई से मिलने के लिए आतुर हूँ। आप मुझे जाने की आज्ञा दे। पिता ने भी आनंद से उसे भेज दिया।

धरण सुभद्रनगर आया। धन उसे देखकर आनंद से आलिंगन किया। किन्तु धरण उसकी संपत्ति आदि समृद्धि देखकर खेदित हुआ और सोचने लगा - अहो! धन ने इस संपत्ति के द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि धर्म से ही जय होती है। किन्तु, मैं क्षणमात्र में ही आज इसका विरुद्ध करुँगा। धन भी अपने भाई का लालन-पालन करने लगा। एकदिन धरण एकांत में राजा से मिलकर कहने लगा - देव! राजा हजार आँखवालें होतें हैं। क्या इस धन ने आपको ठग लिया है? जो कुल और शील का बिन विचार कर ही इसे अपनी कन्या दी है। क्या कोई सद्‌बुद्धि देनेवाला नही था? यदि आप मेरे द्वारा कही गई बातें, इस धन से नहीं करेंगे, तो मैं आपको सत्य हकीकत कहूँगा क्योंकि अन्याय करनेवाले इस असुर से मैं डरता हूँ। राजा ने भी यह बात स्वीकार की। तब धरण ने कहा - राजन्! यह धन हमारे नगर में चांडाल था। विरुद्ध आचरण करने से यह देश से निकाल दिया

गया था। इस देश में आया है। आपने बिन विचार कर ही, अपनी कन्या के साथ विवाह कर दिया और इतनी राजसमृद्धि दिलाई। इस धन ने मुझे खुद का चरित्र नही कहने के लिए बहुत डर दिखाया है। आप उससे मेरी रक्षा करे और छुडाये जिससे मैं किसी तीर्थ में जाकर अपनी आत्म-शुद्धि करुँगा। राजा भी उसकी बातें सत्य मानते हुए कहने लगा - भद्र! मुझे लूँटकर वह धोखेबाज आराम से निद्रा ले रहा है। तुम किसी दूसरे से यह बात मत करना। मैं शीघ्र ही इस विषय में निर्णय लेता हूँ। पश्चात् धरण, राजा को नमस्कारकर, वहाँ से चला गया। राजा ने सुभटों को बुलाकर आदेश दिया - सुभटों! तुम प्रातः गुप्तरीति से इस धन को विष्ठाघर में मार देना। राजसेवक भी आदेश स्वीकारकर, प्रातः समय गुप्तरीति से विष्ठाघर में छिपे रहे।

भाग्य के योग से, सिरदर्द के कारण धन ने धरण को राजसभा में जाने के लिए भेजा। धरण अपने शरीर की शुद्धि के लिए विष्ठाघर गया। पूर्व में नियुक्त उन सुभटों ने भी तुरंत ही प्रहार कर, धरण को मार दिया। पश्चात् पानी भरनेवाली दासी ने बुंबारव किये। यह वृत्तान्त जानकर, धन भी वहाँ आ गया और मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पडा। अंतिम संस्कार करने के बाद भी, धन देह की सार-संभाल नहीं कर रहा है, यह सुनकर राजा विचारने लगा - वास्तव में यह धन निर्दोष और सरल आत्मा है। पुण्य समुद्र ऐसे धन के भाग्य विलास को देखकर, पाप से प्रेरित इस दुर्बुद्धिधारक ने खुद के वध के लिए ही इस प्रकार असत्य बोला था। ऐसा विचारकर, धन के पास गया और भवस्थिति का स्वरूप बताया। पश्चात् धन ने भी सिद्धांत के वचनों से श्रीजिनधर्म का स्वरूप समझाया।

एकदिन नगरी में ज्ञानी भगवंत पधारे। राजा ने वंदनकर, धरण की दुष्टता का कारण पूछा। उन्होंनें कहा - राजन्! सुनो। इस जगत् में सत्यवादी, धर्मी मनुष्य तथा दानी ये सभी धन के समान सर्वप्रिय बनतें हैं। और इन सब से विपरीत स्वभाववालें धरण के समान द्वेषपात्र बनतें हैं। इसमें थोडा पूर्वभव का वैर भी कारण है। अब वह धरण मरकर इसी नगर में चांडाल की पुत्री बनी थी। यौवन अवस्था में आने के बाद उसका विवाह किया गया था। एक दिन वह पति से झगड़ती हुई उस पर आक्रोश करने लगी। पति के प्रहार करने से वह मर गयी और इसी नगर में वेश्या हुई। सांप के डंसने से आयुष्य पूर्णकर इसी नगर में रूप से दूषित ऐसी धोबी की पुत्री हुई है। वह अपने माता-पिता को अप्रिय लगती है और अब कष्टपूर्वक समय बीता रही है। धरण की यह दशा सुनकर, धन संसार-सागर से अत्यंत विरक्त हुआ। और श्रमणत्व का स्वीकारकर, शीघ्र ही देवलोक गया। असत्यवादी, निर्दयी और क्रोधी ऐसा धरण भी जन्म-मरण रूपी तरंगों से भयंकर इस भवसमुद्र में भ्रमण करेगा।

इस प्रकार द्वितीय अणुव्रत के विषय में धन-धरण की कथा संपूर्ण हुई।

मेरी पत्नियों ने साधु के मुखकमल से निकलते हुए सत्य रूपी मकरंद बिंदुओं को पीकर, पुण्य रूपी वृक्ष का मूल और अद्‌भुत ऐसे द्वितीय व्रत को भी स्वीकार किया। तब मैं सोचने लगा कि - यह भी मेरे हित में ही है, क्योंकि क्रोधित होने पर भी ये मुझे झूठी कथाओं से नही ठगेगी। अब मैं इन मुनिराज पर तीन-तीन बार ही लकडी से प्रहार करुँगा। इस प्रकार सोचते हुए मैं वैसे ही मुख्य दरवाजे पर खड़ा रहा। उसके बाद मुनिराज इस प्रकार मधुर और प्रसिद्ध वचन कहने लगे कि मंगल की कामनावालें मनुष्य दूसरों की अदत्त अणुमात्र अथवा स्थूल परिमाणवाली वस्तु भी नहीं ग्रहण करते हैं। दूसरों के धन अपहरण करनेवालें प्राणी इहलोक और परलोक में भी किसी के विश्वासपात्र नहीं होतें हैं। तथा वध, बंधन, हाथ-पैर आदि शरीर अवयवों का छेदन, दरिद्रता आदि अत्यंत भयंकर दुःख प्राप्त करतें हैं। जो पर धन ग्रहण से विरत होतें हैं, वे सिद्धदत्त के समान सुखी होतें हैं ओर जो पर धन में आसक्त होतें हैं, वे कपिल के समान घोर दुःख भोगतें हैं। ये दोनों कौन हैं? ऐसा मेरी पत्नियों के द्वारा पूछे जाने पर उन मुनिराज ने इस प्रकार कहा -

विशाल नामक नगर में, मातृदत्त तथा वसुदत्त नामक दो मित्र व्यापारी निवास करतें थे। एकदिन वे दोनों, मुनि को वंदन करने के लिए नगर के उद्यान में गये। मुनिभगवंत की देशना सुनकर, मातृदत्त ने उनके समीप से अदत्त धन की विरति ग्रहण की। किंतु तृष्णा हृदयवाले वसुदत्त ने यह विरति ग्रहण नही की। दोनों भी सामान्य स्थितिवाले थे, किंतु मातृदत्त न्यायपूर्वक व्यापार करता था और वसुदत्त व्यापार में कूट तोल, कूट परिमाण आदि करता था। एकदिन वे दोनों व्यापार करने की इच्छा से अल्प मूल्यवालें बर्तन आदि व्यापार की सामग्री लेकर, पांडुवर्द्धन नगर की ओर प्रयाण किया। वहाँ के वसुतेज राजा ने किसी निष्कपटी पुरुष को कोशाध्यक्ष बनाने की इच्छा से, मार्ग पर स्वर्ण मुद्राएँ आदि फेंक रखी थी। परीक्षा के लिए राजा ने अपने विश्वसनीय पुरुषों को वहाँ छिपे रहने का आदेश दिया था। उन दोनों व्यापारियों ने किसी मार्ग पर स्वर्णकुंडल देखे। अहो! यह लक्ष्मी स्वयं हमें वरने के लिए यहाँ आयी है इस प्रकार विचार करते हुए, वसुदत्त स्वर्णकुंडल ग्रहण करने के लिए समीप जाने लगा। वसुदत्त को जाते देखकर देव-यश नामक दो व्यापारियों की घटना याद कर मातृदत्त स्वर्णकुंडल लेने से मना करने लगा।

देव-यश की कथा इस प्रकार सुनायी - मातृदत्त-वसुदत्त के नगर में ही देव और यश नामक दो व्यापारी रहते थे। वे दोनों सदा साधारण व्यापार करते थे। देव ने पर वस्तु के अदत्तादान का नियम किया, पुनः यश को ऐसा कोई नियम

नही था। एकदिन वे दोनों व्यापार के लिए दूसरे नगर जाते हुए, मार्ग पर आभूषण पड़ा देखा। अदत्तादान नियमवाले देव ने उस आभूषण की ओर आँख उठाकर भी नही देखा। देव की लज्जा से, यश ने भी वह आभूषण नही लिया। किन्तु मन में अवधारणकर, यश दूसरे मार्ग से आया और ग्रहणकर अपने घर में छिपाये रखा। यश सोचने लगा - देव महात्मा है और दूसरों की लक्ष्मी पर निर्लोभी है। फिर भी मैं इस लक्ष्मी को समान रूप से विभाजित करुँगा। यश उस आभूषण के धन से नगर के बीच में रही हुई दुकानों से माल रखीदकर ले आया। आय-व्यय का हिसाब करते समय, देव ने उस माल को देखकर यश से कारण पूछा। यश झूठ बोलने लगा। बार-बार देव के आग्रह करने पर, उसने सत्य हकीकत कही। तब देव ने उस माल को अलग किया। यश ने भी वह माल लेकर, अपने घर में रखा। किन्तु उसी रात, चोरों ने उसका सब माल लूंट लिया। देव ने कहा - मित्र! चोरीकर लाई हुई वस्तु स्थिर नही रहती है। उससे तुम अदत्तादान (चोरी) का नियम ले लो। यश ने भी यह बात स्वीकार की। दूसरें ही दिन, देशांतर से आये कुछ व्यापारियों ने उनका सब माल खरीद लिया। उससे उन दोनों को दुगुणा लाभ हुआ। उस दिन से लेकर पर धन ग्रहण (अदत्तादान) से विरत, न्यायमार्ग से व्यापार करने में रत, वे दोनों व्यापारी लोक में देवयश नाम से प्रसिद्ध हुए और निर्मल यश तथा लक्ष्मी का उपार्जन करने लगे।

इस कारण से चतुर पुरुष न्यायमार्ग से ही धनार्जन करतें हैं। मित्र वसुदत्त! भविष्य में कटु परिणाम देनेवाले ऐसे परधन की इच्छा से क्या प्रयोजन है? मातृदत्त की बातें नही सुनने के समान, वसुदत्त उस स्वर्णकुंडल के समीप गया और ग्रहणकर जाने लगा। उतने में ही सुभटों ने उसे शीघ्र ही पकड़ लिया और उन दोनों की समस्त व्यापार की सामग्री भी स्वाधीन कर ली। मातृदत्त खेद करने लगा। तब उन सुभटों ने कहा - भद्र! शोक मत करो। हमारे साथ राजसभा में चलो। तेरे इस सत्त्व से राजा शीघ्र ही तुझ पर कृपा करेंगे। मातृदत्त ने कहा - यह सब ठीक है, किंतु बंदी बनाये इसे पहले छोड़ दो। हम गाँववासियों के अपराध को क्षमा कर दें। हम दोनों इस विषय में कुछ नही जानतें हैं। आखिर राजसभा में हम दोनों का क्या कार्य है? मातृदत्त के वचन से सुभटों ने वसुदत्त को छोड़ दिया। पश्चात् विनय और विभूति के साथ सुभटों ने मातृदत्त को राजसभा ले गये। सुभटों ने राजा से उस घटना का निवेदन किया। तब राजा ने मातृदत्त से पूछा - भद्र! तुम पराये धन पर अनासक्त कैसे हो? मातृदत्त ने भी अपने नियम के बारे में कहा। आनंदित बने राजा ने उसे कोशाध्यक्ष पद पर स्थापित किया और अधिक वेतन देने का निश्चय किया। मातृदत्त भी राजमान्य, बड़ी समृद्धि से युक्त लोक में संमाननीय बना। कालक्रम से आयुष्य पूर्णकर, पुण्य के प्रभाव से

चंद्राभा नगरी में, पुरंदर श्रेष्ठी की सती पत्नी की कुक्षि से पुत्र रूप में जन्म लिया। उसका नाम सिद्धदत्त रखा गया। वह लोक में चतुर और कलावान् के रूप में प्रसिद्ध हुआ।

इस ओर वह वसुदत्त वैसे ही कूट वजन आदि से व्यापार करता था। अनुक्रम से आयुष्य पूर्णकर भाग्य के योग से बंगाल में कपिल नामक ब्राह्मण का पुत्र हुआ। उसके दुर्भाग्य वशात् माता-पिता की मृत्यु हो गयी। पिता का धन भी धीरे-धीरे क्षय होता गया। उसके स्वजनो नें भी किसी दौर्भाग्य पिता की रूपादि से दूषित कन्या के साथ विवाह किया। कंगालता के कारण पत्नी के द्वारा अपमानित करने पर, धन कमाने के लिए वह देशांतर गया। अनीति आदि कार्यों से लक्ष्मी कमाने के लिए वह क्लेश करने लगा। तब किसी कार्पटिक ने कहा - यदि धन चाहते हो तो चन्द्राभापुरि जाकर आशाकरणी देवी की आराधना करो, जिससे शीघ्र ही इष्ट की प्राप्ति होगी। यह सुनकर कपिल भी वहाँ पहुँच गया और दर्भ का संथारा बिछाकर, पवित्र बना वह एकाग्र मन से देवी के आगे बैठ गया।

इस प्रकार ध्यान करते हुए कपिल के दो दिन बीत गये। तीसरे दिन की रात्रि के समय, देवी ने कहा - तुम ऐसे क्यों बैठे हो? खडे हो जाओ। उसने कहा - मैं आपके पास धन की याचना करता हूँ। देवी ने कहा - तुझे क्या दिया जा सकता है? पुनः ब्राह्मण ने कहा - देवी! यदि आप मेरी इच्छा पूर्ण नही करेगी तो मैं आपके ही इस भवन में प्राणों को छोड़ दूँगा। देवी उसकी दृढता देखकर कहने लगी - यह एक पुस्तक है। इसे बेचने से पाँच सो मुद्राएँ मिलेगी। कपिल ने भी वैसे ही किया। उस पुस्तक के विक्रय के लिए, वह घूमता हुआ सिद्धदत्त के समीप आया। उत्सुक कपिल ने उसे वह पुस्तक दिखायी। उसके द्वारा मूल्य कहे जाने पर, सिद्धदत्त कुतूहलता से पुस्तक खोलकर पढने लगा। उसने छंद के इस पाद को पहले देखा कि - **प्राप्तव्यमर्थं लभते मनुष्यः!** मनुष्य अपने भाग्याधीन धन ही प्राप्त कर सकता है। अपने हृदय में उस छंद का अर्थ विचार किया। पश्चात् पाँच सो मुद्राएँ देकर कपिल से वह पुस्तक ग्रहण कर ली। कपिल भी धन लेकर अपने नगर की ओर प्रयाण किया। किंतु बीच में ही भीलों ने उसे पकड लिया और चिर समय तक बंदी बनाये रखा। पश्चात् त्रास देकर छोड़ किया। कपिल भी दुःखपूर्वक अपने नगर में वापिस लौट आया।

इधर पाँच सो मुद्राओं का व्यय करने से, पिता सिद्धदत्त पर क्रोधित हुए और पुस्तक सहित उसे घर से बाहर निकाल दिया। सिद्ध भी रात के समय बाहर निकला। नगर के दरवाजे बंद हो जाने से, वह जीर्ण देवकुल में गया। वहाँ लेटकर, उस पद्य के बारे में ही अपने हृदय में विचार करने लगा। उसी नगरी में परस्पर प्रेमशील ऐसी राजा, मंत्री, श्रेष्ठी और पुरोहित की कन्याएँ रहती थी। वे एकदिन

परस्पर इस प्रकार संभाषण करने लगी - बाल्यावस्था से लेकर अब तक हम मिल-जुल कर रहें हैं और आपस में खुश हैं। अब यौवन अवस्था में एक-दूसरे के विरह से दुःखित होंगें। तब राजपुत्री ने कहा - सखी! मेरी बात सुनो। जबतक पिता हमारे विवाह के विषय में किसी से बातचीत न कर ले, उससे पहले ही हम सब मिलकर किसी वर को चुन लें जिससे कि हृदय में रहा हुआ यह वियोग रूपी अग्नि हमें न जलायें। उन तीनों कन्याओं के द्वारा यह बात स्वीकार करने पर, राजकन्या ने किसी सुंदर राजकुमार से पति बनने का आग्रह किया। जब कुमार मना करने लगा, तब वे चारों भी मरने के लिए तत्पर हुई। भय से कुमार ने उनकी बात मान ली। कहा भी गया है कि - स्त्रियाँ किस-किस को अपने वश नहीं कर सकती हैं? उन्होंनें आगे कहा - स्वामी! शुक्ल अष्टमी की रात में, नगर दरवाजे के समीप में रहे हुए जीर्ण देवकुल में, चतुर ऐसे आप हम चारों कन्याओं के साथ विवाह करेंगें। यह सुनकर कुमार का हृदय चिंता-सागर में डूब गया। शुक्ल अष्टमी आजाने पर, स्वामी द्रोह से मैं अपने कुल को कैसे कलंकित कर दूँ? ऐसा अपने हृदय में विचारकर, संध्या के समय निःस्पृह कुमार नगर से बाहर चला गया।

रात के समय, विवाह की साधन-सामग्री साथ में लेकर, पहले राजकन्या देवकुल में अकेली ही आयी। निद्राधीन ऐसे उस सिद्धपुत्र को देखकर, राजकन्या कहने लगी - स्वामी! आप निश्चिंत कैसे सो रहे है? बाद में उसे जगाकर गान्धर्वीविवाह से पाणिग्रहण किया। तब राजकन्या ने कहा - नाथ! आप मेरा मनोवांछित पूर्ण करे। वैसे ही शेष तीनों कन्याओं की भी आप प्रार्थना स्वीकार करेंगें। वाहन कहाँ है? जिससे हम शीघ्र ही यहाँ से दूसरी जगह जा सकते है। तब सिद्धपुत्र ने कहा - तुम्हारे सब मनोरथ पूर्ण हो जायेंगें। अब मैं थका हुआ हूँ और मुझे सोने दो। क्या यह पुरुष वह राजकुमार नहीं है? ऐसी शंका करती हुई उस राजकुमारी ने दीपक से वहाँ पर प्रकाश किया। तब उसने रूप से सुंदर और सौभाग्यशाली ऐसे उस सिद्धदत्त को देखा। समीप में ही रखी हुई किताब को खोलकर उसने छंद का पहला पाद पढा। यह सत्य ही लिखा है ऐसा विचारकर, अपनी शेष तीनों सखियों के विश्वास के लिए, काजल से उस छंद के द्वितीय पाद को इस प्रकार लिखा - **किं कारणं दैवमलंघनीयम्**। क्योंकि भाग्य का उल्लंघन करना अशक्य है। पश्चात् राजकन्या महल में लौट आयी।

दूसरे प्रहर में मंत्रीपुत्री आयी। उसने भी वैसे ही सिद्धदत्त के साथ विवाह किया। और वही रही हुई पुस्तक में इस प्रकार तृतीय पाद लिखा - **तस्मान्न शोचामि न विस्मयो म** - उसी कारण से, मुझे न शोक है और ऩही आश्चर्य। कृतार्थ बनी वह मंत्रीपुत्री वापिस घर लौट आयी। तीसरे प्रहर में श्रेष्ठीपुत्री

आयी। उसने भी उसी प्रकार से विवाह किया। पुस्तक देखकर आश्चर्यचकित हुई और इस प्रकार उस छंद का चौथा पाद लिखा - **यदस्मदीयं नहि तत् परेषाम्** - जो हमारा है वह दूसरों का नही है। वह भी चली गयी। पुनः चौथे प्रहर में पुरोहितपुत्री आयी। विवाहकर, पुस्तक में लिखे श्लोक को पढा। रहस्य जानकर तेजमतिवाली उसने भी इस प्रकार श्लोक लिखा -

व्यवसायं दधात्यन्यः फलमन्येन भुज्यते।
पर्याप्तं व्यवसायेन प्रमाणं विधिरेव नः।।

अन्य प्रयत्न करता है और अन्य ही फ़ल भोगता है। उससे प्रयत्न से पर्याप्त हुआ। हमारे लिए भाग्य ही प्रमाण है।

पश्चात् अपने अपराध की शंका से, उन चारों कन्याओं ने विनय से झुककर उस वृत्तांत के बारे में अपनी-अपनी माता से कह सुनाया। बाद में उन्होंनें अपने पति से कहा। प्रातः यह मुसाफिर नहीं मिलेगा ऐसा विचारकर, राजा ने शीघ्र ही सेवकों के द्वारा उसे बुलाया। पुरंदरश्रेष्ठी ने भी अपने पुत्र सिद्धदत्त को रात्रि के समय संपूर्ण नगर में खोजा। उसके समाचार मिलने के बाद प्रातः राजसभा में आया। सिद्धदत्त को देखकर सभी आनंदित हुए और उसकी पुण्य-प्रबलता से विस्मित हुए। पाणिग्रहण के पश्चात् राजा ने उसे पाँच सो गाँव दिये। सिद्धदत्त भी सुख-समृद्धि से युक्त जीवन बीताने लगा। ज्ञानी गुरु भगवंत के मुख से अपने पूर्वभव का श्रवणकर संसार से विरक्त हुआ। दीक्षा ग्रहणकर सम्यग् आराधना से निर्वाण प्राप्त किया। कपिल भी घर की चिंता से धर्म रूपी धन से भ्रष्ट हुआ। और निराशा पूर्वक जीवन व्यतीत करने लगा। आयुष्य पूर्णकर चारों गतियों में बार-बार भ्रमण करते हुए सैंकडों जन्म-मरण की परंपराएँ प्राप्त की। इस प्रकार तीसरे व्रत के पालन से सिद्धदत्त सुखी हुआ और नहीं पालन करने से कपिल अत्यंत दुःखी हुआ।

तृतीय अणुव्रत के विषय में सिद्धदत्त-कपिल की कथा संपूर्ण हुई।

मुनि भगवंत कहने लगे - अदत्तादान विरति ग्रहण से गुण तथा अविरति से अवगुण जानकर, प्रयत्नपूर्वक तीसरे अणुव्रत का पालन करना चाहिए। यह सुनकर मेरी पत्नियों ने कहा - भगवान्! हम कभी भी, किसी की भी अदत्त वस्तु ग्रहण नहीं करेंगें। आज के बाद घर में रही अणुमात्र छोटी वस्तु या बडी वस्तु भी हम पति से छिपाकर भी नहीं लेगें। उनकी बातें सुनकर मैं सोचने लगा - यह बात भी मेरे ही हित में है। मैं शांत बना और निश्चय किया कि साधु को दो-दो बार ही लकडी से प्रहार करुँगा। मैं निश्चल वही खड़ा था कि उतने में ही मुनिभगवंत सर्वोत्तम ऐसे चौथे अणुव्रत के विषय में इस प्रकार कहने लगे - प्रायःकर सद्शीलधारी स्त्रियों पर विष, सर्प, अग्नि और शत्रुगण प्रभावशाली नही होतें हैं

और देवतागण भी वश होतें हैं। उससे विपरीत शीलरहित प्राणियों को इहलोक में भी कान, होंठ, नाक आदि अवयवों का छेदन, धन-बंधु आदि का वियोग तथा अपयश भी होता है। सत्शील के पालन के, शीलसुंदरी ने इहलोक में भी सुख प्राप्त किया था और नहीं पालन करने से चार कुशील और विलासी पुरुष संसार-अटवी में गिर पडे। उनकी कथा इस प्रकार है -

विदेह के इसी विजय में, विजयवर्द्धन नगर में वसुपाल श्रेष्ठी निवास करता था। उसकी वसुमाला पत्नी थी। उन दोनों को रूप, लावण्य, शील आदि गुण रूपी अलंकारों से विभूषित तथा अरिहंत की परम उपासिका सुंदरी नामक कन्या थी। यौवन अवस्था प्राप्त करने पर, बहुत से तरुण पुरुषों ने विवाह के लिए उसके पिता से याचना की। किंतु सुंदरी के पिता ने उसी नगर के निवासी सुभद्र नामक श्रावक से उसका विवाह किया। एकदिन दो व्यापारी के पुत्र तथा दो भट्ट (पंडित/चारण) के पुत्र, ऐसे इन चारों ने सुंदरी के रूप माहात्म्य के बारे में सुना। वे चारों भी उसी पर दत्तचित्तवाले बनें और उसके संग की इच्छा से कला, क्रीडा के वश विविध उपाय करने लगे। वे अद्भुत श्रृंगारकर उसके मार्ग पर खडे हो जाते, विचित्र अन्योक्ति कहते और सुंदर गीत-गान करते थे। इस प्रकार विविध चेष्टाओं से, उनका आशय जानते हुए भी शील को लीलामात्र से धारण करनेवाली सुंदरी ने उनको आँखमात्र से भी नही देखा। अपने श्रम को विफल जाते देखकर, किसी तापसी को धन से वशकर सुंदरी के घर भेजा। वह तापसी सुंदरी के घर में बहुत बार आने-जाने लगी, फिर भी सम्यग्दृष्टि सुंदरी ने दृष्टि से भी ध्यान नही दिया।

एकदिन उस निर्लज्ज तापसी ने सुंदरी से कहा - सखी! तुम खुद चतुर हो, फिर भी मेरा वचन सुनो। जिनेश्वरों ने सर्वप्राणियों पर दया करना ही धर्म कहा है। इसलिए सुंदरी! तुम भी प्रयत्नपूर्वक उन बिचारों पर दया करो। यह सुनकर सुंदरी ने कहा - सखी! यह भयंकर महापाप है क्योंकि व्रत स्वीकार कर, जो दूसरों को लज्जा रहित बनकर पापबुद्धि देतें हैं, वे खुद के तथा दूसरे की आत्मा को भयंकर दुर्गति में डालतें हैं। सुंदरी के दृढ निश्चय को जानकर, वह तापसी उन चारों से कहने लगी - यदि तुम जीवित रहना चाहते हो तो उसका आग्रह छोड दो। कदाग्रह रूपी ग्रह से ग्रसित वे चारों भी उसकी बातों को नहीं स्वीकारतें हुए किसी मंत्रवेदी के पास गये। खराब बुद्धि के निधि समान वह मंत्रसिद्ध, कृष्णचतुर्दशी की रात में उनको श्मशान ले गया। वहाँ पर मंडल का आलेखनकर, एकाग्र मन से विधिवत् मंत्रदेवता का आराधन करने लगा। चतुर्दशी होने से सुदरी ने भी पौषध ग्रहण किया और रात्रि की विधि संपूर्णकर सो गयी थी। मंत्र के अचिंत्य प्रभाव से, मंत्रसिद्ध ने संथारा पर सोई हुई उस सुंदरी को

श्मशान में लाया। महापुण्यशाली सुंदरी के तेज को सहन करने में असमर्थ मंत्रदेवता - अब मुझे इस पापकर्म में क्यों जोड़ा है? इस प्रकार बार-बार मंत्रसिद्ध से कहने लगा। क्रोध से आँखें ड़रावनी कर, वह मंत्रदेवता अदृश्य हो गया। सुंदरी भी जाग गयी और दीपक के प्रकाश से वन में चारों और देखने लगी। हा! यह क्या है? इस प्रकार व्याकुल बनी और नमस्कार महामंत्र का स्मरण करने लगी।

तब चतुर मंत्रसिद्ध आनंद प्राप्तकर कहने लगा - मैं विद्या से तुम्हारी प्रिया को यहाँ लाया हूँ। तुम्हें जो इष्ट हो वह करो। वे चारों भी परस्पर कहने लगे कि जो पहले इस प्रिया का स्पर्श करेगा, वही प्रथम इसका संग करेगा। ऐसा संकेत कर उन्होंनें यह निश्चय किया। काम से प्रेरित वे चारों भी सुंदरी की ओर दौडे। सुंदरी की शील महिमा जानकर, वनदेवता ने उन चारों को स्तंभित कर दिया। काष्ट प्रायः उन्हें देखकर मंत्रसिद्ध भयभीत हुआ और सुंदरी के पैरों में गिरकर विनयपूर्वक इस प्रकार विज्ञप्ति करने लगा - महासति! मैं तुम्हारे इस अचिंत्य माहात्म्य से अनजान था। जो मैंने अब ऐसी आचरणा की है, वह भविष्य में कभी भी नही करुँगा। मेरे पाप को क्षमा करो और मुझे अभयदान दो। सुंदरी मौन ही खडी थी और इतने में ही प्रातः समय भी हो चुका था।

नगर लोगों के साथ शूर राजा भी वहाँ आगया था। काष्टमयी पुतली के समान निश्चल खडे उन विलासी पुरुषों से राजा ने कारण पूछा, किन्तु उन्होंनें कुछ भी प्रत्युत्तर नहीं दिया। पास में खडी सुंदरी को देखकर उससे भी राजा ने इस रहस्य का कारण पूछा। सुंदरी भी मैं नही जानती हूँ। इस प्रकार कहकर शर्म से झुक गयी। उतने में ही मंत्रसिद्ध ने राजा से अभयदान प्राप्तकर वास्तविक हकीकत कह सुनायी। पश्चात् राजा ने उन पापीओं को कारागृह में डाल दिया और मंत्रसिद्ध से कहने लगा - हा! पापी! इस प्रकार तो तुम मेरे अंतःपुर की स्त्रियों का भी अपहरण कर लोगे। दंड के योग्य होते हुए भी, तुझे अभयदान दिया था। इसलिए मैं तुझे छोड रहा हूँ। इस प्रकार उसकी अवमाननाकर, राजा ने उसे देश से निकाल दिया। पश्चात् नागरिक लोगों के साथ राजा भी सुंदरी के पैरों में गिरा। श्रेष्ठ आचारवान् वसुपालश्रेष्ठी भी वहाँ आगया था। राजा ने सुंदरी को हाथी पर बिठाकर नगरप्रवेश कराया। उस दिन से लेकर वह लोक में शीलसुंदरी के नाम से प्रसिद्ध हुई। जीवनपर्यंत निष्कलंक शील का परिपालनकर, शीलसुंदरी आयुष्य पूर्णकर देवलोक के लाखों अनुपम सुखों को प्राप्त किया। इस ओर उन चारों विलासी पुरुषों का सर्वस्व लूंट लिया गया और लंबे समय तक कारावास में क्लेश प्राप्त किया। अंत में आयुष्य पूर्णकर शर्कराप्रभा नरक पृथ्वी में गये।

इस प्रकार चतुर्थ व्रत के विषय में शीलसुंदरी की कथा संपूर्ण हुई।

शीलव्रत के पालन से गुण तथा नहीं पालन करने से दोषों का सम्यग् विचारकर, मुनिभगवंत के उपदेश से मेरी पत्नियों ने परपुरुष इच्छा त्याग के विषय में नियम ग्रहण किया। यह बात भी मेरे हित में ही हैं, ऐसा जानकर ईर्ष्या रूपी अग्नि के शांत हो जाने पर श्रेष्ठ समाधि प्राप्त हुई। इसलिए अब मैं एक-एक बार ही मुनिराज पर लकडी से प्रहार करुँगा, ऐसा विचारकर वहीं पर खडा था। उतने में ही मुनिभगवंत परिग्रह परिमाण नियम के विषय में इस प्रकार कहने लगे - जो धीरपुरुष परिग्रह का परिमाण करते हैं, उन पुण्यात्माओं का भव-समुद्र परिमित हो जाता है। धन, धान्य आदि के रूप में, परिग्रह नव प्रकार का है। जितना अल्प परिग्रह उतनी अल्प चिंता और जितना अधिक परिग्रह, चिंता उतनी अधिक होती है। लोभ के भार से पराजित चित्तवाले भव-समुद्र में डूब जाते है और संतोष रूपी अमृत से सिंचे गये प्राणी, दुःख रूपी अग्नि से दूर हो जातें हैं। परिग्रह से अनिवृत्त प्राणी शीत, उष्ण, पवन, भूख, प्यास, पीडा आदि से संभवित क्लेश और परिश्रम को सहन करते हैं। इच्छा का परिमाण करनेवाला प्राणी, गुणाकर के समान समृद्धि आदि सुख प्राप्त करतें हैं और नही करने से गुणधर व्यापारी के समान दुःख प्राप्त करतें हैं। उनकी कथा इस प्रकार है -

जयस्थल नामक गाँव में विष्ट, सुविष्ट नामक दो भाई व्यापार करते हुए आपस में स्नेहपूर्वक निवास कर रहे थे। बडाभाई विष्ट, लोगों में अनिष्ट था तथा व्यवहार से बेपरवाह था। वह अपने स्वजनों तथा दुःखित अतिथियों का सत्कार आदि नही करता था। दिन-रात धन कमाने के लिए क्लेश सहन करता था। भिक्षुक भी उसकी निंदा करते और वह अतिदुःखपूर्वक समय बीताने लगा। पुनः सुविष्ट औचित्यवृत्तिवाला और सर्वत्र बुद्धिमान् था। वह कल्पवृक्ष के समान अपने स्वजन तथा भिक्षुकों का वांछित पूर्ण करता था। एकदिन सुविष्ट ने घर पर पधारे क्षमावंत मुनिभगवंत को बहुमानपूर्वक सुंदर अशन-पान वहोराये। तब उसने युगलिक (भोगभूमि) संबंधित मनुष्य आयु बांधा। मुनि को वहोराते समय वहाँ पर खडा विष्ट थोडा हंसकर अपने मन में सोचने लगा - अहो! व्यापार करने में असमर्थ ये पाखंडी मुनि प्रतिदिन दूसरों के घरों को लूंटतें है। व्यर्थ ही उनको दान देने से क्या लाभ है? इस प्रकार सोचकर विष्ट ने दानांतराय तथा नीचगोत्र बांधा।

एकदिन विष्ट ने खनिजकारों को देखकर आने का कारण पूछा। तब उन्होंने कहा इस पर्वत के मध्यभाग में बडीनिधि है, किंतु उसे ग्रहण के लिए हमारे पास पर्याप्त सामग्री नही है। विष्ट ने कहा - खनन के योग्य शेष सामग्री मैं आपको दिलाऊँगा। उन्होंने कहा - यदि ऐसा है तो हम आपको निधि का यथोचित भाग देंगें। ऐसा निर्णयकर, शुभ दिन में मन से व्याकुलता रहित विष्ट ने धन के

व्यय से बलि, पूजा आदि का विधान सामग्री के द्वारा संपूर्ण की। पश्चात् खनिजकारों के साथ पर्वत के मध्यभाग पर चढ़ा। उन्होंनें विष्ट को पलाशवृक्ष का मूल दिखाया। विष्ट भी उस प्रदेश के समीप गया। कहा भी गया है कि - धन बिना क्षीर रहित वृक्षों के अंकुर नहीं निकलतें है। और निश्चय ही बिल्व और पलाश वृक्ष के नीचे अल्प अथवा बहुत धन होता है। वह देखकर सरलबुद्धिवालें विष्ट ने उनसे स्पष्ट कह दिया कि निधि मिल चुकी है, किंतु क्या यहाँ स्वर्ण, मणि आदि की प्राप्ति होगी? तब उन्होंनें कहा - यदि वृक्ष के पाद से लालरस निकल रहा हो तो निश्चय से मणि प्राप्त होगी, पीला रस निकलने से पीला स्वर्ण तथा सफेद रस से सफेद स्वर्ण की प्राप्ति होगी। वृक्ष के पाद का छेदन करने पर, लाल रस निकला। पश्चात् पूजा आदि का विधानकर, संतुष्ट हुए उन खनिजकारों ने वह निधि बाहर निकाली। अपने इष्ट कार्य को पूर्ण करनेवाले उस विष्ट से कहा - इस समय हम इस निधि को ले जा रहें हैं। रात के समय इसे तेरे घर पर वापिस ले आयेंगें। उस कारण से लोभी हृदयवाला तथा सरल बुद्धिवाला विष्ट भी अपने नगर लौट आया। वे खनिजकार भी रत्नों को ग्रहणकर, शीघ्र ही वहाँ से पलायन कर लिया। विष्ट वापिस वहाँ आया, किंतु उन्हें नहीं देखकर दुःखित हुआ और मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पडा। राजा भी यह बात जानकर, सेवकों के द्वारा उसे राजसभा में बुलाया। बाद में सर्वस्व का अपहरणकर, उसे देश से निकाल दिया। इस घटना से विष्ट भी उन्मादी बन गया और थोडे समय बाद मर गया। मरकर वह मुनि गोचरी की निंदा के कारण कुत्ता हुआ। जब वह कुत्ता रसोईघर में प्रवेश करने लगा, तब किसी रसोईये ने उसे मार दिया। आयुष्य पूर्णकर वह दरिद्र चांडाल हुआ और मरकर रत्नप्रभा नरक में गया।

इस ओर न्यायनिष्ठ सुविष्ट तीनों वर्गों का पालन करते हुए आयुष्य पूर्णकर वह नरोत्तम उत्तमकुरु में युगलिक बना। देव ऋद्धि के समान, वहाँ पर सुखों को भोगकर स्वर्ग गया। वहाँ से च्यवकर इस विजय के जयस्थल नामक नगर में पभदेव व्यापारी की पत्नी देवकी की कुक्षि से पुत्र रूप में जन्म लिया। संपूर्ण गुणों की खाण सदृश उस बालक का गुणाकार नाम रखा। विष्ट का जीव भी नरक से निकलकर धनंजय व्यापारी की पत्नी जया की कुक्षि से पुत्र के रूप में जन्म लिया। उसका गुणधर नाम रखा। पूर्वभव के प्रेम रूपी पानी से सिंचित गुणाकर-गुणधर की प्रीति रूपी लता परस्पर बढती गई। यौवन अवस्था प्राप्तकर, वे दोनों धनार्जन में तत्पर हुए। एकदिन उस नगर के उद्यान में धर्मदेव नामक मुनिभगवंत पधारे। तब वे दोनों उनके समीप जाकर धनार्जन का उपाय पूछा। मुनिभगवंत ने भी कहा - धर्म अकेला ही धर्नाजन का कारण होता है। पुष्कल पुण्यवाला पुरुष यदि पर्वत, गुफाओं के अंदर चला जाएँ तो भी हाथ में दीपकलिका

पकडकर लक्ष्मी उसका अनुसरण करती है। पुण्य नही करनेवाले को सुख नही है, तप से तपे बिना इष्ट की सिद्धि नहीं होती है। असदाचारी की महिमा नही है और मूढ हृदयवाले को मोक्ष नही है। लोभ के वशीभूत मनुष्य धन होने पर भी संतोष प्राप्त नहीं कर सकता है और धनवान् पुरुषों के पैरों को सिर पर रखकर आनंदपूर्वक सोता है। अपने से ऊँचे-ऊँचे को देखते हुए इंद्र भी रंक बन जाता है। और संतोष रूपी अमृत से सिंचित आत्मा रंक होते हुए भी धनवान् बन जाता है। सर्वथा धान्य, धन आदि छोडने में असमर्थ पुण्यवंतो के द्वारा इच्छा का परिमाण करना चाहिए।

इस प्रकार मुनिभगवंत की वाणी सुनकर, गुणाकर ने शुद्ध सम्यक्त्व सहित इच्छा परिमाण का नियम ग्रहण किया। किंतु गुणधर उनकी वाणी पर श्रद्धा नही करता हुआ, नियम ग्रहण नही किया तथा गुणाकर के नियम का हृदय से अनुमोदन भी नही किया। अत्यंत लोभ के वशीभूत वह गुणधर सोचने लगा - जो मनुष्य अल्प धन से खुद को कृतार्थ मान लेता है, उसपर भाग्य क्रोधित होकर अधिक धन नही देता है। यह बात सत्य मालूम पडती है, अन्यथा अद्‌भुत भुजबलवाले इस गुणाकर के मन का मनोरथ यहाँ पर इतने शीघ्र ही संकुचित कैसे हो गया है? इस प्रकार गुणाकर सद्‌भावों से तथा गुणधर असद्‌भावों से मुनि को नमस्कारकर घर लौट आये। एकदिन गुणधर, गुणाकर से बिना पूछे अनगिनत बेचने का माल गाडे आदि वाहनों में भरकर विविध देशों में पर्यटन करने लगा। व्यापार के द्वारा बहुत धन कमाकर अपने नगर की ओर वापिस लौटने लगा। बीच में बडी अटवी आई। उतनें में ही वहाँ पर दावानल प्रकट हुआ। भयभीत बने सेवक लोग चारों दिशाओं में भाग गये और सब गाडे भस्मीभूत हो गये। भूख-प्यास की पीडा से दुःखित गुणधर कैसे भी कर वहाँ से भाग निकला। सात रात्रियों के बाद, वह किसी गाँव में पहुँचा। एक तापस ने उसे देखकर खुद के घर ले गया और उसके प्राण स्वस्थ किये।

पश्चात् तापस ने गुणधर का सारा वृत्तांत जान लिया। एकदिन तापस उसे किसी पर्वत के मध्यभाग पर ले गया। किसी औषधि को दिखाते हुए कहने लगा - सौम्य! इस औषधि को अब ध्यान से देख लो। इसे रात्रि के समय तुझे ग्रहण करनी है। तापस आगे कहने लगा - रात के समय तेजस्वी दीपशिखा के समान चारों ओर प्रकाश करती इस महा-औषधि को देखकर, बाये हाथ से पकडना और दृढ मुट्ठि से इसके ऊपर-नीचे भाग को काट देना। बाद में पीछे की ओर नहीं देखते हुए सीधे चले आना। यह कार्य संपूर्ण करने पर, मैं तुझे धनवान् बना दूँगा। तापस के वचन को स्वीकारकर, गुणधर ने विधिवत् औषधि ग्रहण की। वह शीघ्रता पूर्वक वापिस लौटने लगा। उतने में ही पर्वत के शिखर से पत्थर के गिर

जाने से खटकार शब्द सुनाई दिया और वह अचानक ही पीछे मुडकर देखने लगा। इसीबीच हाथ में से औषधि नष्ट हो गयी। गुणधर ने तापस के सामने सत्य हकीकत निवेदन की। तब तापस ने कहा - भद्र! तेरे पास सत्त्व है, किन्तु पुण्य का संचय नही है। इसलिए तुम अपने स्थान पर वापिस लौट जाओ और संतोष धारण करो।

उसकी वाणी का अवधारणकर, गुणधर किसी दूसरे तापस से मिला। तब उसने कहा - वत्स! कहीं पर भी लालदूधवाले स्नुहिवृक्ष (थोर) को देखो। यदि वह मिल जायें तो मैं शीघ्र ही तेरी दरिद्रता मिटा दूँगा। खोज करते हुए गुणधर ने भी तथा प्रकार के स्नुहिवृक्ष को देखा। तापस ने अग्नि से उस वृक्ष को जला दिया। पश्चात् जलती हुई अग्नि में बलपूर्वक गुणधर को फेंक दिया। हलकापण के कारण, गुणधर अग्नि से बाहर निकल आया और तापस को अग्नि में फेंकने के लिए तत्पर हुआ। इस तरह उन दोनों के बीच लडाई शुरु हुई। उसी समय राजकुमार भी वहाँ आगया। गुणधर से सर्व वृत्तांत जानकर, कुतूहल वश कुमार ने उस तापस को अग्नि में फेंक दिया। तापस उसमें जलकर स्वर्णपुरुष बना। राजपुत्र ने उस स्वर्णपुरुष को ग्रहण किया और थोडा-बहुत स्वर्ण गुणधर को भी देकर उसे भेज दिया। गुणधर अपने नगर की ओर प्रयाण करने लगा। मार्ग पर इसे कोई मंत्रसिद्ध महापुरुष मिला। वे दोनों परस्पर मनोहर चर्चा करते हुए किसी स्थान पर रुक गये। वहाँ पर उन दोनों ने मंत्र प्रयोग से लाये गये मोदक आदि खाये। पश्चात् गुणधर ने सिद्ध से पूछा - आपको ऐसी शक्ति कहाँ से प्राप्त हुई है? मंत्रसिद्ध ने कहा - मुझे किसी कापालिक ने वेतालमंत्र दिया था। उस मंत्र के प्रभाव से, प्राणिओं को संपूर्ण लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। गुणधर ने उससे वह मंत्र ग्रहण कर लिया। आगे बढते हुए वह अपने मामा के घर पहुँचा और सुखपूर्वक रहने लगा। एकदिन वह इच्छित कृष्णरात्रि के समय, मंत्र को सिद्ध करने के लिए श्मशान गया। आहुति कर जाप करने लगा। भूत-प्रेत आदि के द्वारा भयभीत करने पर, वह क्षोभित हो गया और मंत्रपद भूल गया। तब काल के समान वेताल क्रोधित हुआ और दंडे से प्रहारकर, पटक दिया। गुणधर मूर्च्छित होकर गिर पडा। मामा ने उसे स्वस्थ कर शीघ्र ही जयस्थल नगर पहुँचा दिया। वहाँ पर लोग - यह अभाग्यशेखर है, इस प्रकार उसका उपहास करने लगे। लज्जा से गुणधर ने खुद को फंसा लगाकर मर गया।

इस प्रकार परिग्रह परिमाण से अविरत यह गुणधर, अत्यंत लोभ के कारण व्याकुल होते हुए विविध देश के मंडलों में भ्रमण किया, किंतु पाप हृदयवाले उसने धन का लेश भी प्राप्त नही किया। पुनः प्रकाशमान गुण समूहवाला यह गुणाकर न्याय मार्ग से धन का उपार्जन करते हुए पृथ्वी पर अत्यंत प्रसिद्ध

हुआ। तथाविध गुणधर के उस वृत्तांत को सुनकर, गुणाकर वैराग्य प्राप्तकर विशेष से परिग्रह परिमाण अणुव्रत का पालन करने लगा। अंत में आयुष्य पूर्णकर स्वर्ग में गया। अधम ऐसा गुणधर नरक आदि दुर्गतियों में लाखों दुःखों का स्थान बना।

इस प्रकार पंचम अणुव्रत के विषय में गुणाकर-गुणधर की कथा संपूर्ण हुई।

परिग्रह की विरति से गुण तथा अविरति से दोषों के बारे में अच्छी प्रकार से सुनकर मेरी पत्नियों ने इच्छा परिमाण का नियम ग्रहण किया। और मैं भी हा! व्यर्थ ही इन महाव्रतधारी मुनि के बारे में विपरीत विचार किया, इस प्रकार पश्चात्ताप करते हुए मुनि के पैरों में गिरा। खुद के पाप आशय को उनके सामने निवेदनकर क्षमा माँगी और उन मुनिपुंगव से विज्ञप्ति की - भगवन्! यदि हास्य वचन से विष्ट ने भयंकर दुःख प्राप्त किये थे, तब द्वेष से दूषित मेरी क्या स्थिति होगी? शांतिपूर्वक मुनि ने कहा - अहो! मन से भी महामुनियों पर द्वेष का चिंतन करना महापाप है। चारित्र बिना चतुर पुरुष भी इस पाप का छेदन करने में समर्थ नही हो सकतें हैं। क्योंकि अंधकार नष्ट करने में सूर्य की किरणें ही समर्थ है। संसार की असारता के बारे में सम्यग् प्रकार से विचार करो और अपने मन में कटु विपाकवालें काम-भोगों का चिंतन करो। पश्चात् अशाश्वत और असार ऐसे संसार के सुख को छोडकर शाश्वत और एकांत सुख का कारण ऐसे संयम का आश्रय लो।

इस प्रकार अमृत के समान मधुरता में प्रधान ऐसी मुनिराज की वाणी सुनकर, क्षणमात्र में ही मोह रूपी विष नष्ट हो गया और ज्ञाननेत्र जाग गयी। पश्चात् मुनिराज ने मनोहर वाणी से मेरी पत्नियों को प्रतिबोधित किया। मैंने पत्नियों के साथ धर्मदेव गुरु के पास दीक्षा ग्रहण की। उन गुरु के पादकमल समीप में, मैं सतत तपस्या करने लगा। कालक्रम से उन्होंनें मुझे यह गुणसंपदा प्राप्त करवायी है। ज्ञान महिमा से अद्भुत उन गुरु को नमस्कार हो, जिन्होंने पाषण की उपमावाले मुझे भी लोक में वंदनीय बनाया है। इस प्रकार सूरिभगवंत के अद्भूत चरित्र को सुनकर सिंहसेन राजा हृदय में आश्चर्यचकित हुआ। ऐसे मुनिराज के दर्शन होने से वह खुद को पुण्यात्माओं में श्रेष्ठ मानने लगा। पश्चात् विविध वचनों से मुनिपुंगव की स्तुति करने लगा। पुत्र को राज्य सौंपकर, भाव रूपी पानी से मनोमल दूर हो जाने से निष्कलंक बना राजा, तृण के समान संपूर्ण राजलक्ष्मी को छोडकर शुभ दिन में मोक्षसुख का मूल ऐसे निर्मल चारित्ररत्न को ग्रहण किया।

पूर्णचंद्र राजा भी सम्यक्त्व, अणुव्रत की प्राप्ति से आनंदित हुआ। फैलते

हुए गुण से तेजस्वी तथा सुप्रसिद्ध पूर्णचंद्र राजा भी पिता के समान प्रजा की रक्षा करता था। वह शत्रु समूह को झुकाता, न्याय मार्ग का अनुसरण करते हुए दुष्टों का दमन करता, दीन समूह का पालन करता तथा बंधुवर्ग पर उपकार करता था। पश्चात् रानी पुष्पसुंदरी देवी ने भी सम्यक्त्व युक्त अणुव्रत ग्रहण किये। जिनवाणी रूपी अमृत रस के सिंचन से वह सतत भव रूपी तृष्णा को जीतने लगी। वे दोनों पाँचों प्रकार के विषय सुखों का अनुभव करते हुए काल बीताने लगे। कालक्रम से उन्हें विनय से उज्ज्वल तथा प्रख्यात वीरोत्तर नामक पुत्र हुआ। यौवन अवस्था में आने पर, पूर्णचंद्रराजा ने उसे युवराज पद पर स्थापित किया। उसी दिन पिता के निर्वाण होने का समाचार प्राप्त हुआ। हर्ष और शोक धारण करते हुए, राजा इस प्रकार अपने मन में विचार करने लगा - मेरे पिता धन्य है, महानुभाव है, महामुनि तथा महासत्त्वशाली है, जिन्होंने सुख में लालन-पालन करने पर भी अत्यंत दुष्कर कार्य को साध लिया है। और मैं अल्प सत्त्वशाली, पाप में आसक्त, तप और क्रिया करने में असमर्थ, विषय रूपी भोग पदार्थ में आसक्त, वृद्धावस्था प्राप्त करने पर भी तत्त्वरहित हूँ। जो कि मैं जानता हूँ कि लक्ष्मी चंचल है, आयु नश्वर है, विषय-सुख दुःख का कारण है और स्वजनों का वियोग नियत है, तथापि मैं धर्म में प्रमाद कर रहा हूँ।

इस प्रकार चिंता कर रहे पति को देखकर, रानी ने कहा - देव! यहाँ पर शोक करने से क्या लाभ होगा? क्योंकि कार्य करने में उद्यत पुरुष, सत्त्वप्रधान सहायवाले होतें हैं। उससे राज्य चिंता छोड दे। जबतक गुणों के सिंधु सम सुरसुंदर सुगुरु यहाँ पर पदार्पण नहीं करते है, तब तक निःशंक होते हुए ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करे। तब राजा ने - सुंदर बात कही है इस प्रकार कहकर, राज्य पुत्र को सौंप दिया। श्रेष्ठ गुणवान् ऐसा पूर्णचंद्र राजा भी समस्त ममत्व को छोडकर, गुरुसंग की कांक्षावाला हुआ। सुंदर अंगवाली रानी भी उग्र तप से निर्मल, सुंदर धर्म का परिपालन करने लगी। अकस्मात् ही बीमार पडी और राजा की चिंता करने लगी। तब राजा भी उसकी पीडा से दुःखित हुआ और सोचने लगा कि वे गाँव, नगर और उद्यान धन्य है जहाँ पर मेरे गुरु निवास कर रहे है। अहो! भविष्य में क्या होगा? इसलिए जहाँ पर गुरु के पादकमल है, उनकी मैं उपासना करता हूँ। इस प्रकार राजा अपने हृदय में विचार करता हुआ, कषाय-कपट आदि से रहित बनकर आयु के क्षय हो जाने पर, समाधिपूर्वक काल कर आरण कल्प में देव बना। रानी भी आयुष्य पूर्णकर उसी कल्प में देव बनी। परस्पर प्रीत परायण वे दोनों एक ही सुंदर विमान में पूर्व पुण्य संचय के वश से अनेक सागरोपम पर्यंत अनुत्तर सुखों का अनुभव किया।

इस प्रकार पं.श्रीसत्यराजगणि द्वारा विरचित श्रीपृथ्वीचंद्रचरित्र में पूर्णचंद्र

श्रमणोपासक चरित्र का पाँचवाँ भव वर्णन संपूर्ण हुआ।

षष्ठम भव

पुण्यानुबंधिपुण्य के प्रभाव से उन दोनों ने देव-ऋद्धि का सुख भोगा। वहाँ से च्यवकर, वे दोनों जिस स्थल पर उत्पन्न होते हैं, उसके बारे में सुने।

विदेह देश की मिथिला नगरी में, भुजाओं के पराक्रम से सिंह सदृश ऐसा नरसिंह राजा राज्य करता था। उसने अपने यश के समूह से दिशा-वलयों को स्वच्छ बना दी थी। नरसिंह राजा की अद्‌भुत गुणशाली, विशाल पुण्यवाली, शिरीषफूल के समान अत्यंत सुकुमाल, चन्द्रकला सदृश निर्मल ऐसी गुणमाला पत्नी थी। संपूर्ण सुखमय तथा दूसरों के द्वारा अलंघनीय ऐसी राज्य समृद्धि और पत्नी को प्राप्तकर नरसिंह राजा सुखपूर्वक समय बीताने लगा। एकदिन किसी विश्वसनीय पुरुष ने राजा से इस प्रकार विज्ञप्ति की - देव! मैंने आज नागरिक स्त्रियों को नगर के कुएँ के समीप परस्पर बातें करते हुए सुना था। उनमें से एक स्त्री ने कहा - नरसिंह राजा सदा जयवंत रहे। तब दूसरी स्त्रीने कहा - सखी! यह राजा नरसिंह नही है, किंतु नरजंबुक (शियाल) है, जो पुत्रहीन होते हुए भी बेफिकर है। इस विचित्र वार्त्ता को सुनकर, राजा ने मंत्रियों से पुत्र उपाय के बारे में पूछा। उन्होंनें भी कहा - इस नगर में कोई देव नामक योगी है। वह योगी नगर में अत्यंत प्रसिद्ध है तथा लोगों का इष्ट देता है। आप उस योगी से पुत्र के विषय में पूछे।

राजा ने भी बहुमान सहित उस योगी को बुलाया और विनयपूर्वक पूछा - योगी! आपके पास कैसी सामर्थ्यता है? थोडा हंसकर योगी भी कहने लगा - राजन्! आप मुझे कार्य का आदेश दे। क्या इसी समय, मैं नागकन्या अथवा देवकन्या को वशकर लाऊँ? अथवा समुद्र सहित पृथ्वी को आपके पैरों तले ले आऊँ? अथवा हाथी, घोड़े के समूह तथा दूर पर रही किसी अन्य वस्तु को यहाँ पर ले आऊँ? अथवा आपका अन्य जो भी विषम कार्य हो, वह कहे। मैं शीघ्र ही उसे सिद्ध कर दूँगा। तब राजा ने कहा - योगी! यदि आप समर्थ हो तो, नागकन्या को इधर ले आए। ध्यान धारणकर, योगी ने तत्काल ही नागकन्या को राजा के समक्ष ले आया। नागकन्या योगी के सामने खड़ी होकर कहने लगी - प्रभु! आदेश दे। मैं क्या कर सकती हूँ? योगी ने कहा - राजा के वचन अनुसार करो ऐसा आदेश दिया। वह भी राजा के पास गयी और कहने लगी - प्रभु! आदेश दे। तब राजा ने पूछा - तुम कौन हो? और यहाँ क्यों आई हो? नागकन्या ने कहा - मैं नागराज की पत्नी हूँ और योगी के आदेश से यहाँ आई हूँ। यह सुनकर राजा आश्चर्यचकित हुआ और वापिस लौट जाने की आज्ञा दी। वह भी अदृश्य हो गयी।

अहो योगीन्द्र! आपका माहात्म्य अद्‌भुत है ऐसा कहकर राजा ने अपना

कार्य निवेदन किया। योगी ने कहा - कृष्ण चतुर्दशी की रात्रि में, आप अकेले ही मेरे सहायक के रूप में आये। मैं ज्वालिनी महाविद्या की आराधना कर पुत्ररत्न तथा अन्य सर्व इष्ट भी दिलाऊँगा। योगी के जाने के बाद मंत्रियों ने कहा - राजन्! उपाय भव्य है, फिर भी इसका लेशमात्र भी विश्वास नही करना चाहिए क्योंकि प्राणी का स्वभाव विचित्र होता है। मंत्रियों का वचन स्वीकारकर, निश्चित दिन की रात्रि में, राजा तलवार लेकर श्मशान गया। तब योगी भी वहाँ पर आ गया। भूमि की शुद्धिकर, योगी ने चिता की अग्नि दीपक से मंडल का आलेख किया। और राजा से कहा - यहाँ से दक्षिण दिशा में वटवृक्ष है। उसकी शाखा पर जो पुरुष लटक रहा है, उसे आप भयरहित बनकर ले आये। उस पुरुष के पूछने पर भी आप प्रत्युत्तर न दे। राजा वटवृक्ष पर चढ़ा और तलवार से उस पुरुष के फंदे को काट दिया। राजा उसे ग्रहण करने के लिए वृक्ष से नीचे उतरने लगा। उतने में ही राजा ने उसी शाखा पर उस पुरुष को पुनः लटकते देखा।

ऐसा दो-तीन बार हुआ। राजा ने पुनः शाखा पर लटक रहे उस शव के फंदे को छेदकर, शीघ्रतापूर्वक वृक्ष से नीचे उतरा और जमीन पर पडे शव को उठाकर वापिस लौटने लगा। उतने में ही वेताल उस शव में प्रवेशकर राजा से कहने लगा - मूढ! खुद के वीर स्वभाव को छोडकर, कुकर्म का आचरण कर रहे हो। तथा राक्षसों को बुलाने के लिए इस प्रकार रात्रि के समय भ्रमण कर रहे हो। यदि तू मुझे नही छोडेगा तो यह दुष्ट योगी तेरी भूतबलि दे देगा। राजा वेताल की बातें सुनकर भी क्षोभित नहीं हुआ। तब पुनः वेताल ने कहा - तेरा साहस सुंदर है और तेरा संकल्प भी मैंने जान लिया है। हे वत्स! मैं तुझ पर खुश हूँ। इसलिए मैं तुझे सत्य हकीकत बता रहा हूँ। तुझे पुत्र की इच्छा है किंतु यह दुष्ट योगी तेरे प्राणों की बलि देकर, मुझे वश करना चाहता है। इसलिए तुम क्लेश मत करो क्योंकि सात रात्रि के बाद तुझे पुत्र होगा। तुमने योगी की बात स्वीकार की थी। इसलिए वचन के परिपालन हेतु शव वहाँ पर ले जाओ। पश्चात् योगी के माँगने पर भी, उसके हाथ में तलवार मत सौंप देना, जिससे वह दुष्ट तुझे जीत नही सकेगा।

वेताल के द्वारा कही गयी बातें याद रखकर, राजा शव को योगी के समीप ले गया। योगी ने पानी से उस शव को स्नान कराकर, मंडल में रखा और कहने लगा - राजन्! इसे तलवार दो! तत्काल ही वेताल की बातें स्मरण कर कहा - भगवन्! सुभट किसी को भी खुद की तलवार नही देते है। इसलिए आप ही इसे खुद की तलवार दे। मैं आपका अंगरक्षक बनूँगा। योगी ने कहा - मंत्रसिद्धि के लिए इसके हाथ में हथियार धारण कराया जाता है। तब राजा ने कहा - प्रभु! मेरे होते हुए आप पर क्रोधित यम भी प्रभावशाली नही होगा। इसलिए आप अपना

कार्य शुरु करे। राजा की बातें सुनकर योगी क्रोधित होते हुए हथियार धारणकर खडा हुआ। तब राजा ने कहा - तुम व्रती हो इसलिए मैं तुझे नहीं मार रहा हूँ। यदि खुद की सुरक्षा चाहते हो तो मेरे नजरों के सामने से दूर हो जाओ। मेरे प्राणों की बलि देकर वेताल को वश करना चाहते हो? राजा के वचन सुनकर योगी अपने कार्य पर लज्जित हुआ और विचार करने लगा - मेरा आशय इसने कैसे जाना? यह कोई महासत्त्वशाली पुरुष दिखायी देता है। पश्चात् तलवार फेंककर पश्चात्ताप करते हुए, योगी ने अंजलि जोडकर राजा से कहा - महासत्त्वशाली! आपके वचनों से मेरा अज्ञान रूपी अंधकार अब नष्ट हो चुका है। मैंने इतने काल तक दुर्जन के संग से अधिक विडंबना प्राप्त की है। इसलिए आप मेरे पाप को क्षमा करे। आज से मैं परलोक के लिए हितकारी ऐसे धर्म के विषय में उद्यम करुँगा। प्रभु! आप मेरे धर्मगुरु है। मेरे पास शस्त्र के घाव को मिटानेवाला मणिरत्न है। आप उसे ग्रहण करे। राजा ने भी उसके उपरोध से मणिरत्न स्वीकार किया। इसीबीच प्रभात हो गया और वे दोनों भी अपने-अपने स्थान पर चले गये।

सात दिनों के बाद, देवी की कुक्षि में सूर्य स्वप्न से सूचित पूर्णचंद्र का जीव पुत्र के रूप में अवतीर्ण हुआ। देदीप्यमान निधि को धारण करनेवाली भूमि के समान, देवी ने गर्भ को धारण किया। सात महीने बीत जाने पर, देवी के हृदय में इस प्रकार स्पष्ट दोहद उत्पन्न हुआ कि - मैं हाथी पर बैठकर, समस्त मंत्रिमंडल के साथ नगर, गाँव, उद्यानों में विहार करुँ। राजा ने भी देवी का दोहद सुनकर, उसे सुंदर हाथी पर बिठाया और किसी उपवन में ले गया। वहाँ पर करुण स्वर से रो रही किसी स्त्री की आवाज सुनकर देवी ने कहा - स्वर लक्षण से मैं जान सकती हूँ कि यह कोई विद्याधर की स्त्री है। इसलिए नाथ! आप वहाँ जाकर उसके दुःख को दूर करे। राजा भी वहाँ गया और प्रहार से दुःखित किसी विद्याधर पुरुष को देखा। उसके समीप में ही उसकी विद्याधर पत्नी रो रही थी। राजा ने मणिरत्न के प्रक्षाल पानी से विद्याधर पुरुष को स्वस्थ बना दिया। विद्याधर भी मणिरत्न के प्रभाव से हृदय में आश्चर्यचकित हुआ। तब राजा ने पूछा - भद्र! तुझ पर यह भयंकर दुःख कैसे आगिरा? अथवा महापुरुषों के लिए विपदा भी संपदा के रूप में बन जाती है। इस जगत् में चंद्र की वृद्धि-हानि देखी जाती है न कि छोटे तारागण की। यहाँ पर कुछ रहस्य होना चाहिए। वह मैं आपके मुख से सुनने के लिए उत्सुक हूँ। विद्याधर पुरुष राजा के आगे इस प्रकार अपना वृत्तांत कहने लगा -

वैताढ्यपर्वत के रत्नधन नामक श्रेष्ठ नगर में जयंत राजा राज्य कर रहा है। मैं उसी राजा का जयवेग पुत्र हूँ। मैंने बहुत-सी विद्याएँ सिद्ध की हुई है। उसी पर्वत के कुंभनगर में धर राजा राज्य कर रहा है। धर राजा ने मेरी बडी बहन की

याचना की थी। नैमित्तिक से इसके अल्प आयु के बारे में जानकर, मेरे पिता ने बहन का विवाह धर राजा के साथ न करते हुए अचलपुर के श्रेष्ठ विद्याधर ऐसे अनंगवेग के साथ किया। इस घटना से धर क्रोधित हुआ। मेरे पिता के साथ युद्ध करते हुए मारा गया। धर राजा का किन्नर नामक पुत्र था। वह अपने पिता का वैर याद रखते हुए मेरे पीछे घूमने लगा। आज पत्नी सहित मैं इस उद्यान में आया था। तब उस किन्नर ने मुझ पर निर्दयपूर्वक प्रहार किए। राजन्! यही मेरी वास्तविक हकीकत है। पश्चात् राजा ने जयवेग विद्याधर को महल में पधारने का निमंत्रण देकर उसे साथ ले गया। राजा ने बहुमानपूर्वक उन दोनों का भोजन, वस्त्रों से सत्कार किया। राजा की आज्ञा लेकर विद्याधर भी अपने स्थान पर चला गया।

देवी का दोहद पूर्ण हो जाने से, राजा वापिस मिथिला नगरी लौट आया। संपूर्ण समय हो जाने पर, गुणमाला देवी ने विशेष तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया। राजा को पुत्र-जन्म की बधाई दी गयी। हर्ष से राजा ने भी उसे बहुत धन दिया। देवी के द्वारा स्वप्न में सूर्य देखने से तथा सेना सहित विचरण करने का दोहद उत्पन्न होने से, राजा ने पुत्र का सूरसेन नाम रखा। सुंदर रूपवाला वह बालक भी स्त्रियों के द्वारा लालन-पालन किया जाता हुआ धीरे-धीरे बढ़ने लगा। जयवेग विद्याधर तथा उसकी पत्नी सूरसेनकुमार के रूप को देखकर अत्यंत विस्मित तथा आनंदित हुए। विद्याधर की पत्नी ने गुणमाला से कहा - यदि नैमित्तिक की वाणी से मुझे पुत्री होगी, तो उसका विवाह तुम्हारे पुत्र के साथ करने की विज्ञप्ति है। देवी ने कहा - इस विषय में मैं क्या कहूँ? तुम स्वयं ही यथायोग्य करना। मेरी चिंता मत करना।

पुष्पसुंदरी देव भी स्वर्ग से च्यवकर जयवेग विद्याधर की रविकांता पत्नी की कुक्षि में, मानस सरोवर में हंसी के समान पुत्रीत्व के रूप में अवतीर्ण हुई। उसके प्रभाव से माता ने स्वप्न में मुक्तावली (मोतियों के हार) को देखा। स्वप्न के अनुसार उसका जन्म होने के बाद माता-पिता ने मुक्तावली नाम रखा। सूरसेनकुमार तथा मुक्तावली दोनों जब यौवन-अवस्था में आएँ, तब उनके माता-पिता ने आनंदपूर्वक विधिवत् उन दोनों का विवाह किया। सूरसेनकुमार सुखपूर्वक मुक्तावली के साथ समय व्यतीत करने लगा।

एकदिन आभूषणों से भूषित नरसिंह राजा दर्पण में अपने रूप को देखकर मन में इस प्रकार सोचने लगा - अहो! अंजन की कांति सदृश जो मेरे मस्तक पर केश थे, वे अब वृद्धावस्था के कारण मुञ्ज घास के समान दिखायी दे रहे हैं। जो स्वर्ण दर्पण के समान भरावदार, पूर्ण गाल थे, वे अब अग्नि से तपाये गये कुतप के समान दिखायी दे रहे है। जो मुख में अंतर रहित तथा अणिदार दाँत थे, वे अब बहुत अंतरवाले तथा युद्ध में खराब योद्धा के समान

अस्थिर हो गये हैं। प्रयत्नपूर्वक अच्छी प्रकार से लालन-पालन करने पर भी यह देह, संकट में कुमित्र के समान कृतघ्न सदृश ही दिखायी देता है। इस प्रकार अपने हृदय में विचार करते हुए, राजा को जाति-स्मरण ज्ञान हुआ। पूर्व भव के संयम का स्मरण कर, नरसिंह राजा प्रत्येकबुद्ध बने। पश्चात् मंत्रियों ने उनके पुत्र सूरसेन का राज्य पर अभिषेक किया। अपने शत्रुओं को वशकर, पितावत् प्रजा का संरक्षण करने लगा।

पूर्वदिशा जिस प्रकार से सूर्य को जन्म देती है, उसी प्रकार मुक्तावली रानी ने अपनी देह कांति से भूतल को प्रकाशित करनेवाले चंद्रसेन नामक पुत्र को जन्मदिया। क्रम से बालक बढने लगा। संपूर्ण सत्कलाओं को ग्रहण कर, यौवन अवस्था में आया और प्राचीन पुण्य से भोग भोगने लगा। एकदिन शरद्ऋतु के समय में, बंधुजीव मंत्री ने राजा से विज्ञप्ति की - प्रभु! दूर देशांतर से घोडे के व्यापारी आये हुए हैं। उनके पास जो जातिवंत घोडे हैं, उनकी परीक्षा कर खरीद ले। मंत्री की बातें सुनकर, घोडे की परीक्षा के लिए राजा वन में ले गया। वहाँ पर मूर्तिमंत धर्म के समान किसी मुनि को देखा। उनके पाद-कमलों में नमस्कार कर, राजा ने उन मुनिभगवंत की देशना सुनी। हृदय में आनंदित होते हुए, राजा अपने महल लौट आया। ब्रह्म मुहूर्त्त में उठकर, राजा उन मुनिभगवंत की मन में प्रशंसा करने लगा। उतने में ही आकाश में दुंदुभिनाद सुनी। मुनिभगवंत की केवलज्ञान उत्पत्ति का निश्चयकर, हर्षित राजा मुक्तावली के साथ उन पूज्यपाद मुनि के पास गया। इसीबीच कोई दिव्य पुरुष चिर समय तक मुनिभगवंत के सामने नृत्यकर, पश्चात् नमस्कार तथा स्तुतिकर उनके सामने बैठा। राजा ने पूछा - भगवन्! यह श्रेष्ठ पुरुष कौन है? और अत्यंत भक्ति करते हुए आनंदित क्यों हो रहा है? तब मुनि ने कहा - सम्यक्त्व गुण से प्राणियों को ऐसी गुरु-भक्ति होती है। इसका दूसरा कारण भी है, वह सुनो -

पभखंड नामक नगर में परस्पर प्रीति संपन्न सम्यग् तथा मिथ्यादृष्टि से युक्त ऐसे ईश्वर और धनेश्वर नामक दो व्यापारी रहते थे। दिवस में ही भोजन करते ईश्वर को देखकर मिथ्यादृष्टि से युक्त ऐसा धनेश्वर उससे कहने लगा - एक दिन में दो बार भोजन करना योग्य नही है। ईश्वर ने कहा - रात्रिभोजन दोष का कारण होता है। उससे मित्र! कदाग्रह छोडकर आत्महित करो। ईश्वर के बहुत बार कहने पर भी, उसने रात्रिभोजन नही छोड़ा। आयुष्य पूर्णकर धनेश्वर पाँच बार दुःख से संकुलित बगुला बना। उसके बाद दो-दो बार चामाचीडियाँ, उल्लू तथा शियाल हुआ। पश्चात् उज्जयिनी नगरी में देवगुप्त ब्राह्मण की नंदा पत्नी की कुक्षि में पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ। जन्म से ही वह बालक रोग समूह से पीडित था। इसलिए लोगों ने उसका 'रोग' नाम रखा और धीरे-धीरे बढने लगा। इधर संवेग के ऊँचे

रंग से रंगे श्रद्धालु ईश्वर ने धर्मेश्वर गुरु के पास संयम स्वीकार किया। पश्चात् वे ज्ञानी महात्मा विहार करते हुए अवंतीपुरी में पक्ष उपवास के पारणे के लिए देवगुप्त के घर गये। देवगुप्त ने अपने पुत्र के रोग-उपशम का उपाय पूछा।

तब वे मुनिभगवंत उचित प्रदेश में खडे रहकर उस ब्राह्मणोत्तम से कहा - जीवहिंसा, मृषावाद, चोरी, मैथुन और परिग्रह। इन महापापों के सेवन से मनुष्य रोग समूह से दुःखित होता है। परमेष्ठिमंत्र का स्मरण, सद्धर्म का आचरण तथा सम्यक्त्व का पालन करता हुआ मनुष्य शीघ्र ही नीरोगता प्राप्त करता है। इस प्रकार मुनिभगवंत की देशना सुनकर, अपने पुत्र सहित देवगुप्त ब्राह्मण अणुव्रतधारी श्रावक हुआ और धर्म के विषय में उद्यमशील बना। रोग से पीड़ित होने पर भी, 'रोग' ने संपूर्ण प्रतिक्रिया छोड़ दी और समभावपूर्वक वेदना सहन करता हुआ धर्म के विषय में दृढ़निश्चयवाला हुआ।

एकदिन इंद्र ने 'रोग' के दृढ़ धर्मव्रत के विषय में अपनी सभा में प्रशंसा की। इंद्र की बातों पर श्रद्धा नही करते हुए दो देव वैद्य का रूप धारणकर रोग के पास आये। उन्होंनें कहा - यदि तुम हमारे वचन अनुसार करोगे, तो हम तेरे जीवन के साधन ऐसे इस शरीर को रोग रहित कर देंगें। प्रातः शहद, संध्या के समय मदिरा तथा रात्रि में माखण सहित चावल का भोजन। पश्चात् विविध औषधों से जल, स्थल और खेचरों के मांस का भक्षण करना। ऐसे सात दिन पर्यंत भोजन करने से तेरे ये सर्व रोग क्षणमात्र में ही नष्ट हो जायेंगें। यह सुनकर रोग ने कहा - जो होनेवाला हो वह हो जाये किंतु प्राणों का नाश होने पर भी मैं धर्मध्वंस तथा व्रतभंग नहीं करुँगा। देवों ने उसे बहुत प्रकार से समझाया, किंतु रोग जरा-भी चलित नही हुआ। रोग के इस शुभ संकल्प को देखकर सभी आनंदित तथा विस्मित हुए। देव भी उसके सत्त्व को देखकर विस्मित हुए। पश्चात् देव उसे नीरोगीकर तथा स्तुतिकर अपने स्थान चले गये। उस दिन से वह लोगों में 'अरोग' नाम से प्रख्यात हुआ।

कालक्रम से आयुष्य पूर्णकर, यह अरोग सौधर्म में दिव्यविभूतिवाला श्रेष्ठ देव हुआ है। अपने पूर्वभव को जानकर, मुझे नमस्कार करने के लिए यहाँ पर आया है। मेरी केवलज्ञान की उत्पत्ति देखकर यह प्रमोद से नाचने लगा। इस प्रकार ईश्वरमुनि के मुख से उस देव का चरित्र सुनकर, कितने ही लोगों ने रात्रिभोजन का त्यागकर, श्रावक धर्म स्वीकारा तथा कितने ही लोगों ने संयम स्वीकार किया। सूरसेन राजा भी यह चरित्र सुनकर, वैराग्य प्राप्त किया और राज्य छोड़कर मुक्तावली के साथ संयम ग्रहण किया। चारित्र का सुंदर परिपालनकर, उन दोनों ने मास पर्यंत संलेखना की। आयुष्य पूर्णकर, वे दोनों ग्रैवेयक विमान में उत्तम देव बने।

इस प्रकार पं.श्रीसत्यराजगणि द्वारा विरचित श्रीपृथ्वीचंद्रचरित्र में नरसिंह-सूरसेन राजा का चरित्र वर्णन रूपी छट्ठा भव संपूर्ण हुआ।

सप्तम भव

इसी भरतक्षेत्र के गज्जण नामक नगर में सुरपति राजा राज्य करता था। उसकी विनयप्रणया नामक पत्नी थी। सुरपति राजा मिथ्यादृष्टि था तथा ब्राह्मणों पर विशेष भक्तिमान् था। यथा राजा तथा प्रजा के सदृश, प्रजा भी ब्राह्मणों का विशेष सत्कार-सम्मान करती थी। कुछ समय के पश्चात् विनयप्रणया देवी की कुक्षि में वह सूरसेन देव अवतीर्ण हुआ। जिस प्रकार रोहण भूमि रत्न को तथा पूर्व दिशा सूर्य को जन्म देती है, वैसे ही देवी ने शुभ दिन में, कांति से सूर्य सदृश ऐसे पुत्र को जन्म दिया। क्रोडों जनताओं के साथ, राजा ने पुत्र जन्म-महोत्सव मनाया। उस पुत्र का पभोत्तर नाम रखा। धीरे-धीरे बढ़ते हुए, वह पावन यौवन-अवस्था में आया। पभोत्तर ने शीघ्र ही संपूर्ण कलाओं का अभ्यास कर लिया।

इस ओर वैताढ्यपर्वत के सुभौमनगर में तारवेग राजा राज्य करता था। उसकी हेममाला पत्नी थी। उन दोनों के बहुत पुत्रियों के ऊपर, मुक्तावली देव ग्रैवेयक से च्यवकर पुत्र के रूप में उसकी कुक्षि में अवतीर्ण हुआ। समय होने पर, हेममाला ने महाकांतिवान् पुत्र को जन्म दिया। उसका हरिवेग नाम रखा। बाल वय को छोडकर, सभी कलाओं को ग्रहण करते हुए वह चतुर हरिवेग नारीजन के मन हरणकरनेवाले तारुण्य अवस्था में आया।

मथुरा नगरी में चंद्रध्वजराजा की चंद्रमति, सूरमति नामक दो सुंदर पत्नियाँ थी। उन दोनों को अनुक्रम से सुंदर रूप लावण्य समूह से विभूषित शशिलेखा, सूरलेखा नामक पुत्रियाँ थी। चंद्रध्वज राजा ने कन्या के अनुरुप वर की प्राप्ति के लिए स्वयंवर रचा। उसने सभी राजकुमारों को स्वयंवर में आने का आमंत्रण दिया। मर्यादित अनुयायीवर्ग से युक्त तथा देदीप्यमान वस्त्र, आभूषणों को धारणकर पभोत्तरकुमार ने भी मथुरा की ओर प्रयाण किया। कुमार मार्ग का उल्लंघन करते हुए, बीच में स्थित एक तापस आश्रम को देखा। तापस आश्रम के कुलपति को नमस्कारकर, उनके पाद समीप में बैठा। पश्चात् कुलपति ने एक सुंदर कन्या दिखाते हुए कुमार से कहा - वत्स! खुद के उचित इस कन्या को स्वीकार करो। कुमार ने पूछा - मुनि! ब्रह्मचर्य के धारक आपको पुत्री कैसे हो सकती है? कुलपति ने कहा - वत्स! स्वयं ही इसका परमार्थ सुनो -

उत्तरापथ में सुरभिपुर है। वहाँ पर वसंतराजा राज्य करता था और उसकी पुष्पमाला पत्नी थी। उन दोनों को पाँच पुत्रों के ऊपर गुणमाला पुत्री थी। इस कारण से गुणमाला अपने माता-पिता को पुत्र से भी अधिक प्रिय थी। उसके विरह की व्यथा से माता-पिता उसका विवाह नहीं कर रहे थे। एकदिन गुणमाला

के रूप से मोहित चंपा देश का राजा शुक वहाँ पर आया। मंत्री के द्वारा प्रेरणा करने पर, राजा ने गुणमाला का विवाह शुक से किया। पुत्री के वियोग से भयभीत राजा ने, शुक राजा को अपने नगर में ही रुकने की विज्ञप्ति की। गुणमाला के साथ रहते हुए तथा शत्रुराजाओं को झुकाते हुए, शुक राजा ने व्यतीत होते समय को जान न सका। समुद्र में खारापन तथा चंद्र में कलंक के समान, शुक राजा में शिकार का व्यसन था। वह इस दुष्ट दोष को छोडने में बिल्कुल असमर्थ था। इसलिए राजा ने उस शुक को समझाने के लिए सुमुख नामक चतुर भट्ट को नियुक्त किया।

एकदिन अवसर प्राप्तकर, सुमुख, शुक से इस प्रकार कहने लगा- मुख में घास (तृण) डालने से शत्रुओं को भी छोड़ दिया जाता है। हा! फिर आप तृण खाकर खुद का जीवन व्यतीत कर रहें इन पशु के समूह को क्यों नित्य मार रहे है? यह कौन-सी नीति है? कौन-सा शौर्य है? और यह किस प्रकार का क्षत्रिय-धर्म है? जिससे शस्त्र रहित तथा निरपराधी जंतूओं को मनुष्य इस प्रकार मार रहा है। प्राणिवध से पंगुता, कुष्टित्व, लूंलापण आदि फल की प्राप्ति होती है। आत्मसुख की आकांक्षा से मनुष्य को परपीड़ा छोड़ देनी चाहिए। इस प्रकार सुमुख के समझाने पर, शुक ने मन बिना, लज्जा से शिकार करना छोड़ दिया।

एकदिन पिता के द्वारा बुलाये जाने पर, शुक राजा अपने नगर की ओर प्रयाण करने लगा। गर्भिणी गुणमाला को साथ में लेकर प्रयाण करते हुए, वह हमारे इस तपोवन में आया। वनचर जीवों को देखकर, शुक शिकार करने के लिए अत्यंत विवश बन गया। वह उन जंतूओं का शिकार करने के लिए दौडा। उतने में ही उस उग्र पाप के कारण, वह तृण के समूह से आच्छादित गहरे खड्डे में गिरा। वहाँ पर रहा तीक्ष्ण खीला उसके पेट में घुस गया। उस वेदना से अत्यंत पीड़ित शुक को, सेवकों ने बाहर निकाला। गुप्तचरों से इस घटना के बारे में जानकर, जबतक वसंतराजा, पुष्पमाला के साथ वहाँ पर पहुँचा, उससे पहले ही शुक ने आयुष्य पूर्ण कर दिया। उस शोक से दुःखित तथा अग्नि में प्रवेश करने की इच्छावाली गुणमाला को उसके माता-पिता ने कैसे भी कर रोक लिया। गुणमाला अत्यंत दीनतापूर्वक छाती पीटती हुई, ऊँचे स्वर में रोने लगी। पश्चात् गुणमाला को साथ लेकर, वे दोनों कुलपति के पास आये।

कुलपति ने भी इनको इस प्रकार समझाया - राजन्! चारों गतियों में भ्रमण करने से उत्पन्न जन्म, मरण, दुःख के समूह से यह संसार भयंकर है, जहाँ पर प्राणी क्लेश प्राप्त करते है। लक्ष्मी चंचल है, प्राण अस्थिर है, स्वजनों का संग अस्थिर है। व्यर्थ ही प्राणी इस संसारवास में सुख की आशा करता है। इसलिए राजन्! बंधुओं पर से प्रेमसंबंध को छोड़कर, अपने मन को धर्म में लगाओ और

ममता से उत्पन्न दुःख को शांत करो। इस प्रकार कुलपति की वाणी सुनकर, राजा प्रतिबोधित हुआ। राज्य को छोड़कर, वसंत राजा पत्नी सहित कुलपति से दीक्षा का आग्रह करने लगा। गर्भ के कारण, गुणमाला को निषेध करने पर भी, माता-पिता के विरह को सहने में असमर्थ होने से कुलपति की आज्ञा लेकर उसने भी व्रत ग्रहण किया। कालक्रम से गुणमाला ने सुखपूर्वक पुत्री को जन्म दिया। सूतिकारोग के कारण गुणमाला ने उसी वन में आयुष्य पूर्ण कर दिया। पुत्री का वनमाला नाम रखा गया। वनमाला की नानी पुष्पमाला ने कितने ही काल पर्यंत, इस कन्या का पालन-पोषण किया। पश्चात् पुष्पमाला का भी स्वर्गवास हो गया। कर्मदोष से, इस पुत्री को छोड़ने का सामर्थ्य नहीं होने से, मैं वसंतराजमुनि मोह के कारण इसका पालन कर रहा हूँ। अब गुरु के आदेश से, मैंने इस वनमाला को आपके सामने प्रस्तुत की है। सज्जन ऐसे आप मेरी प्रार्थना का भंग न करे। वैसे ही होगा, इस प्रकार कुमार के द्वारा स्वीकार करने पर, आनंदित तापस ने वनमाला आदि से सजी हुई उस वनमाला कन्या को पभोत्तर कुमार को अर्पित की। वेतालिनी विद्या तथा पत्नी वनमाला को साथ लेकर, कुमार ने मथुरा की ओर प्रयाण किया।

समय पर सभी राजाएँ मथुरा नगरी में पहुँच गये। चंद्रध्वज राजा की शशिलेखा - सूरलेखा कन्या भी स्वयंवरमंडप में पहुँच गयी। भ्रमरी के समान बार-बार, इधर-उधर घूम रही उन दोनों की दृष्टि, पभोत्तरकुमार रूपी बगीचे के दिखाई देने पर स्थिर हो गयी। दोनों कन्याओं ने कुमार के गले में वरमाला डाली। जय-जयकार शब्द व्याप्त हुआ और वाजिंत्रों के घोष से आकाश पूरा गया। दूसरे राजा, कुमार के इस गौरव को सहन न कर सकें और अपनी सेनाओं के द्वारा उसे घेर लिया। तब पभोत्तर ने अद्‌भुत ऐसी वेतालिनी विद्या का स्मरण किया। जिस प्रकार हवा, पराल (अनाज रहित छोड़) को बिखेर देती है, वैसे ही कुमार ने शत्रुसेनाओं को भगा दिया। शीघ्र ही कुमार ने अपने भुजाओं के पराक्रम से उन सब शक्तिशाली राजाओं को जीत लिया। कुमार का पराक्रम देखकर सब राजा नतमस्तक हो गये। पश्चात् दोनों कन्याओं ने महोत्सवपूर्वक, कुमार के साथ विवाह किया। कितने ही समय तक वहाँ रहकर, पभोत्तर कुमार वापिस अपने नगर में लौट आया। पिता ने अक्षय पुण्यवाले कुमार को युवराज पद पर स्थापित किया। पभोत्तरकुमार शशि-सूरलेखा के साथ सुखों का उपभोग करते हुए समय बीताने लगा।

इस ओर, वैताढ्यपर्वत के गगनवल्लभ नगर में, प्रख्यात विद्याधर राजा कनककेतु राज्य करता था। उसे कनकवती तथा दूसरी रत्नवती पत्नी थी। उन दोनों पत्नियों से, कनकावली तथा रत्नावली पुत्रियाँ हुयी। पुत्री के जन्म-महोत्सव

समय, किसी नैमित्तिक ने राजा से कहा कि - जो इन दोनों कन्याओं से विवाह करेगा, वह दोनों श्रेणियों का राजा होगा। क्रम से वे दोनों कन्याएँ बढती हुई तारुण्य अवस्था में आयी। पिता कनककेतु ने उन दोनों का स्वयंवर महोत्सव प्रारंभ किया और समस्त विद्याधर राजाओं को आमंत्रित किया। कन्याओं ने हर्षपूर्वक हरिवेग के गले में वरमाला डाली। हरिवेग भी उनके साथ विवाहकर, अपनी नगरी में लौट आया। तब हरिवेग के पिता तारवेग ने निश्चय किया कि - हरिवेग ही दोनों श्रेणियों का राजा बनेगा। तारवेग सोचने लगा - पूर्वभव में हरिवेग ने ऐसा कौन-सा पुण्य किया होगा? यदि कोई ज्ञानी भगवंत पधारेंगे, तो मैं उनसे पूछूँगा।

कुछ समय पश्चात् वहाँ पर श्रीतेज नामक केवलीभगवंत पधारे। तारवेग राजा ने उन्हें नमस्कारकर, हरिवेग के बारे में पूछा। तब केवलीभगवंत ने कलावती -शंख भव से प्रारंभ कर हरिवेग भव पर्यंत का चरित्र कह सुनाया। संवेगवान् तारवेग राजा ने आनंदपूर्वक वह चरित्र सुना। तारवेग प्रतिबोधित हुआ। अपने पुत्र को राज्य देकर, कर्म को निर्मूल करने में उद्यत बने राजा ने केवलीभगवंत के पादमूल में दीक्षा ग्रहण की। हरिवेग को भी उस चरित्र के श्रवण से जातिस्मरणज्ञान उत्पन्न हुआ और श्रावकधर्म का स्वीकार किया। सम्यग्दर्शन से पवित्र आत्मा वह हरिवेग बारह व्रत का पालन करने लगा। एकदिन अवसर प्राप्त कर, हरिवेग राजा ने केवलीभगवंत से पूछा - प्रभु! उस सूरसेन ने कहाँ पर जन्म लिया है? उसका क्या नाम है? क्या वह सुलभबोधि है अथवा दुर्लभबोधि है? आप कृपाकर उत्तर दे।

केवलीभगवंत ने कहा - वह गज्जणपुर राजा सुरपति का पभोत्तर नामक पुत्र हुआ है। अब तो वह सुलभबोधि है किंतु सामग्री के अभाव से उसने धर्म प्राप्त नही किया है। क्योंकि योग्य पुरुष भी सामग्री के अभाव से प्रतिक्रिया नही कर सकता है। विशुद्ध धर्मचरितवाले धर्माचार्य को प्राप्त नही करने से, धर्मरत्न योग्य प्राणी भी बोधि प्राप्त नही कर सकता है। तुम से ही अर्हद्धर्म को प्राप्तकर, पभोत्तरकुमार बोधि प्राप्त करेगा। यह सुनकर हरिवेग ने आनंद प्राप्त किया। क्रम से हरिवेग दोनों श्रेणियों का अधिपति बना।

एकदिन पभोत्तर को देखने की उत्कंठा से हरिवेग अकेला ही गज्जण नगर में आया। हृदय तथा गले में कोड़ी की मालाओं से अलंकृत, स्वर्ण घूघरी से गर्जना करती, देदीप्यमान रत्न के समूह से सुंदर दिखाई देती, स्वर्ण सांकल से बांधी गयी ऐसी एक बड़ी आकारवाली काजल सदृश बिल्ली की विकुर्वना कर, हरिवेग अपने साथ लेकर चौरंहे पर आया। कौतुक से वहाँ पर लोग इकट्ठे हुए और उससे पूछने लगे - यह क्या है? इसे बेचने का क्या मूल्य है? हरिवेग ने कहा

- लाख स्वर्ण मुद्राएँ। तब लोगों ने कहा - अहो! बिल्लीमात्र का क्या इतना मूल्य हो सकता है? हरिवेग ने कहा - गुणों के कारण पत्थर, लकडे भी अमूल्य बन जातें हैं। अथवा क्या मणि, चंदन आदि महामूल्यवान् नही होतें है? इस बिल्ली में कौन-से गुण है? इस प्रकार लोगों के द्वारा पूछे जाने पर, विद्याधर ने कहा - हमें राजमहल जाना चाहिए। वहाँ पर इस बिल्ली के गुण-अवगुण का निश्चय होगा। इस प्रकार वार्त्तालाप करते हुए, वृद्ध ब्राह्मणों के साथ बिल्ली को आगेकर राजसभा में पहुँचा। वहाँ पर, पूर्वभव के अभ्यास से पभोत्तरकुमार ने हरिवेग को स्नेह की दृष्टि से देखा।

तब राजा ने पूछा - बिल्ली कहाँ से प्राप्त की है? हरिवेग ने कहा - किसी देव ने यह बिल्ली मुझे दी है। गुणों से श्रेष्ठ होने के कारण, संपूर्ण विश्व में इसका मूल्य नही हो सकता है। इसमें कौन-से गुण है? इस प्रकार राजा के द्वारा पूछे जाने पर, हरिवेग ने कहा - राजन्! आप इसके गुण सुनो। कुत्ते, बिल्ली आदि कोई भी इसे जीत नही सकता है। दूसरा गुण यह है कि - जिस स्थान पर यह बिल्ली रात्रि के समय रहती है, उस स्थान को भयभीत बने चूहें बारह योजन पर्यंत छोड़ देते है। हरिवेग ने वृद्ध ब्राह्मणों से कहा - इसके अन्य भी बहुत गुण है। इस बिल्ली का मूल्य नहीं आंका जा सकता है। किंतु दुःख अवस्था से पीडित होने के कारण, मैं इसे बेच रहा हूँ। पश्चात् बिल्ली के एक कान को देखकर, ब्राह्मण हंसने लगे और हरिवेग से कहा - यदि चूहे इस बिल्ली से बारह योजन दूर भाग जाते हैं, तो क्या उन चूहों ने इसका कान जरा-सा खा लिया है? तेरे वचन का प्रमाण पूर्वापर असंगतवाला है।

हरिवेग ने ब्राह्मणों से कहा - सद्रत्न को इस प्रकार दूषित नही किया जा सकता है। क्योंकि देव आदि में भी आपका यह विरोध घटाया जा सकता है। जो मनुष्य गाय, ब्राह्मण, स्त्री, बालक आदि की हत्या करता है, उसे आप किस प्रकार से संबोधन करेंगें? ब्राह्मणों ने कहा - वह मनुष्य महापापी तथा अदर्शनीय मुखवाला होता है। तब हरिवेग ने कहा - यदि ऐसा है तो, जो अग्नि ब्राह्मण, बालक आदि को जलाता है, उस अग्नि को धर्माकांक्षी लोग देव की बुद्धि से किस लिए पूजा करतें हैं? अथवा क्रोडों देवों के मुख को तृप्त करने के कारण, इस अग्नि में तर्पण किया जाता है। तो फिर उनके अनिष्ट शव आदि को अग्नि स्वयं ही क्यों जलाता है? ब्राह्मणों! आप शौचधर्म के जानकर होते हुए अशुचि कवल करने में तत्पर अग्नि को, देव की बुद्धि से कैसे पूजा कर सकतें हो? यदि आप कहते हो कि पानी विष्णु की मूर्त्ति है, तो उसी पानी से पैर धोने से तथा अशुचि साफ करने से क्या आपकी वाणी में विरोध प्रकट नहीं होता है? यदि देवों में विरोध है, तो इस श्रेष्ठ बिल्ली में दोषों का चिंतन क्यों करतें हो? तथा अन्य इस कारण पर भी

आप विचार करें - जैसे पार्वती में रत तथा कामदेव के शत्रु, शिव को आप पूजनीय मानते हो, वैसे ही चूहे को खानेवाली और चूहे की हिंसा करनेवाली इस बिल्ली को श्रेष्ठ क्यों नही मान सकते हो? इस प्रकार की सत्यवाणी से, हरिवेग ने ब्राह्मणों को शीघ्र ही निरुत्तर बना दिया।

तब पभोत्तर सोचने लगा - यह कोई महान् पुरुष है। इसलिए आदर सहित मैं इनसे देवता का स्वरूप पूछता हूँ। पभोत्तर के पूछने पर हरिवेग ने भी सर्वज्ञ भाषित धर्म के बारे में कहा। पुनः हरिवेग ने पभोत्तर को उद्देशकर कहा - क्या पूर्वभव के ग्रैवेयक की लक्ष्मी को भूल गये हो? उस समय पभोत्तर को जातिस्मरण ज्ञान हुआ और हरिवेग से कहने लगा - अहो! तेरे ज्ञान की निर्मलता अहो! तेरा उपकारपन, अहो! तेरा सद्धर्म में पक्षपात, अहो! तुम कैसे श्रेष्ठ हो? अहो! तेरी कृपापरायणता, अहो! तेरा उत्तम वात्सल्य। तुम मुक्तावली का जीव हो और विद्याधर बने हो। मुझे बोध देने के लिए ही तुम यहाँ आये हो। अब अपने नकली रूप को छोड़कर, वास्तविक रूप प्रकट करो। हरिवेग के द्वारा वैसा करने पर, उन दोनों ने परस्पर गाढ़ आलिंगन किया। राजा भी इस वृत्तांत को जानकर, नागरिक लोग तथा परिवार सहित श्रीजिनधर्म में अत्यंत निष्ठावान् बना। **सत्संग से किसको लाभ नही होता है?**

इसीबीच वनपालक ने आकर राजा से विज्ञप्ति की - स्वामी! केवलीभगवंत के आगमन से आपको बधाई दी जाती है। पभोत्तर, हरिवेग आदि को साथ लेकर, राजा वंदन करने के लिए गया। राजा ने आनंदपूर्वक केवली की देशना सुनी। राजा प्रतिबोधित हुआ और राज्य छोड़कर दीक्षा ग्रहण की। दुष्कर तप करते हुए, कर्म ईंधन को जलाकर परमपद प्राप्त किया। पश्चात् पभोत्तर ने श्रावक धर्म का अंगीकार किया। हरिवेग ने उसका राज्यपद पर अभिषेक किया और पभोत्तर राजा अनेक राज्यों का पालन करने लगा। कुछ समय पश्चात् हरिवेग, पभोत्तर को अपने नगर में ले गया और कहने लगा -मित्र! मेरी निर्दोष विद्या तथा विद्याधर के ऐश्वर्य को ग्रहण करो। पभोत्तर ने कहा - भाई! तुम मेरे दूसरे शरीर समान हो। इसलिए जिसके तुम राजा हो, उसका मैं भी राजा हूँ। तथा धर्म के प्रदान से, जो कुछ भी देने योग्य है, वह सब दे दिया है। क्या इससे बढ़कर भी श्रेष्ठ दान हो सकता है? जब तक पुत्र का जन्म न हो, तबतक हम दोनों राज्य का परिपालन करेंगें। पश्चात् पुत्र को राज्य की धुरा सौंपकर हम दोनों दीक्षा ग्रहण करेंगें। इस प्रकार दोनों ने परस्पर विचारणा की। शाश्वत जिनचैत्यों की यात्राकर, वापिस गज्जणपुर लौट आएँ।

एकदिन वे दोनों राजा आदरपूर्वक जिनचैत्यों को नमस्कार कर लौट रहे थे, उतने में ही लकडी, मुष्टि के प्रहार से आँखों में पीडावाला, बिखरे केश, फटे

वस्त्र धारण किये हुए धूलि से धूसरित तथा लोगों के द्वारा निंदित किये जाते एक जुगारी को देखा। करुणावान् उन दोनों ने पूछा - इसे इतना क्यों सता रहे हो? तब किसी व्यक्ति ने कहा - इस नगरी में करोड़पति वरुण श्रेष्ठी निवास करता है। उस श्रेष्ठी का यह पुत्र है। पिता ने इसे जुगार के व्यसन के कारण घर से बाहर निकाल दिया था। फिर भी इस दौर्भागी ने जुगार खेलना नही छोड़ा। आज यह लाख मुद्राएँ हारकर पलायन कर रहा था। हमने इसे बलजबरी से पकड़ रखा है। लाख मुद्रा प्राप्त किये बिना, हम इसे छोड़नेवालें नहीं है। आप इस विषय में दखल-अंदाजी न करे। लाख स्वर्ण मुद्राएँ देकर, हरिवेग-पभोत्तर ने श्रेष्ठी पुत्र को छुड़ा लिया। कर्म की विषम चेष्टा के बारे में, विचार करते हुए, वे दोनों महल चले गये। कालक्रम से उन दोनों के पुत्र राज्यभार वहन करने में समर्थ बन गये। पुत्रों को राज्यभार सौंपकर, शीघ्र ही दीक्षा ग्रहण करने का विचार करने लगे। उतने में ही रत्नाकरमुनि उद्यान में पधारे। दोनों ने मुनिभगवंत को वंदन किया। मुनि की देशना सुनकर, वैराग्य के चढ़ते परिणाम से पुत्र को राज्यभार सौंपकर प्रशस्त दिन में संवेग रसवाले उन दोनों ने दीक्षा ग्रहण की। अग्यारह अंग पढ़कर, वे दोनों तप, क्रियाओं में कुशल बने। अंत में आयुष्य पूर्णकर ग्रैवेयक में सत्ताईस सागरोपम प्रमाण आयुष्यवाले देव बने।

इस प्रकार पं. श्रीसत्यराजगणि द्वारा विरचित श्रीपृथ्वीचंद्रमहाराजर्षि चरित्र में पभोत्तर-हरिवेग महामुनि चरित्र रूपी सप्तम भव वर्णन संपूर्ण हुआ।

अष्टम भव

पांडु नामक देश में पांडु नगर है। वहाँ पर श्रीबल राजा राज्य करता था। उसका छोटा भाई शतबल युवराज था। वे दोनों राम-लक्ष्मण के समान आपस में घनिष्ट प्रीतिवाले सहोदर थे। निपुण ऐसे वे दोनों पिता के द्वारा अर्पित सुविस्तृत साम्राज्य का सम्यक् प्रकार से परिपालन करते थे। श्रीबल राजा की सुलक्ष्मणा तथा शतबल की लक्ष्मणा नामक पत्नी थी। पभोत्तर देव स्वर्ग से च्यवकर, सुलक्ष्मणा की कुक्षि में पुत्र के रूप में अवतीर्ण हुआ। गंगा के समीप में रहे हुए पर्वत को स्वप्न में देखने से, उसका गिरिसुंदर नाम रखा गया। हरिवेग देव भी लक्ष्मणा की कुक्षि में पुत्र के रूप में अवतीर्ण हुआ। स्वप्न में रत्न के समूह को देखने से उसका रत्नसार नाम रखा गया। गिरिसुंदर तथा रत्नसार दोनों आपस में प्रेम की शृंखला से बंधे हुए इकट्ठे खेलते थे।

एकदिन राजसभा में विराजमान बलवान् ऐसे श्रीबल राजा से, दुःख से पीडित नागरिक लोगों ने इस प्रकार विज्ञप्ति की - आप जैसा राजा होने पर भी, हमें बडे संकट का सामना करना पड रहा है। अपने घर के आंगन में बैठी हुई कमला नामक महिमा का किसी ने बलजबरी से अपहरण कर लिया है। यहाँ पर

कोई देव अथवा दानव की संभावना दिखायी नही देती है। यह बात सुनकर, राजा ने अपने सैनिक को बुलाया और डांटते हुए कहने लगा - रे! क्या तुम रात्रि के समय सोते हो? हाथ में तीक्ष्ण तलवार लेकर नगर में पहरा नहीं देते हो? तब सैनिक ने कहा - मैं रात्रि के समय नगर के अंदर पहरा देता हूँ तथा नगर के दरवाजे बंध करता हूँ। मैं चोर के पीछे भागा था, किंतु उसे पकड़ न सका और लोगों की आवाज भी सुनी थी। इसलिए मैं आप से निवेदन करता हूँ कि प्रयत्नपूर्वक आप अपने अंतःपुर तथा नगरवासियों की इस संकट से रक्षा करें क्योंकि पौरवर्ग देव सदृश होता है। इस प्रकार सैनिक के वचन सुनकर, राजा विचाराधीन बन गया।

उतने में ही गिरिसुंदर ने नमस्कारकर, राजा से विज्ञप्ति की - यदि आप मुझे आज्ञा दे तो मैं उस दुराचारी चोर को सात दिनों के अंदर पकड़ लाता हूँ। राजा के द्वारा आज्ञा देने पर कुमार ने अपने गुप्तचर पुरुषों को इस कार्य में नियुक्त किया। वे भी चोर को पकड़ न सके। इसलिए कुमार स्वयं ही नगर से बाहर निकला। शून्य उद्यान आदि में पर्यटन करते हुए, कुमार ने पर्वत शिखर के समीप जलती हुई अग्नि को देखा। उस प्रदेश के समीप जाने पर, वहाँ पर कुमार ने गुग्गल काष्ठ से आहुति करते किसी पुरुष को देखा। उस पुरुष के निकट में ही सिद्ध हुए किसी दुःसाध्य क्षेत्रपाल को खडा देखा। क्षेत्रपाल उससे कहने लगा - मैं इस कुमार की महिमा से ही तुझे सिद्ध हुआ हूँ। पश्चात् क्षेत्रपाल के अदृश्य हो जाने पर, साधक ने कुमार से कहा - सत्पुरुष! गुप्तरीति से आकर, आपने मुझ पर उपकार किया है। इसलिए कहो मैं आपके लिये क्या संपादन कर सकता हूँ? तब कुमार ने कहा - आपको विद्या सिद्ध हो जाने से, मैं कृतार्थ बन गया हूँ। अन्य क्या मांगूँ? इस प्रकार इच्छा रहित कुमार को, उस साधक ने रूपांतरकरी विद्या दी।

इसीबीच कुमार ने नगर की दिशा से किसी स्त्री का अत्यंत करुण शब्द सुना। कोई दुष्ट आत्मा स्त्री का अपहरण कर रहा है, ऐसा निर्णयकर कुमार उस तरफ दौड़ा। किंतु वहाँ पर भी, कुमार ने किसी को नही देखा। कुमार ने निश्चय कर लिया कि पर्वत की गुफा में कोई दुष्ट आत्मा निवास कर रहा है। कुमार सोचने लगा - अब इसे कैसे ढूँढूंगा? हाँ, मार्ग मिल गया है। यह स्त्रीलंपट है। इसलिए मैं युवती का रूप धारण करता हूँ। पश्चात् रूपांतरकरी विद्या से कुमार ने अपना रूप परावर्तन कर लिया। वह दुष्ट भी स्त्री को देखकर, देवकुलिका से बाहर निकल आया। कापालिक वेषधारी उस दुष्ट को देखकर, कुमार इस दुष्ट को मारुँ अथवा नहीं ऐसे संशय में पड गया। यह कपटी निश्चय से वध्य ही है ऐसा विचारकर, कृत्रिम वेषधारी तथा जिज्ञासु कुमार ने रोना प्रारंभ किया। रोने की आवाज सुनकर, कापालिक भी स्त्री के संमुख आगया। उसके सुंदर रूप को

देखकर, कापालिक ने पूछा - भद्रे! तुम इस स्थान पर अकेली क्यों आयी हो? तुम क्यों रो रही हो?

स्त्री रूपधारी कुमार ने कहा - यात्रा करने के लिए, मैंने पति के साथ प्रयाण किया था। यहाँ पर सो रही मुझे छोडकर, वे कही पर चले गये है और अपनी इस तलवार को भी भूल गये हैं। कापालिक ने कहा - सुंदरी! भाग्य ने उस रंक को ठग लिया है। पुनः आप सदृश स्त्रियों की अनाथता कहीं पर नहीं हो सकती है। कुमार स्त्री ने कहा - भगवन्! पति के विरह में क्षणमात्र भी जीवित रहना, यह कुलीन स्त्री के लिए योग्य नही है। इसलिए भगवन्! आप मुझे कोई तीर्थस्थान बताइए, जहाँ पर मैं अपना जीवन व्यतीत कर सकूँ। तब कापालिक ने कहा - यहाँ पर एक तीर्थ है। उस तीर्थ में तीन रात रहने के बाद तुम अपने पति से मिल सकोगी। इसलिए भद्रे! निरर्थक मरण से क्या लाभ होगा? तुम तीर्थ की उपासना करो। इस प्रकार बातचित करते हुए वे दोनों देवकुल के पीछे स्थित किसी स्थान पर गये। वहाँ पर कापालिक ने अपने पैर से पृथ्वीतल को मारा। इस संकेत को पाकर, एक नागकन्या सदृश कन्या ने गप्तद्वार का उद्घाटन किया। पश्चात् दोनों ने अंदर प्रवेश किया। तुम दोनों देवपूजा की तैयारी करो, मैं फूल लेकर आता हूँ। इस प्रकार कहकर कापालिक बाहर निकल गया। कुमार वहीं पर रुक गया।

तब पहेली कन्या ने कुमार-स्त्री से कहा - सखी! मेरे समान ही इस पापी ने तुझे भी कैद कर दिया है। कुमार-स्त्री ने पूछा - सखी! तुम मुझे बताओ कि यह कौन है? और कहाँ गया है? तुम कौन हो? और इस स्थान पर क्यों रह रही हो? कन्या रोती हुई उससे कहने लगी - कापालिक वेषधारी यह दंडपाल नामक चोर है। संपूर्ण दिवस स्वेच्छा से घूमता है तथा रात्रि के समय स्त्री आदि का अपहरण कर, इस स्थान पर ले आता है। हम दोनों को मिलाकर इसने एक सो एक कन्याओं का संचय किया है। मैं सुभद्रा नामक पांडुपुर में निवास कर रहे श्रेष्ठी की पुत्री हूँ। इसी कापालिक ने मेरा अपहरण किया था। श्रीबल-शतबल के राज्य में रहती हुई भी, परवश के कारण अब इस स्थान में रह रही हूँ। क्या करुँ? कुमार-स्त्री ने पूछा - सखी! इसे ऐसा सामर्थ्य कहाँ से प्राप्त हुआ है? सुभद्रा ने कहा - यह कापालिक तीनों संध्याएँ यहाँ पर स्थित खड्गरत्न की पूजा करता है। खड्गरत्न के साथ रहते यह कापालिक भय रहित, स्वेच्छापूर्वक सूर्य के समान संपूर्ण विश्व में भ्रमण कर सकता है। उसके विरह में यह नित्य कायर के समान दिखायी देता है। वह तलवार दिखाओ इस प्रकार कुमार के कहने पर, सुभद्रा ने भी कापालिक की तलवार दिखायी। कुमार ने उस खड्गरत्न को ग्रहण कर ली तथा उसके स्थान पर खुद की तलवार रखी।

इतने में कापालिक भी वहाँ पर आ गया। कुमार ने अपना वास्तविक रूप प्रकट कर, कापालिक की तर्जना करने लगा। कापालिक भी तलवार लेकर, कुमार के साथ युद्ध करने लगा। कुमार ने क्षणमात्र में ही उसे यमनगरी पहुँचा दिया। कन्याएँ यह सब देखकर खुश हुई। पश्चात् गिरिसुंदर ने कहा - यदि तुम कहो तो मैं शीघ्र ही तुम सबको अपने-अपने स्थान पर पहुँचा दूँ? सुभद्रा के वचन से गिरिसुंदर को पहचानकर, उन कन्याओंने कहा - पति बिना हम अपने स्वजन-संबंधियों को खुद का मुख दिखाने में लज्जा का अनुभव कर रहें हैं। इसलिए हमें आपका शरण हो अथवा भाग्यहीन हम अग्नि का शरण ग्रहण करेंगें। आपने उपकार कर हमें खरीद लिया है। हम आपको छोडने में समर्थ नहीं हैं। आप हमारा स्वीकार करें अन्यथा हम अग्नि में प्रवेश कर अपने प्राणों की आहुति दें देंगें। केवल करुणा रसवाले सज्जन पुरुष हीन-दीन मनुष्य वाणी के उचित-अनुचित के बारे में गणना नहीं करते हैं। इस प्रकार के दृढ निश्चयवाली उन कन्याओं को देखकर, करुणा पूर्वक कुमार विचारने लगा - इन शुद्ध कन्याओं को भी भेजना चाहता था। किसी भी प्रकार से इनको मरते हुए मैं देख नही सकता हूँ। इसलिए पति रहित इन कन्याओं का मैं नाथ बनता हूँ। ऐसा निश्चय कर, कुमार उस स्थान पर रहते हुए, कन्याओं के साथ एक मास व्यतीत किया।

एकदिन कुमार को अपने बंधु याद आएँ। पत्नियों को उसी स्थान पर स्थापित कर, कुमार ने रूप परावर्त्तन किया। पांडुपुर के समीप आया और शोक से व्याकुल समस्त नागरिक लोगों को देखा। कुमार ने किसी व्यक्ति से शोक का कारण पूछा। तब उसने कहा - गिरिसुंदर नामक राजपुत्र, किसी चोर को पकडने के लिए निकला था। एक मास बीत चुका है, किंतु अभी तक वापिस नहीं लौटा है। आज तो युवराज का पुत्र रत्नसार भी उसे ढूँढने के लिए कहीं पर चला गया है। इसलिए शोक अधिक बढ गया है। वज्रघात की उपमावाले उस वचन को सुनकर, गिरिसुंदरकुमार अपने भाई को खोजने के लिए शीघ्र ही नगर से बाहर निकला। गाँव, आकर, नगर, अरण्य, पर्वत के शिखर पर, गुफाओं में ऐसे अनेक स्थलों पर उसे ढूँढा। भूख-प्यास की अवगणना करता हुआ कुमार मार्ग पर मिलते मुसाफिरों से भी इस विषय में पूछता था। किंतु कहीं पर भी रत्नसार के समाचार न मिले।

पश्चात् कुमार ने किसी देवकुल में मुसाफिरों की बातचीत सुनी। उनमें से एक ने कहा - भाई! एक कौतुक की बात सुनो। विविध देशों को देखने की इच्छा से, मैं कुतूहलतापूर्वक भ्रमण करता हुआ सैंकडों हिंसक प्राणियों से व्याप्त किसी उज्जड़ देश में आया। तब देव सदृश निरुपम रूपवाला कोई राजपुत्र दिखायी दिया। हम दोनों साथ में आगे बढने लगे। उतने में ही सामने किसी सुंदर तथा

शून्य नगर को देखकर, कुतूहलवश हम दोनों ने अंदर प्रवेश किया। वह नगर सुंदर दूकान, देव महल के समान ऊँचे कोट तथा अनेक जगह पर परबों से व्याप्त था। तीक्ष्ण तलवार हाथ में रखकर, रात्रि के समय हम दोनों उसी नगर में सो गये। कुछ समय पश्चात् राजकुमार जाग गया। तब एक शेर राजकुमार के समीप आकर, मनुष्य वाणी में कहने लगा - राजपुत्र! मैं भूखा हूँ। मुझ पर कृपा करो। नजदीक में सो रहे इस मनुष्य को मुझे दे दो। राजकुमारने कहा - शरणागत को मैं छोड नही सकता हूँ। इसलिए तुम मेरा ही भक्षण कर लो। कहा भी गया है कि - सुभटों से शरणागत, सिंह से केसर, सती से उत्तमता तथा सर्प से चूडामणि। इनके जीवित रहते हुए ग्रहण नहीं की जा सकती है। इस प्रकार के वचन से, राजकुमार के निश्चय को जानकर शेर ने कहा - भद्र! मैं तेरे सत्त्व से प्रसन्न हूँ। कहो, मैं तुम्हारा कौन-सा इष्ट कर सकता हूँ? तुम कौन हो? इस प्रकार राजपुत्र के पूछने पर उसने कहा - मैं इस देश का नायक देव हूँ। रत्नसागर ने पूछा - आपके रहते हुए भी यह देश उज्जड क्यों है? मुझे यह आश्चर्य है। तब देव ने भी अपने वास्तविक रूप को प्रकट कर, राजकुमार से इस प्रकार सत्य हकीकत कहने लगा -

गंधार नगर में रविचंद्र राजा राज्य करता था। उसे रतिचंद्र-कीर्तिचंद्र नामक दो पुत्र थे। रविचंद्र राजा ने रतिचंद्र को राज्यपद तथा कीर्तिचंद्र को युवराजपद का वितरण कर स्वयं ने दीक्षा ग्रहण की। रतिचंद्र ने गायन आदि रस के परवशता से, सभी राजकार्यों की देखभाल के लिए कीर्तिचंद्र को नियुक्त किया। प्रचुर लोभाभिभूत कीर्तिचंद्र ने संपूर्ण राज्य को स्वाधीन कर लिया। रतिचंद्र को बंदी बनाकर, तुरंत ही वध का आदेश दिया। तब दीनतापूर्वक रतिचंद्र ने कहा - भाई! कुंदफूल, चंद्र तथा शंख के समान हमारे निर्मल कुल पर तुझे मसि का दाग लगाने की योग्यता नही है। यदि तुझे राज्य की लालसा है तो यह संपूर्ण राज्य, मैंने तुझे दे दिया है। यदि तुझे विश्वास न होता हो, तो भी छोड दो जिससे मैं पिता के मार्ग का अनुसरण कर सकूँ। इतना कहने पर भी जब कीर्तिचंद्र ने उसकी बात नही मानी, तब रतिचंद्र ने कहा - ऐसा कृत्य कर तेरा अपयश न हो, इसलिए तुम चिता रचाओ, मैं अग्नि में प्रवेश करुँगा। कीर्तिचंद्र के द्वारा वैसा करने पर, पत्नी सहित राजा ने अग्नि में प्रवेश कर लिया। लोभी आत्माएँ कृत्याकृत्य की गणना नहीं करती हैं। वह मैं रतिचंद्र मरकर, भूतरमण यक्ष हुआ हूँ। अंत समय में प्राणी की जैसी मति होती है, वैसी ही उसकी गति होती है। निष्कारण शत्रु ऐसे कीर्तिचंद्र का स्मरणकर मैं क्रोधित बना। सभी लोगों को मैंने अलग-अलग देशों में छोड़ दिया है। वह कीर्तिचन्द्र भी यहाँ से भाग गया है। मैं अकेला ही इस उज्जड़ देश में रह रहा हूँ। यहाँ पर तुम दोनों को देखकर, शेर का

रूप धारण कर आया था। मेरी यह ही सत्य हकीकत है। मैं तेरे सत्त्व से खुश हूँ। इसलिए तुम्हारा जो भी इष्ट कार्य हो, वह कहो मैं उसे पूर्ण करुँगा। क्योंकि देवदर्शन अमोघ होता है। तब राजकुमार ने कहा - हे देव! हे पुण्यजनों के स्वामी! यदि ऐसा है तो आप यहाँ पर पुनः देश वसाएँ। यदि आप मुझ पर प्रसन्न हो तो, मेरा यह कार्य पूर्ण करे क्योंकि आपके समान सज्जन पुरुष, किसी भी समय प्रार्थना का भंग नहीं करते हैं। यक्ष ने कहा - यदि तुम इस देश का प्रभुत्व स्वीकार करोगे, तो मैं यह कार्य करुँगा। इस स्थान पर रहते हुए, तुम्हें तुम्हारा भाई भी महीने के अंत में मिल जायेगा। राज़कुमार ने भी उसकी बात मान ली। यक्ष आनंदित होते हुए वहाँ से अदृश्य हो गया।

प्रातः चारों ओर से समस्त सामंतराजा गंधार नगर में आये। उन्होंनें राजकुमार का राज्य पर अभिषेक किया और अब वह देवप्रसाद के नाम से प्रख्यात है। अपने पुण्य समूह से अर्जित राज्य के प्रभुत्व को देवप्रसाद राजा सतत पालन कर रहा है। देवप्रसाद राजा ने एकदिन मुझ से कहा - मित्र! हम दोनों ने मिलकर इस राज्य के प्रभुत्व को प्राप्त किया है। इसलिए हम दोनों समान रूप से इस समृद्धि का अनुभव करे अथवा तुम अकेले ही इसका परिपालन करो। मैंने कहा - मित्र! यक्ष ने महीने के अंत में भाई के साथ समागम होने का कहा है। इसलिए तुम यही रुको, मैं तुम्हारें भाई की खोज करता हूँ। उसका नाम क्या है? और वह किस हेतु से राज्य छोडकर बाहर निकला था? देवप्रसाद ने कहा - गिरिसुंदर नामक मेरा सुंदर भाई है और वह चोर को पकडने का आग्रहकर, नगर से निकला था किंतु अभी तक वापिस लौटा नहीं है। मैं उसी की खोज करते हुए इस गंधार नगर में आया था।

मित्रों! मैं उसकी खोज करते हुए इस स्थान पर आया हूँ। इसलिए मैं आप सब मुसाफिरों से पूछ रहा हूँ कि ऐसे सुंदर लक्षणवाले पुरुष को आपने किसी स्थान पर देखा है। यदि देखा हो तो कहे, मैं वहाँ जाकर उससे मिलूँगा। *इसकी बातें सुनकर गिरिसुंदरकुमार अपने हृदय में विचार करने लगा* - इस पथिक के कथन अनुसार, यक्ष ने जिसको राज्य दिया है तथा जो गंधार नगर में विराजमान है, वह देवप्रसाद ही रत्नसार है। ऐसा निश्चय कर कुमार ने उस पथिक से कहा - अपने मित्र के लिए तुम कष्ट उठा रहे हो। देवप्रसाद से मिलने की मेरी प्रबल उत्कंठा है। मैं विनय आदि से मान संकुलित राजा के मन को आकर्षित कर लूँगा जिससे वह अपने भाई को भूल जायेगा। वहाँ से दोनों ने साथ में प्रयाण किया और श्रेष्ठ गंधारपुर आये। रत्नसार राजा को देखकर कुमार खुश हुआ। गिरिसुंदर ने रूप परावर्त्तन कर लिया था, इसलिए राजा उसे पहचान न सका। राजा ने अपने मित्र से पूछा - यह महानुभाव कौन है? उसने कहा - आपके

चरणों के दर्शन का इच्छुक यह विद्यासिद्ध है और मेरे साथ यहाँ पर आया है।

मास की अवधि पूर्ण हो जाने से, राजा ने अपने मित्र से कहा - आज महीना संपूर्ण हो गया है, किंतु अभीतक मेरा भाई आया नही है। क्या देव वचन भी विरुद्ध हो सकता है? अब मुझे राज्य तथा जीवन से कोई प्रयोजन नही है? इस प्रकार विषाद कर रहे रत्नसार राजा से गिरिसुंदर ने कहा - वह मैं ही आपका भाई हूँ जो देव के द्वारा कहा गया था। मैं भी अपने भाई से मिलने के लिए पृथ्वीतल पर विचरण कर रहा था। आपके दर्शन से मुझे संतोष प्राप्त हुआ है। अब मैं पर्यटन करने से मुक्त बन चुका हूँ। राजन्! आप भी मेरे समागम से इस विकल्प से मुक्त बने। समान क्रिया में प्रवृत्ति यह ही प्रीति का सार है। उसके वचन सुनकर, रत्नसार भी विचार करने लगा - गिरिसुंदर पर जिस प्रकार का प्रेम स्फूरायमान होता है, वैसा ही इस पर हो रहा है। क्या यह ही मेरा भाई तो नही है, जिसने रूप परावर्त्तन कर लिया हो? ऐसा निश्चय कर, रत्नसार ने कहा - भाई! अब भी मुझे क्यों ठग रहे हो? खुद के वास्तविक रूप को प्रकट करो। गिरिसुंदर ने भी हर्ष से वैसा ही किया।

अन्यदिन पूर्व में कहे गये महसेन नामक मित्र का गिरिसुंदर-रत्नसार उन दोनों ने मिलकर, राज्य पर अभिषेक किया। उन दोनों ने कहा - तुम हमारें तीसरे भाई हो। इसलिए तुम राज्य संपदा भोगो। हम अपने माता-पिता से मिलकर खुद के विरह रूपी दावाग्नि को शांत करते हैं। ऐसा कहकर दोनों ने पुष्कल सेना के साथ प्रयाण किया। दोनों पांडुपुर पहुँचे। उनके आगमन के समाचार प्राप्त कर, अत्यंत हर्षपूर्वक शतबल आदि से युक्त श्रीबलराजा भी सामने आया। सभी ने आडंबरपूर्वक, ऊँचे तोरणों से शोभायमान नगर में प्रवेश किया। गिरिसुंदर तथा रत्नसार ने माता-पिता से खुद के आश्चर्यकारी चरित्र का वर्णन किया। श्रीबल राजा भी उनके अद्‌भुत भाग्य के बारे में सुनकर आनंदित हुआ।

एकदिन पांडुपुर नगर के उद्यान में जयनंदमुनि पधारे। श्रीबल राजा ने अपने पूर्वभव के चरित्र के बारे में पूछा। मुनि ने कहा - प्रीतिपूर्वक साधु को अत्यंत आश्चर्यकारी ऐसे दान देने से, तुम चारों भी (श्रीबल, शतबल, सुलक्ष्मणा, लक्ष्मणा) अद्वितीय सुख के भोक्ता बने हो।

इसी भरतक्षेत्र के प्रतिष्ठानपुर नगर में सुमेघ नामक कुलपुत्र निवास करता था। उसके विन्ध्य और शंबर नामक दो पुत्र थे। माता-पिता के स्वर्गवास के बाद, दोनों पुत्र शोक मग्न बने। पश्चात् दोनों ने कांचनपुर की ओर प्रस्थान किया। किसी स्थान के बीच में कंदोई की दूकान आयी। वहाँ से खाद्य सामग्री लेकर दोनों उद्यान में आये। तभी वहाँ पर मासखमण का पारणा करने के लिए एक साधु भगवंत पधारे। साधु भगवंत को देखकर, शुद्ध आहार से लाभ देने का

आग्रह किया। पश्चात् अत्यंत प्रमोद से उन दोनों ने आहार वहोराया और उज्ज्वल बोधि-रत्न प्राप्त किया। इसीबीच यक्ष की पूजा करने के लिए, राजकन्याएँ आवृद्धि तथा वृद्धि भी उस उद्यान में आयी। साधु भगवंत को आहार वहोराते देखकर अहो! इन दोनों का सुंदर दान, अहो! इन दोनों का पुण्य का संचय, अहो! इन दोनों के जन्म की सफलता - इस प्रकार के विचारों से राजकन्याओं ने उनके दान की अनुमोदना की। ऐसे दो ने दान के द्वारा तथा दो ने अनुमोदना के द्वारा शुभानुबंधि पुण्य का उपार्जन किया और पाप का नाश किया। मुनिदान से दोनों विन्ध्य-शंबर संतुष्ट हुए।

पश्चात् दोनों काञ्चनपुर आये। विश्राम करने के लिए किसी उद्यान में रुक गये। इसीबीच राजा का पट्टहाथी उन्मादी बन गया। महावत को दूर फेंककर, संपूर्ण नगर में असमंजस की स्थिति पैदा करने लगा। चंद्रराजा ने नगर में घोषणा करायी कि - कोई प्रख्यात शूरवीर है, जो इस मत्त हाथी को शीघ्र ही अपने वश कर ले। घोषणा सुनकर विन्ध्य, हाथी के सम्मुख गया और उसकी तर्जना करने लगा। लंबे समय तक हाथी को खेदित कर, अपने वश कर लिया। बाद में हाथियों की शाला में ले गया। लोगों ने विन्ध्य की प्रशंसा की। चंद्रराजा ने उसे आह्वान कर कहा - मैं तेरे सत्त्व से खुश हूँ। इसलिए तुम स्वयं वर मांगो। विन्ध्य ने कहा - सभी वरों में श्रेष्ठ वर यही है कि मैंने आपके दर्शन प्राप्त कर लिए है। इससे ज्यादा और क्या माँगूं? यदि मुझे इष्ट वर की प्राप्ति होगो, तो मैं आपके चरणों की सेवा करना चाहता हूँ। उस दान के अचिन्त्य माहात्म्य से, चंद्रराजा ने भी उसकी विज्ञप्ति स्वीकार कर ली। पश्चात् विन्ध्य और शंबर दोनों राजा की सेवा करने लगे।

कालक्रम से दोनों भाई समाधिपूर्वक आयुष्य पूर्णकर देवकुरुक्षेत्र में, तीन गाउ शरीर प्रमाण तथा तीन पल्योपम आयुष्य प्रमाणवालें युगलिक बने। दान अनुमोदन के पुण्य से, दोनों राजकन्याएँ उसी क्षेत्र में विन्ध्य-शंबर युगलिकों की प्रिया के रूप में उत्पन्न हुई। दोनों युगल वहाँ पर अद्‌भुत सुख का अनुभवकर संकट तथा पाप से वर्जित ऐसे सौधर्म देवलोक में गये। वहाँ से च्यवकर तुम दोनों पांडुपुर के महाबल राजा की विलासवती पत्नी की कुक्षि से पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए हो। पूर्वभव की दोनों प्रेयसियों में से एक सुंदर ऐसे पभखंडपुर में महसेन राजा की सुलक्ष्मणा पुत्री हुई है। और दूसरी विजयपुर में पभरथराज की लक्ष्मणा पुत्री हुई है, जिसने अपने रूप से देवांगनाओं को भी दासी बना दिया है।

चारण से श्रीबल का गुण कीर्त्तन सुनकर सुलक्ष्मणा उस पर अनुरागी बनी। वैसे ही शतबल के गुणों को सुनकर, लक्ष्मणा सरागी बनी। एकदिन महाबल की राजसभा में श्रीगुप्त नामक सिद्धपुत्र आया। विद्यासिद्धि के लिए श्रीगुप्त

ने सहायता के रूप में पराक्रमशाली श्रीबल की याचना की। श्रीबल ने भी उसकी बात स्वीकार कर ली। रात्रि के समय श्रीबल, भूतों के इष्ट ऐसे प्रेतवन (श्मशान) में पहुँचा। उसी समय श्रीगुप्त का अपहरण करते एक अत्यंत भयंकर पिशाच को देखा। तलवार निकालकर श्रीबल उसका पीछा करते हुए एक विशाल अटवी में पहुँचा। प्रातः हो जाने से पिशाच अदृश्य हो गया था, किंतु श्रीगुप्त दिखायी नही दिया। दुःखित होते हुए श्रीबल उसकी इधर-उधर अन्वेषणा करने लगा। इतने में ही वहाँ पर, किसी रोती कन्या को गले में फांसा डालते हुए देखा। श्रीबल आश्चर्यचकित हुआ और सावधानीपूर्वक छुपकर देखने लगा। तब इस प्रकार कन्या की वाणी सुनायी दी - लोकपाल आदि सुनें। यदि इस जन्म में श्रीबल मेरा पति नही हुआ है, तो अन्य जन्म में वह मेरा पति हो। ऐसा कहकर, कन्या ने खुद को फांसे से लटका दिया। श्रीबल ने तलवार से उस फांसे को काट दिया। कन्या ने सहजतापूर्वक श्रीबल को पहचान लिया और आनंदित हुई। लज्जा से अपने सिर को झुकाकर, वह इस प्रकार अपने संपूर्ण वृत्तांत को श्रीबल से निवेदन करने लगी -

मैं पभखंडपुर के महसेन राजा की सुलक्ष्मणा पुत्री हूँ। पिता ने मेरा विवाह श्रीबल के साथ निश्चय किया था। एकदिन जब मैं उद्यान में खेल रही थी, तब किसी पापी विद्याधर ने मेरा अपहरण कर लिया था। मुझ रोती अबला को इस महावन में छोडकर, वह विद्याधर अपराजिता विद्या की सिद्धि में प्रयत्नशील है। मैंने मृत्यु का निश्चय किया और अवसर प्राप्तकर यहाँ आयी हूँ। जब वे दोनों इस प्रकार परस्पर आलाप कर रहे थे, तब उनकी धारणा बिना ही श्रीगुप्त सिद्धपुत्र भी वहाँ पर आ गया। उसे देखकर श्रीबल ने पूछा - सिद्ध! क्रोधित पिशाच से कैसे छूटे हो? श्रीगुप्त ने कहा - मित्र! इसने माया से तुझे व्यामोहित कर दिया था। मैं सिद्धविद्यावाला होते हुए भी, तेरे वियोग से दुःखी बना। तेरे सत्त्व से प्रसन्न होकर, पिशाच ने तुझे इस कन्या के समीप छोडा है। इसलिए तुम विलंब मत करो। शीघ्र ही गांधर्वविवाह से इसके साथ पाणिग्रहण करो। श्रीबल ने भी वैसा ही किया। पश्चात् विद्या की सहायता से, वे सभी पांडुपुर पहुँचे। राजा ने यह संपूर्ण वृत्तांत पभखंडपुर के महसेन राजा को ज्ञापन कराया। महसेन राजा भी उस चरित्र को सुनकर आनंदित हुआ। अपने मंत्रियों को भेजकर, सुलक्ष्मणा का पाणिग्रहण महोत्सव कराया।

इधर पिता की आज्ञा लेकर, बलवान् शतबल अपने भाई श्रीबल की खोज में निकल पडा। बीच में तापस आश्रम आया। वहाँ पर रो रही तापसियों को देखकर, शतबल ने कारण पूछा। उन्होंनें कहा - इस प्रदेश में असमंजस की स्थिति उत्पन्न हुई है। यह देखकर हम सब दया से शोकातुर बनी है। यहाँ पर

कौन-सी घटना बनी है? इस प्रकार शतबल के पूछने पर उन्होंनें कहा - रात के समय यहाँ पर पभरथराजा की पुत्री लक्ष्मणा ने आवास किया था। वह शतबल से विवाह करने का आग्रह कर रही थी। पिता के द्वारा आज्ञा दिए जाने पर, उसने पाडुंपुर की ओर प्रस्थान किया। रात्रि के समय, लक्ष्मणा ने यही पर आवास किया था। उससे पहले किरात देश के राजा कुंजर ने लक्ष्मणा की माँग की थी। पभरथ राजा के द्वारा निषध करने पर, कुंजर राजा लक्ष्मणा को प्राप्त करने के लिए निरंतर मौका देखने लगा। लक्ष्मणा को यहाँ पर रुकि हुयी जानकर उस दुर्बुद्धि कुंजर ने इस प्रदेश में आकर उसका अपहरण कर लिया है। शतबल को प्राप्त नही करती हुई वह बिचारी मर जाएगी। इस प्रकार की संभावना से आज हम शोकमग्न बनीं हैं। यह सुनकर तत्काल ही शतबल ने सेना लेकर उस शत्रु का पीछा किया। कुंजर को युद्ध में घायल कर, लक्ष्मणा को वापिस प्राप्त कर ली। पांडुपुर में आया और शुभदिन में उसके साथ पाणिग्रहण किया। सभी राजाओं ने लक्ष्मणा का विवाह महोत्सव मनाया।

इस प्रकार तुम चारों ने भी मुनिदान से अद्‌भुत सुख प्राप्त किया है। मुनिभगवंत से यह चरित्र सुनकर, उन चारों को जातिस्मरणज्ञान हुआ और अपने पूर्वभव को देखा। पश्चात् उन्होंनें मुनिराज से पूछा - सुलक्ष्मणा का अपहरण करनेवाले उस विद्याधर का क्या हुआ है? उसके बारे में कहे। मुनिराज ने कहा - वह विद्या से भ्रष्ट हो गया था और सैंकड़ों कष्ट प्राप्त किए। एकदिन मुनि की देशना सुनकर प्रतिबोधित हुआ और दीक्षा ग्रहण की। ध्यानमय अग्नि से आठों प्रकार के कर्म जलाकर निर्मल केवलज्ञान प्राप्त किया और क्रम से निर्वाण भी प्राप्त कर लिया है। इस प्रकार मुनिभगवंत की देशना से श्रीबल राजा संविग्न मनवाला हुआ। शतबल को राज्य सौंपकर, वह दीक्षा ग्रहण करने के लिए खडा हुआ। उतने में ही शतबल ने कहा - तात! मैं भी आपके साथ संयम अंगीकार करनेवाला हूँ। मैंने भी यह निश्चय कर लिया है। शतबल के आग्रह को जानकर, श्रीबल राजा ने राज्यपद पर गिरिसुंदर को तथा युवराजपद पर रत्नसार का अभिषेक किया। महोत्सवपूर्वक श्रीबल-शतबल दोनों भी महामुनि बने। और असिधार सम व्रत का पालन करने लगे।

गिरिसुंदर भी राज्यलक्ष्मी का परिपालन करने लगा। एकदिन स्वप्न में उसने खुद को कल्पवृक्ष की शाखा खाते हुए देखा। मंगल वाजिंत्रों के शब्द से, राजा प्रातः जाग गया। स्वप्न के फल को उच्च मानता हुआ उद्यान के जिनालय में आया। अरिहंत भगवंत को नमस्कार किया। बाहर आम्रवृक्ष के नीचे खडे महामुनि को देखकर, पाँच प्रकार के अभिगमों से वंदन कर उनकी धर्मदेशना सुनी। गिरिसुंदर राजा संवेग मनवाला हुआ और रत्नसार से अपनी दीक्षा की बात

कही। रत्नसार ने भी व्रत ग्रहण की इच्छा प्रकट कर राजा को प्रोत्साहित किया। मंत्रियों की संमति से सुरसुंदर को राज्य सौंपकर जयनंद गुरु के समीप में दोनों ने यथाविधि दीक्षा ग्रहण की। पश्चात् आयुष्य पूर्ण कर दोनां नौवें ग्रैवेयक में देव हुए।

इस प्रकार पं. श्रीसत्यराजगणि द्वारा विरचित श्रीपृथ्वीचंद्रमहाराजर्षि चरित्र में गिरिसुंदर-रत्नसार महर्षि का चरित्र रूपी अष्टम भव वर्णन संपूर्ण हुआ।

नवम भव

बंग देश में ताम्रलिप्ती नामक महानगरी है। वहाँ पर सुमंगल राजा राज्य करता था। उसकी श्रीप्रभा और स्वयंप्रभा नामक पत्नियाँ थी। ग्रैवेयक से गिसिसुंदर देव च्यवकर श्रीप्रभा की कुक्षि में पुत्र के रूप में अवतीर्ण हुआ। तब श्रीप्रभा ने ध्वज को स्वप्न में देखा था। जिस प्रकार पूर्व दिशा सूर्य को जन्म देती है, वैसे ही श्रीप्रभा ने समय पर पुत्र को जन्म दिया। स्वप्न के अनुसार उसका कनकध्वज नाम रखा गया। रत्नसार देव भी ग्रैवेयक से च्यवकर स्वयंप्रभा की कुक्षि में पुत्र के रूप में अवतीर्ण हुआ। राजा ने उसका जयसुंदर नाम रखा। क्रम से वे दोनों बढ़ते हुए, पावन यौवन अवस्था में पदार्पण किया। पूर्व भव के अभ्यास से दोनों परस्पर प्रेमशील थे। वह कला तथा वह विद्या नहीं थी, जिसे दोनों ने शीघ्रतया सीखी न हो। एकदिन वे दोनों राधावेध का अभ्यास कर रहे थे। सुरवेग और सूरवेग नामक दो विद्याधरों ने उन दोनों को अभ्यास करते हुए देखा। कनकध्वज तथा जयसुंदर पर फूलों की वर्षा कर, वे दोनों विद्याधर वहाँ से चले गये। अहो! देवों ने इन दोनों की पूजा की है, ऐसी दोनों की प्रख्याति लोगों में फैल गयी। लोगों से इस बधायी को सुनकर, सुमंगल राजा अत्यंत आनंदित हुआ और विकसित मनवाला होते हुए, खुद को पिताओं में अग्रगणनीय मानने लगा।

एकदिन राजसभा में बैठा सुमंगल राजा सुंदर वाजिंत्रों के घोष सुनकर हृदय में आश्चर्यचकित हुआ। इतने में ही सभा में, आकाश मार्ग से दो विद्याधर आएँ। दोनों विद्याधरों ने राजा को नमस्कार कर कहा - देव! जुदी-जुदी माताओं से उत्पन्न **सुरवेग तथा सूरवेग** नामक दो भाई वैताढ्यपर्वत पर दोनों श्रेणियों के विद्याधर वैभव का परिपालन कर रहें हैं। उन दोनों की सो-सो कन्याएँ हैं। एकदिन आपके दोनों पुत्रों को राधावेध करते देखा था। उनके कलाकौशल से खुश होकर दोनों विद्याधरों ने पुष्पवृष्टि की थी। और अपनी सभा में भी उनके इस गुण की प्रशंसा की थी। आपके कुमारों के गुण सुनकर वे सभी कन्याएँ, अनुरागवाली बनी है। इसलिए आपके कुमारों के साथ इन कन्याओं का विवाह करने के लिए सुरवेग और सूरवेग सभी विद्याधर तथा कन्याओं को साथ लेकर यहाँ पर चले आरहे हैं। आपको सूचना देने के लिए हमें पहले भेजा है। यह सुनकर सुमंगल राजा आनंदित हुआ और दोनों विद्याधर राजाओं के संमुख गया। निवास स्थान, भोजन

आदि से संमान कर, राजा ने विवाह की स्वीकृति दी। सुवेग ने कनकध्वज को सो कन्याएँ दी और सूरवेग ने जयसुंदर को सो कन्याएँ दी।

दोनों कुमारों ने दूसरी भी बहुत-सी राजकन्याओं के साथ विवाह किया। उससे प्रत्येक को पाँच सो पत्नियाँ हुयी।

सुमंगल राजा अपने पुत्रों की ऋद्धि देखकर अत्यंत विस्मित हुआ। प्रभातकाल में जागकर अपने हृदय में सोचने लगा - अहो! मेरे पुत्रों का प्रबल पुण्योदय है, जिसके प्रभाव से भूचर तथा विद्याधर राजा भी इनकी सेवा करतें हैं। सर्वत्र पुण्य ही प्रधान है। सद्पुत्ररत्नों को प्राप्तकर, अब मुझे भी परलोक हित के बारे में सोचना चाहिए। सद्धर्म की सेवा से परलोकहित होता है। किंतु लोक में सद्धर्मसेवी दुर्लभ हैं। उनमें सत्यवादी और मृषावादी का भेद कैसे जाना जा सकता है? मृषावादियों के वचन से तो उल्टा अनर्थ ही होता है। इस प्रकार विचारकर राजा ने मतिसुंदर मंत्री से पूछा। उसने कहा - प्रभु! समस्त संन्यासियों से धर्म के बारे में पूछकर, आप अपने हृदय में निर्णय करे। जो संसार और विषय से विमुख है, उसे सद्धर्म जाने और वह ही परलोक हितेच्छुओं से सेव्य है।

जब राजसभा में इस प्रकार की चर्चा चल रही थी, तब आकाश में देवदुंदुभि की आवाज सुनायी दी। जयकार शब्द के साथ नागरिक लोग उद्यान की तरफ चल पडें। राजा भी आश्चर्यचकित होकर कुछ सोचने लगे, उससे पहले ही वनपालक ने आकर विज्ञप्ति की - प्रभु! देवरमण उद्यान में मूर्तिमंत धर्म के समान श्रीस्वयंवरसूरि पधारे हुए है। उन्हें आज प्रातः ही केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है। उनके पाद कमल की सेवा करने के लिए, देव भी उत्साहसहित भ्रमर के समान लीन बन रहें हैं। इसलिए स्वामी! उन भगवान् को नमस्कार करने के लिए तथा तत्त्व जानने के लिए, आपका वहाँ पधारना उचित है। यह सुनकर अपने मनोवांछित की सिद्धि मानता हुआ राजा, चतुरंगसेना के साथ गुरु के समीप आया। उनकी स्तुति तथा नमस्कारकर, राजा पृथ्वीतल पर बैठा। तब केवलीभगवंत ने इस प्रकार देशना प्रारंभ की - भव्यप्राणियों! अपार तथा महाभयंकर इस संसार रूपी अटवी में सिद्धगति के कांक्षी भव्यप्राणियों को शुद्धमार्ग मिलना दुर्लभ है। कुमार्ग बहुत होने से, मोक्षार्थी जीव भी उनमें मोहित होकर, महाभयंकर दुःख प्राप्त करतें हैं। इस भव अरण्य में राग रूपी उग्र सिंह, द्वेष रूपी शेर, मोह रूपी राक्षस, क्रोध रूपी दावानल, मान रूपी पर्वत, गूढ माया रूपी कुमार्ग और लोभ रूपी कूप है। इन सभी के द्वारा अखिल प्राणीगण दुःखित किए जाते हैं। विषय रूपी विषवृक्षों के नीचे विश्राम करतें प्राणी, अचेतनता प्राप्त कर लेते हैं। मित्र रूप में धूर्त्त लोग, भव्यप्राणियों का हरणकर, कुमार्ग पर चढातें हैं। और अज्ञान से दिग्मूढ बनकर दुर्गति के खड्डे में गिर जातें हैं। वे मूढप्राणी कभी भी भव-अटवी का पार प्राप्त

नहीं कर सकतें हैं। इसलिए भव्यप्राणियों! कुमार्ग छोडकर, शुद्ध सद्मार्ग पर प्रयाण करो, जिससे शीघ्र ही परम निर्वाणनगर प्राप्त करोगे।

राजन्! सर्व सावद्य व्यापार का त्याग, यही शुद्ध मार्ग का स्वरूप है। पुनः शत्रु-मित्र आदि पर समचित्त होना चाहिए। तीर्थनाथ केवलज्ञानी भगवंत ने यह ही मोक्षमार्ग का निवेदन किया है। इसलिए भाग्यशाली! सर्वथा तुम मोक्षमार्ग में उद्यमशील बनो। केवलीभगवंत की देशना सुनकर, राजा कर्मग्रंथि रहित बना और भगवंत से विज्ञप्ति की - भगवन्! मैंने जान लिया है कि लौकिक देव राग-द्वेष आदि से दूषित है। स्त्री, शस्त्र, गीत, नृत्य, रोष, तोष, कपट आदि से वे भी हमारे समान ही है। इसलिए वे प्राणियों के एकांत हितकर्त्ता कैसे हो सकतें हैं? उनका प्ररूपित धर्म मोक्ष देने में कैसे समर्थ हो सकता है? इससे श्रीजिनेश्वर प्रणीत मार्ग ही हमारे लिए प्रमाण है। दुर्लभ निधि के समान उस धर्म को देखकर भी, जो अधमलोग इसे ग्रहण नही करतें है, वे संसार, दुःख, दारिद्र, उपद्रव आदि का कदापि पार नही पातें हैं। अथवा परचिंता से मुझे क्या प्रयोजन ह? मैं तो आपके समीप ही चारित्र ग्रहण करुँगा, इस प्रकार गुरु से विज्ञप्तिकर, राजा महल में गया। पश्चात् प्रशस्त मुहूर्त्त में कनकध्वज को राज्यपद तथा जयसुंदर को युवराजपद पर स्थापितकर, सुमंगलराजा ने सामंत, मंत्रियों के साथ बडे आडंबरपूर्वक गुरु के चरणमूल में सुंदर चारित्र ग्रहण किया।

राज्य का परिपालन करते हुए भी कनकध्वज राजा तथा जयसुंदर, पिता के द्वारा ग्रहण की गयी प्रव्रज्या का सदैव चित्त में स्मरण करते थे। बडे भोग भोगते हुए भी, विद्याधारी, किन्नरीयों के द्वारा गुण समूह गाये जाने पर भी, अर्ध भरतक्षेत्र के राजाओं के द्वारा सेवित होते हुए भी, वे दोनों हमेशा गुरुसंग की इच्छा करतें थे। गज, अश्व, रथ, रत्न आदि समूह से शोभित होने पर भी, शम-सागर में निमग्न उन दोनों को मोह-पिशाच लेशमात्र भी क्षोभित नही कर सका। एकदिन सुबह जब कनकध्वज राजा जागा, तब मंगलपाठक के इस अर्थ प्रमाणवाले श्लोक को सुना - स्वामी! यहाँ रहते हुए भी, तीनों जगत् में व्यापक आपके प्रताप को देखकर, सूर्य भी लज्जित होकर उदयपर्वत के अंदर बैठा है। यह सुनकर राजा अपने हृदय में सोचने लगा - पृथ्वी कितनी है? और मेरे वश में कितनी है? दिग्यात्रा का मनोरथ करते हुए, कनकध्वज राजा सोचने लगा - यदि दिग्यात्रा करुँगा, तो पूर्व महापुरुषों के द्वारा निर्मित जिनमंदिरों के दर्शन होंगें। तीर्थंकर भगवंत की जन्म, दीक्षा, केवल और निर्वाण भूमियों पर सुंदर मंदिरों को देखकर हर्षभर से वंदन करुँगा। जीर्ण प्रायः मंदिरों का उद्धार करुँगा तथा जिनमत के शत्रुओं का निग्रह करुँगा। तथा साधु, साध्वीओं का संमान करुँगा और दीन, दुःखियों का दान आदि देकर उद्धार करुँगा। राजा ने जयसुंदर से अपने अभिप्राय

के बारे में कहा। उसने भी कहा कि-महाराज! यह योग्य ही है। पश्चात् राजा ने दिग्यात्रा प्रयाण की भेरी बजवायी।

शुभ दिन में कनकध्वज राजा ने सामंत, मंत्री, सार्थवाह, अंतःपुर, श्रेष्ठी, सैनिक तथा हाथी, अश्व, रथ, ऊंट, खच्चर आदि के साथ प्रयाण किया। राजाओं ने उसका शस्त्र, वस्त्र, रत्न, अश्व, हाथी, रथ आदि भेंट के रूप में समर्पितकर सत्कार किया। पर्वत, गाँव, नगर, नदी, उद्यान के सरोवरों में क्रीडा करता हुआ, रम्य स्थानों पर जिनचैत्य बंधाता हुआ, जीर्णचैत्यों का उद्धार करता हुआ, साधुओं की पूजा करता हुआ, श्रावकों का बहुमान करता हुआ, हजारों वर्ष पर्यंत भरतक्षेत्र में पर्यटन किया। पुरुषोत्तम राजा के द्वारा आह्वान करने पर, कनकध्वज राजा अयोध्या नगरी में आया। उद्यान में विशाल चैत्य देखकर खुश हुआ। स्वर्ण, मोती, मणि तथा पुष्पमाला से जिनेश्वर भगवंत की पूजाकर स्तवना की। राजा ने बाहर निकलकर मधुर शब्दों में आगम का पठन कर रहें मुनियों को तथा बीच में वृक्ष के नीचे बैठे सूरिभगवंत को देखा। अतिहर्ष से उनके समीप में जाकर, जंगम तीर्थ सदृश गुरु को वंदनकर बैठ गया। तब सूरिभगवंत ने धर्मदेशना प्रारंभ की - भव्यप्राणियों! मनुष्य जाति आदि सामग्री प्राप्तकर, सर्व शक्ति से सदा धर्म में उद्यम करना चाहिए। मानवभव निष्फल न जाए वैसे धर्म में प्रयत्न करना चाहिए। इत्यादि गुरु ने देशना दी।

मुनिपुंगव के द्वारा देशना देकर विराम पाने पर, कपिञ्जल नामक पुरोहित ने क्रोधपूर्वक उनसे कहा - सुख का मूल कारण धर्म है, इसलिए चतुर पुरुषों को धर्म का आचरण करना चाहिए। यह सब बातें अत्यंत पाखंडी मुंडित मस्तकवालों का एक नाटक है। संपूर्ण धर्म जीव के सद्भाव में होता है। प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से तथा आग्राह्यता के कारण जीव की संभावना दिखायी नही देती है। स्तंभ, घडा, कमल आदि के समान, जीव आँखों से देखा नही जा सकता है। बांसुरी, ढोल, वाद्य आदि के समान, जीव कानों से सुना नहीं जा सकता है। सुगंधीपदार्थ, धूल आदि के गंध के समान, वह नाक से ग्रहण नही किया जा सकता है। मधुर, आम्ल आदि रस के समान, उसे जीभ से चखा नहीं जा सकता है। शीत, उष्ण आदि स्पर्श के समान, उसका स्पर्श नही किया जा सकता है। पाँचों इंद्रियों से अगोचर होने के कारण, जीव नही है। यथार्थ में जीव विद्यमान नही है, किंतु मनुष्य, तिर्यंच के शरीर का जो व्यवहार है, वह पाँच भूतों का ही परिणाम है।

कपिञ्जल की दलीलें सुनकर, गुरु ने कहा - भद्र! जीव की अविद्यमानता सिद्ध करनेवाला यह तेरा ज्ञान विद्यमान है अथवा अविद्यमान है? पाँच इंद्रियों से अगोचर होने से तथा अमूर्त्तत्व के कारण, वह ज्ञान अविद्यमान कहा जा सकता है। ज्ञान के अविद्यमान सिद्ध हो जाने से, प्रतिषेध के अभाव से जीव सिद्ध ही है।

और दूसरी बात यह है कि - रूपादि पदार्थ बधिर, अंध व्यक्ति को प्रत्यक्ष नहीं होने पर भी, वे ही पदार्थ अक्षत अंगवाले मनुष्य से प्रत्यक्ष है। वैसे ही छमस्थों से यह जीव अप्रत्यक्ष होने पर भी ज्ञान आदि अतिशय से संपन्न परममुनि को जीव प्रत्यक्ष ही है। इंद्रिय ग्राह्य गुण रहित होने के कारण, यह जीव चर्मचक्षु प्राणियों को अप्रत्यक्ष है। किंतु इसे सिद्ध और सर्वज्ञ भगवंत तथा ज्ञानसिद्धिवाले साधु देख सकतें हैं। भद्र! जो तूंने कहा था कि चेतना, यह पाँच भूतों का परिणाम है, तो क्या वे भूत चेतनावाले हैं अथवा अचेतना हैं? यदि चेतनावालें है तो एकेन्द्रिय आदि जीव सिद्ध हो गये हैं। अथवा अचेतनावालें हैं तो उनके समूह से भी चेतना का परिणाम कैसे संभवित है? रेती पीसने से तैल नहीं निकलने के समान, यदि इन पाँच भूतों में प्रत्येक में चेतना नही है, तो उनके समुदाय में भी चेतना नही है। तुम यह मत कहना कि जल, गुड, चावल आदि प्रत्येक में मद नहीं होते हुए भी संयोग से मद उत्पन्न करने का सामर्थ्य प्राप्त किया जा सकता है क्योंकि जल आदि में बलवृद्धि उत्पन्न करने से तथा मद का लेश होने से सामर्थ्य है। इत्यादि मुनिराज के द्वारा सविस्तार कहने से, प्रत्युत्तर देने में असमर्थ होने के कारण कपिञ्जल मौन रहा। गुरु ने पुनः कहा - भद्र! यह तेरा स्वाभाविक कुबोध नही है। किंतु पूर्व पाप से जन्मांध भाव को प्राप्त तथा मिथ्यात्व के उदय से, डर से आच्छादित केशव नामक मामा ने तुझे दुष्ट शिक्षा दी है। तब पुरुषोत्तम राजा ने मुनिपुंगव को नमस्कार कर इस प्रकार विज्ञप्ति की - भगवन्! इसने पूर्व में क्या किया था, जिससे ऐसा फल मिला है? मुनि ने कहा -

इसी भरतक्षेत्र में वीरांगद नामक राजा था, जिसने शत्रु समूह को दास बना दिया था और अपने प्रताप से सूर्य को भी हल्का बना दिया था। चंद्र पर कलंक के समान, सकल गुणों से युक्त होने पर भी, राजा ने शिकार का दूषण नही छोडा। एकदिन राजा शिकार करने के लिए वन में पहुँचा। हिरण, खरगोश आदि का शिकार किया। इसीबीच एक सूअर का बालक झाडियों के बीच किसी जगह पर छूपकर खडा हुआ। निर्दयी राजा ने उसके वध के लिए बाण फेंका। पश्चात् उस स्थान पर जाकर देखने लगा। सूअर तो दिखायी नही दिया किंतु ध्यानस्थ साधु के पैरों के बीच, उस बाण को पडा देखा। राजा चिंतित होकर सोचने लगा - अहो! मैं महादुष्ट चरित्रवाला हूँ। मुनिघात के पाप से लेशमात्र भी स्पर्श नही किया गया हूँ। इस प्रकार विचार करते हुए विनयपूर्वक शरीर झुकाकर साधु के चरणकमलों में गिरा। मुनिवर से क्षमा माँगी और कहा-मुझ पापी ने यह अपराध किया है। मुझ पर प्रसन्न बने, मैंने अपना सिर आपके चरणों में झुका दिया है। मुनि ने ध्यान संपूर्ण कर कहा - राजन्! डरो मत! मुनि रोष-तोष से युक्त नही होते हैं। केवल मेरा वचन सुनो। हाथी के कान समान चंचल ऐसे भोग

साधनों में, पापारंभों में क्षणमात्र के लिए भी रति करना तुझे योग्य नही है। मुनि के वचन सुनकर राजा प्रतिबोधित हुआ। बोधि प्राप्तकर वीरांगद राजा ने अपने मन को माया रहित किया और श्रावकधर्म का अंगीकार किया।

उसी नगरी में जिनप्रिय नामक श्रावक निवास करता था। वह वीरांगद राजा की जिनपूजा, सामायिक, पौषध आदि धर्मकार्यो में सहायता करता था। इसलिए राजा उसे गुरु की बुद्धि से मानने लगा। वहीं पर मोहन नामक केवल नामधारी श्रावक रहता था। एकदिन श्रावकाचार के अनुसार जीवन व्यतीत करते जिनप्रिय से मिलकर, उसने कहा - मुझे उस साधार्मिक राजा के दर्शन कराओ, जिससे उनकी निश्रा पाकर मैं निश्चिंत बन जाऊँ। जिनप्रिय ने भी वैसा ही किया। राजा ने उसे पूजा आदि कार्यो में नियुक्त किया। राजमान्य होने के कारण, मोहन शेष लोगों में भी गौरवनीय बन गया क्योंकि महान् पुरुषों के द्वारा स्वीकृत किया गया कौन-सा पुरुष पृथ्वीतल पर पूजनीय नही होता है?

राज्य के योग्य ऐसे अपने वीरसेन पुत्र का स्मरण कर, राजा ने कामभोगों से निर्वेद पाया और श्रेष्ठ ऐसे चारित्र का परिणामवाला बना। राजा ने मोहन से कहा - धर्माचार्य की गवेषणा करो, जिससे मैं उनके चरणकमलों के समीप में दीक्षा ग्रहण कर सकूँ। राजा की बातें सुनकर, मोहन विचार करने लगा - इस राजा के बिना मेरी सुखपूर्वक आजीविका नही होगी। तब धूर्त्तो में अग्र ऐसे मोहन ने कहा - देव! इस समय यहाँ पर कोई ऐसे श्रेष्ठ गुरु दिखायी नहीं दे रहे है, जिनका जहाज के समान आश्रय लेकर भवसागर तीरा जा सके। श्रमणत्व दुष्कर है तथा पवन के समान मन चंचल है। इसलिए यह गृहस्थधर्म ही श्रेष्ठ है जिसका आप आचरण कर रहे है। संयम की विराधना करनेवालों का भवसमुद्र अनंत होता है। पलंग से नीचे गिरनेवाले मनुष्य को उतनी पीडा नही होती है जितनी पर्वत से नीचे गिरनेवाले को होती है। इसलिए भव से उद्विग्न होते हुए भी आप दीक्षा ग्रहण न करे। पौषध आदि धर्मकृत्य करते हुए यथाशक्ति गृहस्थधर्म का पालन करे।

राजा ने मोहन की उपेक्षा कर शीघ्र ही जिनप्रिय से पूछा। उसने राजा को संयम लेने के लिए प्रोत्साहित किया। इसीबीच उद्यान में जयकांत मुनि पधारे। राजा ने जिनप्रिय के साथ संयम ग्रहण किया। निरतिचार चारित्र का अनुपालन कर, आयुष्य क्षय हो जाने पर राजा महाशुक्र देवलोक में इंद्र का सामानिक देव हुआ। मोहन अब द्वेषी के समान मुनियों का छिद्रान्वेषी, दोषवादी तथा सतत प्रमादी, अज्ञानी और मानी बना रहा। आयुष्य पूर्ण कर वह विन्ध्यपर्वत पर बडा हाथी हुआ। भिलों ने उसे बांधकर मथुरा नरेश को सौंप दिया। पूर्वभव के अभ्यास से हाथी के भव में भी साधुओं का दुश्मन बना। एकदिन उद्यान में साधुओं को देखकर, क्रोध से उनके पीछे दौडा। गहरे खड्डे में गिरकर, आयुष्य

पूर्ण हो जाने से बाजपक्षी बना। वहाँ से तीसरी नरक में गया और पश्चात् वन में सिंह बना। वहाँ से दूसरी नरक में आया। तीन सागरोपम प्रमाण आयु को महादुःखपूर्वक पूर्ण कर, श्रीधन नामक नगर में, कामदत्त व्यापारी के घर में वसुदत्ता पत्नी की कुक्षि से पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ। उसका सुमित्र नाम रखा *गया। क्रम से बढते हुए यौवन अवस्था में आया।* पूर्व कर्म के प्रभाव से वह दुःख, दौर्भाग्य पात्र बना।

जिनप्रिय देव भी उसी श्रेष्ठ नगर में, विनयन्धर श्रेष्ठी का गुणन्धर नामक पुत्र हुआ। वह भी क्रम से यौवन अवस्था में आया। पूर्वभव के अभ्यास से सुमित्र पर गुणन्धर का स्नेह था। माता-पिता के कालधर्म प्राप्त करने के बाद, गुणन्धर की संपत्ति धीरे-धीरे क्षीण होने लगी और वह लोगों में तिरस्कारपात्र बनने लगा। गुणन्धर ने एकदिन मधुर वाणी में सुमित्र से कहा - हम दोनों देशांतर जाकर धनार्जन करतें हैं। कपटता की वृत्ति से सुमित्र ने भी उसके वचन स्वीकार *किए। धन कमाने के लिए बेचने की सामग्री साथ* में लेकर दोनों ने परदेश की ओर प्रयाण किया। अनेक देशों का उल्लंघन करते हुए वे दोनों एक बडी अटवी में आएँ।

किसी सार्थ ने भी उसी अटवी में आवास किया था। कौतुकता से वे दोनों वन में घूमनें लगें। दोनों उदुंबर वृक्ष की छाया में वस्त्र के ऊपर सो गएँ। गुणन्धर निद्राधीन हो गया और सुमित्र वहाँ से पलायन कर वापिस सार्थ में आगया। भिलों ने उस गुणन्धर को पकड लिया है, इसलिए लोगों! तुम भाग जाओ इस प्रकार कहकर उसने सार्थ को वहाँ से चलने की प्रेरणा की। और स्वयं कपट के प्रयोग से उस धन का मालिक बन गया। अब ब्रह्मा/विधाता ने मुझे कोमल दृष्टि से देखा है, इस प्रकार के विचारों से, सुमित्र आनंदमग्न बन गया। उतने में ही मध्याह्न के समय दावानल की अग्नि आकाश में व्याप्त होने लगी। संपूर्ण बेचने की सामग्री जल गयी और सभी लोग एक दिशा से दूसरी दिशा में भागनें लगे। सर्वस्व नष्ट हो जाने से, उस दुष्ट हृदयवाले सुमित्र ने भी अपने प्राणों को बचाकर वहाँ से पलायन किया। भूख-प्यास से पीडित तथा सूर्य के *ताप से थका हुआ वह पर्वत के तट पर पहुँचा। वहाँ पर भीलों ने उसे पकडकर,* भीगी चामडी से बांध दिया। तीन रात्रि के बाद, भिलोंनें उसे छोड दिया। पश्चात् भिक्षावृत्ति से जीवन यापन करते हुए पृथ्वीतल पर विचरणे लगा क्योंकि पापकर्मों की ऐसी ही गति होती है।

इधर गुणन्धर सुमित्र के ऊपर विश्वास से सो गया था। पल्लीपति ने जगाकर वहाँ पर सोने का कारण पूछा। गुणन्धर ने भी अपना यथास्थित वृत्तांत पल्लीपति से कहा। पश्चात् पल्लीपति ने प्रयत्नपूर्वक अपने सैनिकों के द्वारा वहाँ

पर सर्वत्र सुमित्र की शोध करायी। सुमित्र के नही दिखने पर, पल्लीपति ने दुःख धारण करते हुए गुणन्धर से यह बात कही। पल्लीपति ने निवास स्थान, खान आदि अर्पणकर उसका अत्यंत वात्सल्य किया। इस प्रकार वहाँ पर इष्ट वार्त्तालाप आदि से गुणन्धर के कितने ही दिन बीत गएँ। पल्लीपति ने उसे सहस्रवेधि महारस देते हुए कहा - निर्मल ऐसे इस रस के लेशमात्र से भी चाँदी, कलाई,तांबा, लोखंड क्षणमात्र में ही स्वर्ण बन जातें हैं। एकदिन पल्लीपति की आज्ञा लेकर, वह वीरशिरोमणि रस की तुंबडी साथ में लेकर कुछ सैनिकों के साथ वीरपुर गया। रात्रि के समय अन्य प्रवृत्ति रहित तथा इष्ट वियोग से दुःखित होते हुए जब वह सार्थ के मार्ग का अवलोकन करते हुए बैठा था, तब अचानक ही एकदिन भूख-प्यास से पीडित और दुर्दशा प्राप्त सुमित्र उसकी नजरों में चढा। वह कपटी गुणन्धर के कंठ में आलिंगन कर रोने लगा। गुणन्धर उसे आश्वासित कर आगे का वृत्तांत पूछा। तब सुमित्र ने कहा - जब तुम निद्राधीन बन गए थे, तब भिलों की घाड पडी थी। भिलों ने मुझे कैद कर लिया था। कभी मौका प्राप्तकर, मैं वहाँ से भाग निकला। तुझे ढूँढते हुए यहाँ पर आया हूँ। आज भाग्य से तेरे दर्शन हुए है। गुणन्धर ने भी पल्लीपति से रस लाभ पर्यंत अपना वृत्तांत कह सुनाया। रस ग्रहण की इच्छा से उस कपटी ने भी कहा - मित्र! रस की तुंबडी किसी स्थान पर छिपाकर, विविध कौतुक देखने के लिए हम दोनों देशांतर में पर्यटन करें। ऐसा निर्णय कर, दोनों विविध बेचने की सामग्री लेकर ताम्रलिप्ती नगर गएँ। वहाँ पर उन दोनों को बहुत लाभ हुआ।

ताम्रलिप्ती से जहाज में चढकर, दोनों ने चीनद्वीप की ओर प्रयाण किया। वहाँ से बहुत सामग्री ग्रहणकर, वापिस अपने देश लौटनें लगे। समुद्र का बहुत-सा भाग पार कर लिया था। तब सुमित्र सोचने लगा - इस गुणन्धर को समुद्र में फेंककर, मैं सर्व संपत्ति का मालिक बन जाता हूँ। ऐसा विचार कर, वह रात्रि के समय उठा। तब देह चिंता के लिए जहाज के अंत में खडे गुणन्धर को देखा। सुमित्र उसे समुद्र में फेंकने लगा। उतने में स्वकर्म के दोष से वह स्वयं समुद्र में गिर पडा। क्योंकि पापीयों को सुख कहाँ से प्राप्त हो सकता है? सुमित्र की यह स्थिति देखकर, गुणन्धर विलाप करने लगा - हा! हा! मेरे मित्र को अकस्मात् यह क्या हो गया है? अत्यंत शोक करने लगा। पश्चात् गुणन्धर वापिस ताम्रलिप्ती में आया।

ताम्रलिप्ती नगरी में ज्ञानवान् धमर्षि पधारे हुए थे। उन्होंने गुणन्धर को इस प्रकार प्रतिबोधित किया - वत्स! जिसके लिए तुम दुःखित हो रहे हो, उसके कृत्य के बारे में सुनो। उस कुमित्र ने धन की इच्छा से, तुझ सोये हुए को वन में अकेला छोड गया था। यह तुमको समुद्र में फेंकना चाहता था, किंतु वह स्वंय ही

गिर पडा। अहो! आपदाओं में, पूर्वभव के उपार्जित पुण्य ही रक्षा करतें हैं। पहले भी जिनप्रिय पर मोहन का मात्सर्य था। उसी अभ्यास से सुमित्र का तुझ पर द्वेष था। गुणन्धर ने नमस्कार कर मुनिराज से पूछा - प्रभु! वह सुमित्र अब मरकर कहाँ पर उत्पन्न हुआ है? मुनिभगवंत ने कहा - अयोध्या नगरी में वह ब्राह्मण का पुत्र हुआ है। उसका नाम केशव है। वह जन्म से अंध तथा दुःखी है। भव से उद्विग्न बनकर गुणन्धर ने उन मुनि के समीप में दीक्षा ग्रहण की। शास्त्रों का अध्ययन कर आगम धारकों में श्रेष्ठ बना है। वह गुणन्धर मैं ही हूँ और तुझे प्रतिबोधित करने के लिए विहार करते हुए यहाँ पर आया हूँ। यही केशव ब्राह्मण का चरित्र है।

वीरांगद राजा भी सातवें स्वर्ग से च्यवकर, इस नगर का पुरुषोत्तम राजा बना है। इस प्रकार मुनिराज के वचन सुनकर पुरुषोत्तम राजा संविग्न बना। विषयों से उद्विग्न बनते हुए संयम लक्ष्मी की प्रार्थना करने लगा। मुनि के वचन से बोधि प्राप्तकर, कपिञ्जल ने हाथ जोडकर कहा - प्रभु! मुझे भी प्राणियों के हित करनेवाली ऐसी दीक्षा दे। पुनः पुरुषोत्तम राजा ने मुनि से पूछा - भगवन्! कपिञ्जल ने पूर्वभव में क्या आचरण किया था? गुरु ने कहा - यह वसंतपुर में ब्रह्मचर्य अणुव्रतधारक शिवदेव नामक श्रावक था। व्युद्ग्राहित मोह से मुनियों पर मात्सर्य धारण करता था। आयुष्य पूर्ण कर किल्बिषिक हुआ। बाद में चंडालों की जाति में उत्पन्न हुआ। वहाँ से धूमप्रभापृथ्वी में नारक हुआ। नरक से निकलकर यह कपिञ्जल हुआ है। इसलिए केशव पर इसकी प्रीति है। केशव के वचन से कुलक्रम से प्राप्त धर्म को छोडकर, इसने चार्वाकमत का आश्रय लिया है। यहाँ पर कुसंग ही हानि करनेवाला है। सरल ऐसा कपिञ्जल खुद की जाति का स्मरण कर प्रतिबोधित हुआ। केशव चिर समय तक भयंकर संसार समुद्र में भ्रमण करेगा। इस प्रकार चरित्र सुनकर, पुरुषोत्तम राजा ने कपिञ्जल आदि बहुतों के साथ दीक्षा ग्रहण की।

कनकध्वज राजा भी उनके चरित्र देखकर तथा सुनकर संविग्न बना। अपने राज्य पर पुरुषचंद्र पुत्र का अभिषेक कर, जयसुंदर के साथ दीक्षा ग्रहण की। और निरतिचार चारित्र का चिर समय तक परिपालन किया। आयुष्य पूर्ण कर, विजय विमान में वे दोनों बत्तीस सागरोपम प्रमाण आयुष्यवाले देव हुए। वहाँ पर रोष रहित तथा अहं इन्द्रता के सुख से दोनों समय बीतानें लगे।

इस प्रकार पं. श्रीसत्यराजगणि द्वारा विरचित श्रीपृथ्वीचंद्रमहाराजर्षि के चरित्र में कनकध्वजराजर्षि का चरित्र रूपी नवम भव वर्णन संपूर्ण हुआ।

दशम भव

अंग देश में चंपा नगरी है। वहाँ पर जय नामक राजा राज्य करता था।

भूमि पर अवतीर्ण देवी के समान उसकी प्रियमती देवी थी। परस्पर घनिष्ठ प्रेमतंतु से बंधे हुए तथा श्रीजिनधर्म में रत इन दोनों के कितने ही दिन सुखपूर्वक बीत गएँ। कनकध्वज देव विजय विमान से च्यवकर प्रीयमति की कुक्षि में पुत्र के रूप में अवतीर्ण हुआ। तब निद्राधीन प्रियमती देवी को स्वप्न आया कि - अपने सिंहासन पर बिठाकर राजा ने स्वयं मेरे मस्तक पर मणिस्वर्णमय कांतिमान् मुकुट स्थापित किया है। प्रियमति ने जागकर, जगत् में उत्तम ऐसे उस स्वप्न के बारे में राजा से कहा। जयराजा ने कहा - प्रिये! तेरा पुत्र महाराजा होगा।

एकदिन गीष्मऋतु के समय जयराजा ने प्रियमती के साथ चिर समय तक उद्यान की वापियों में जलक्रीडा की। पश्चात् आम्रवृक्ष के नीचे बैठकर, राजा वीणा बजाने लगा। वन में राजा को देखकर कोई व्यंतरी सौभाग्य के अतिशय से, उसके रूप पर मोहित बनी। परस्त्री से विमुख रहनेवाले राजा ने उसका निषेध कर दिया। प्रेमपाश के वश वह व्यंतरी विवशता के कारण निराश होकर लौट गयी। पुनः मौका प्राप्तकर प्रियमती का रूप धारणकर व्यंतरी राजा के समीप, आयी। न्यायनिष्ठ राजा ने भी जान लिया कि यह प्रियमति नही है, किंतु वह ही व्यंतरी है जिसने प्रियमती का रूप धारण किया है। इस प्रकार विचारकर राजा ने मुष्टि के प्रहार से उसे घायल किया और शक्तिहीन बना दिया। पश्चात् उस व्यंतरी को अपनी इच्छित प्राप्ति से दूर कर, राजा ने उसे निकाल दिया। राजा प्रियमती के महल में गया, किंतु उस प्रिया को नही देखते हुए - हा! किसी ने मेरी प्रिया का अपहरण कर लिया है इस प्रकार शोक करने लगा। राजा ने चारों ओर उसकी तलाश करायी। जब प्रियमती कहीं पर दिखायी न दी तब राजा ने अपने चित्त में अभिग्रह धारण किया कि - प्रिया के समागम के बाद, मैं इस महल में नही रहूँगा। राज्य, धन आदि का त्यागकर मैं संयम स्वीकार करुँगा।

व्यंतरी ने प्रियमती को भयंकर अरण्य में छोड़ दिया। वह शेर, सिंह, सूअर आदि के भय से मन में काँपने लगी। विलाप करती हुई वह विषम मार्ग पर आगे बढ़ने लगी। भूख-प्यास और ताप के कारण पीड़ा का अनुभव करने लगी। उसी वन में निवास कर रही तापसियों ने उसे देखा। प्रियमती को आश्वासन देकर, कुलपति के सामने ले गयी। कुलपति ने अपने आश्रम में कितने ही दिनों तक बहुमानपूर्वक उसे रहने दिया। गर्भ के भार से प्रियमती का चलन मंद पड़ गया था। यह देखकर कुलपति ने अपने वृद्ध तापसों के साथ उसे श्रीपुर पहुँचाया। नगर के उद्यान में रहे जिनालय में जाकर उसने अरिहंत को नमस्कार किया। उसी समय वहाँ पर कोई जिनसुंदरी नामक श्राविका आयी। साधर्मिकी! मैं तुझे वंदन करती हूँ इस प्रकार कहकर उससे वार्त्तालाप करने लगी। प्रियमती का चरित्र सुनकर, जिनसुंदरी ने उसे आश्वासन दिया और अपने घर ले गयी। पश्चात् वह

धनञ्जयश्रेष्ठी के घर में सुखपूर्वक रहने लगी। वहाँ रहते हुए उसने पति वियोग आदि दुःख का जरा-भी अनुभव नहीं किया। वियोगी जन के लिए दुर्जन के समान ऐसे वर्षाऋतु का आगमन हुआ। पति का स्मरण कर, रो रही प्रियमती को जिनसुंदरी ने आश्वासन दिया।

प्रियमती वहाँ पर पिता के घर के समान रहने लगी। उचित समय पर उसने पुत्र को जन्म दिया। विजय प्राप्त करने के समान, धनञ्जय ने जन्म-महोत्सव मनाया। रूप से कामदेव के समान उसका कुसुमायुध नाम रखा गया और क्रम से बढ़ते हुए तीन वर्षवाला शिशु हुआ। एक दिन श्रीपुर से चंपानगरी की ओर प्रयाण करने की इच्छावाले वासवदत्त सार्थवाह को आमंत्रण कर, धनञ्जय श्रेष्ठी ने कहा-भाई! मेरी इस पुत्री को शीघ्र ही चंपानगरी में पहुँचा दो। वासवदत्त ने उसकी बात स्वीकार कर ली। तब प्रियमती ने सार्थवाह के साथ अपनी नगरी की ओर प्रयाण किया। बीच में शिववर्द्धन नामक नगर आया। बालक को साथ में रखकर, प्रियमती आम्रवृक्ष के नीचे सो गयी। इधर शिववर्द्धन नगर के राजा सुंदर ने अपने भाई के साथ श्रेष्ठ ऐसे घोड़े, हाथी आदि राज्य समृद्धि छोड़कर दीक्षा ग्रहण की। राज्य के उचित पुत्र नहीं होने से, मंत्रियोंने पाँच दिव्यों का प्रयोग किया। पश्चात् मंत्रियों ने कुसुमायुध का राज्य पर अभिषेक किया। वासवदत्त सार्थवाह ने प्रियमती के चरित्र के बारे में मंत्रियों से कहा। कुसुमायुध को सुंदर राजा के मासी का पुत्र जानकर, मंत्रियों ने प्रमोद से महोत्सवपूर्वक उसका राज्याभिषेक किया। चारों ओर से सभी सामंत राजाओं ने आकर, आदर सहित कुसुमायुध को नमस्कार किया।

इधर अवंतीपुर के राजा राजशेखर ने कुसुमायुध के राज्याभिषेक की बात सुनी। उस बालक के राज्य को ग्रहण करने की इच्छा से, राजा ने अपनी सेना के द्वारा नगर को घेर लिया। कहा भी गया है कि लोभी आत्माएँ कृत्याकृत्य, प्रशंसा-निंदा की गणना नही करती है। वासवदत्त सार्थवाह कितने ही दिनों के बाद चंपानगरी में पहुँचा। उसने जयराजा से प्रियमती तथा नये राजा कुसुमायुध के बारे में संपूर्ण वृत्तांत कह सुनाया। राजा ने आश्चर्यपूर्वक उसे सुना। सैन्य सहित राजा शिववर्द्धन नगर गया और प्रमोद से पुत्र तथा पत्नी से मिला। प्रियमती के पिता मानतुंगराजा भी क्रोड़ों सैनिकों के साथ वहाँ पर आया। राजा से उनका संपूर्ण वृत्तांत ज्ञापन किया गया। राजशेखर राजा भी उस व्यतिकर को जानकर विलक्ष हुआ। क्षमापना देने के लिए जयराजा के समीप गया और कहा-वृत्तांत नही जानते हुए, मैंने व्यर्थ ही आपके पुत्र के ऊपर युद्ध का आरंभ किया है। आप क्रोधरहित बनकर, मुझे क्षमा करें। इस प्रकार सभी राजाओं ने मिलकर परस्पर मैत्रीभाव का आश्रय लिया। और इंद्र के समान ऋद्धि से महोत्सव मनाया।

बहुत से राजाओं का नगर में संगम होने से, उस नगर का राजसंगम नाम प्रसिद्ध हुआ। पश्चात् राजशेखर राजा ने हर्षपूर्वक अपनी बत्तीस कन्याएँ कुसुमायुध राजा को दी।

एकदिन नगर के उद्यान की सीमा में, बहुत शिष्य परिवार से युक्त गुणसागर केवली ने समवसरण किया। उन्हें वंदन करने के लिए जय आदि सभी राजाएँ वहाँ पर आएँ। तब कृपा-सागर, जगत् हितकर्त्ता, केवली भगवंत ने मधुर और गंभीर वाणी में इस प्रकार धर्मदेशना प्रारंभ की - भव्यप्राणियों! इस मानव-भव को प्राप्तकर सर्वथा आत्महित करो। जिससे काम की उत्पत्ति न हो, और जहाँ पर लेशमात्र भी क्रोध, मान आदि न हो उस पर प्रीति करो। यह सुनकर मानतुंग राजा ने पूछा - भगवान् का वचन गंभीर है और हम अज्ञानी है। आपके वचन के रहस्य को हम समझने में असमर्थ है, इसलिए हम आपसे परमार्थ पूछ रहे हैं। केवलीभगवंत ने कहा - मोहराजा ने तुम्हें अज्ञान रूपी मदिरापान कराया है, इसलिए तुम परमार्थ से अज्ञ हो। राजशेखर राजा ने पूछा - भगवन्! यह मोह राजा कौन है? और उसका राज्याधिकार कहाँ पर है? केवलीभगवंत ने कहा - परमार्हत् और धर्मराजा का दूत सुबोध जब तुम्हें सुदर्शन नामक चूर्ण देगा, तभी तुम वास्तविक सत्य को पहचानोगे। वह सुबोध शीघ्र ही आ जाएगा। जबतक वह न आए, तब तक तुम्हारे कौतुक के लिए इनका स्वरूप बताता हूँ। उसे तुम ध्यानपूर्वक सुनो -

यह जगत्पुर विविध आश्चर्यों से भरा हुआ है। यहाँ पर अखंडित आज्ञावाला, देव, राजाओं से सेवित, शिष्यों को इष्ट देनेवाला, दुष्टों को अनिष्ट देनेवाला, मद रहित ऐसा कर्मपरिणाम नामक राजा पुष्कल राज्य का स्वामी है। उसकी कालपरिणती नामक प्रसिद्ध पत्नी है। वह पति पर अत्यंत अनुरागी और उसके चित्त के अनुसार वर्त्तन करती है। एकदिन उन दोनों दंपतियों के चित्त में इस प्रकार चिंता उत्पन्न हुयी कि - राज्य का विस्तार करनेवाला हमारा अंतरंग परिवार कितना है? कौन कार्य में रत है? पुनः कौन कृपापात्र है? तब उन दोनों ने राग, द्वेष आदि सुभटों से युक्त, संपूर्ण राज्य कार्य की चिंता में दत्त चित्तवाले मोह कुमार को देखा। सप्त व्यसन नाम से प्रसिद्ध उनके दूसरे भी पुत्र थे, जिनक नाम इस प्रकार है - द्यूत नामक, मांस आस्वाद नामक, मद्य, वेश्यागमन, पापर्द्धि, चौरिक और परस्त्रीगमन। वे पिता के अनन्य भक्त है और भव्यप्राणियों को सदा संसार में स्थिर कर रखतें हैं। क्योंकि सात व्यसन भी भयंकर नरक में ले जातें हैं।

राजा ने अपनी पत्नी से कहा - प्रिये! अब पुत्रों को राज्यभार सौंपकर, हमें सुखपूर्वक रहना चाहिए। पत्नी ने कहा - स्वामी! यह ही योग्य है। इस प्रकार करने पर ही ये पुत्र तीनों जगत् में प्रशंसापात्र बनेंगें। पश्चात् कर्मपरिणाम राजा ने

मोहकुमार को अपने राज्य पर स्थापित किया और शेष पुत्रों को भी यथोचित पद प्रधान किएँ। कर्मपरिणाम राजा ने मोहकुमार से कहा - वत्स! पूर्व में भी तुम सर्व अधिकारी था। अब विशेष से नागरिक लोगों की रक्षा करना। मैं योग्य स्थान पर रहकर राज्य की कारवाही देखूँगा। अब मोहकुमार भी जनप्रिय और निष्कंटक महाराज बना।

एकदिन जगत्पुर में इस प्रकार शोर मचने लगा - सुभटों! दौड़ो, दौड़ो! चारित्र राजा प्रजाओं का अपहरणकर शिवनगर में ले जा रहा है। यह सुनकर क्रोधित मोह राजा ने कहा - मंत्रियों! यह कहाँ से उचित है कि मेरे जीवित रहते हुए भी, नगरी से प्रजाओं का अपहरण किया जा रहा है? यह चारित्र राजा कौन है? राग, द्वेष, सुभटों। जगत्पुर में प्रख्यात कीर्तिवाले तुम दोनों अपने पुत्रों को साथ में लेकर तैयार हो जाओ। मिथ्यादर्शनमंत्री! तुम्हें राज्य की देख-रेख करने के लिए नियुक्त किया है। क्या तुम नही जानते हो कि नगर से प्रजाओं का अपहरण हो रहा है? क्या तुम सुखपूर्वक सो रहे हो? हे ज्ञानावरण आदि योद्धाओं! तुम शीघ्र तैयार हो जाओ। आज हम चरित्र राजा के मद को दूर कर देतें हैं।

तब अविवेक नामक मंत्री ने विज्ञप्ति की - देव! शांत बने, व्याकुल न हो। शोर का कारण सुने। पूर्व में आपके पिता ने चिरस्थिति नामक आपकी मासी के विवाह में, इसी जगत्पुर के अंतर्गत रहे एक सो सात पाटक (गाँव का अमूक हिस्सा) करमोचन के समय भेंट किए थे। आपकी मासी ने उन पाटकों पर सुंदर, सौम्य और तेजस्वी धर्मराजा को स्थापित किया है। एकांत हितकारी ऐसा वह धर्मराजा, बाहर के लोगों को सुख-समृद्धि देता है और विधि का पालन करनेवालों को विशेष रूप से सहायता करता है। उसी की कृपा से अत्यंत सुख से युक्त ऐसे अरिहंत, चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव आदि को देखकर, प्रायःकर अनेक लोग सुख की इच्छा से उसकी सेवा कर रहें हैं। राजन्! जिनको मिथ्यादर्शन आदि आपके सेवक दुर्गति के संकट में डाल रहें हैं, वे कालस्थिति की सहायता से बाहर निकलकर, खेदित होते हुए, उसी धर्मराजा का आश्रय लें रहें हैं।

धर्मराजा ने भी चिरसमय तक राज्य का परिपालनकर, अपने चारित्र नामक पुत्र को राज्य का भार सौंपा है। उसे परकार्यों में प्रयत्नशील देखकर, दीन लागों ने आकर इस प्रकार विज्ञप्ति की - स्वामी! मोह के सेवकों से दुःखित होकर, हम आपके पाटकों में आएँ है। आप हमें निर्भय स्थान बतानें की कृपा करें। तब चारित्र राजा ने कहा - भद्र! वह स्थान अत्यंत दुर्गम मुक्तिपुरी ही है। परंतु वहाँ पर सीढियाँ नही होने से, उस पर चढना कठिन है। इसलिए तुम विवेकपर्वत पर चढो। इस पर्वत पर चढने से, अभिमानी मोह के सेवक तुम्हारा पराभव नही कर

सकेंगें। विवेकपर्वत पर चढने के लिए, चारित्र राजा ने सदागम को नियुक्त किया है। प्रशम आदि सुमित्र बनकर इनको सहायता प्रदान कर रहें हैं। अब वे विवेकपर्वत पर कुछ दिनों तक विश्रामकर, केवलज्ञान के द्वारा बताए रस्ते पर चलते हुए मुक्तिपुरी में पहुँचनेवाले हैं। उन्हें वापिस लाने की प्रतिज्ञाकर नाम, गोत्र आदि आपके चार भाई भी पीछे गएँ थे। किंतु वे निराश होकर वापिस घर लौट आएँ हैं। अब उन्होंनें ही इस प्रकार नगर में शोर मचा रखा है। इसलिए देव! युद्ध से पर्याप्त हुआ। आपकी मासी ही पाटकों की चिंता कर रही है। उसके पाटकों में उपद्रव होने पर भी, हम क्या कर सकतें है?

मोह राजा ने कहा - यदि ऐसा हो तो भी तुम समस्त प्राणियों को अज्ञान की मदिरा पीलाओ, जिससे वे धर्म से अज्ञात बनकर, मुझ पर रागी हो। अविवेक मंत्री ने भी राजा की आज्ञा के अनुसार वचन का परिपालनकर राजा से निवेदन किया। फिर भी मोह राजा अश्रद्धा करता हुआ, अविवेक मंत्री के साथ नगर में पर्यटन करने निकला। उसने अज्ञान मदिरा के पान से भान रहित तथा धर्म-अधर्म, कार्य-अकार्य, भक्ष्य-अभक्ष्य, गम्य-अगम्य विवेक रहित अखिल विश्व को देखा। परंतु पूर्वोक्त पाटकों में धर्म, धर्म इस प्रकार रटण कर रहे संन्यासियों को देखकर, राजा ने अपनी भृकुटी चढाकर अविवेक मंत्री से पूछा - क्या इनको अज्ञान रूपी मदिरा नहीं पीलायी है। अविवेक ने कहा - देव! यें भी मदिरा के परवश ही हैं। यें विवेक पर्वत पर नही गएँ है, शम आदि से नही मिलें हैं, चारित्र राजा की सेवा नही की है और नही समिति - गुप्ति से युक्त हैं। मोह राजा ने पूछा - अविवेक! तुम ये सब कैसे जानते हो? तब उसने कहा मिथ्यादर्शन की आज्ञा से, मैं भी एकदिन प्राणियों का अपहरण करने के लिए विवेकपर्वत के समीप गया था। परंतु उस पर चढ न सका। तब मैंने व्युद्ग्रह आदि सुभटों को वहाँ पर भेजा। उस स्थान पर विश्राम करते हुए मैंने सदागम के द्वारा बताएँ गएँ विधि के किन्हीं शब्दों का श्रवण किया था। उससे मैं थोडा-बहुत जानता हूँ।

मोह ने कहा - सुंदर है, किंतु मासी के पाटंक में रहें प्राणी मेरे भक्त होंगें अथवा नही? अविवेक ने कहा - विवेकपर्वत के नीचे सभी प्राणी आपके वशवर्ती है। उस पर चढे बहुत-से प्राणी भी आपका अनुसरण कर रहें हैं। यह सुनकर दर्प से युक्त मोह राजा, उस नगर में विविध क्रीडाएँ करने लगा। वह कभी वाजिंत्र बजाता है, स्वयं हंसता है और दूसरों को हंसाता है, पृथ्वी पर लोटता है, स्वयं डरता है और दूसरों को डराता है, गीत गाता है, नृत्य करता है, कलह करता है, क्रोध करता है, खुश होता है, शोक करता है, विलाप करता है, अन्य पात्रों पर मूर्च्छित रहता है। पुनः यह मोह पुत्र को पिता और पुत्री को माता कहता है। पिता को वैरी और माता को वैरिणी जानता है। पत्नी को स्वामिनी कहता है। देव, गुरु

आदि के प्रत्ये स्तब्ध रहता है। विष्टा-मूत्र आदि से भरपूर अंगों का आलिंगन करता है और कराता है। मधुरवचन कहता है। स्त्रियों के पैरों पर गिरता है। विषम युद्ध करता है। वह मोह अपने अनुयायीवर्ग तथा भाईओं के साथ रम्य नाटक करता हुआ पिता को खुश करता है।

भव्यप्राणियों! शौर्यधारी और प्रमाद के वैरी उस मोह ने सभी प्राणियों को जीत लिया है। पुनः मोह ने इंद्रियों के द्वारा तीनों जगत् के जीव को अपने वश में कर लिया है। इसलिए पाँचों इंद्रियों के घात से, जय से अथवा वश करने से तुम अक्षय मोक्षसुख का अर्जन करो। युद्ध भी वही है, जिसमें किसी की भी मृत्यु न हो। संयम ही राग आदि शत्रुओं का विजेता है। बाह्य से रसहीन होने पर भी, तत्त्व से सुखकारी चारित्र पर ही प्रीति करनी चाहिए। इसलिए राजन्! तुम मोह रूपी आपदा को छोडकर चारित्र का आश्रय लो।

इस प्रकार केवलीभगवंत के मुख से धर्म सुनकर, मानतुंग राजा तथा राजशेखर राजा ने कहा - भगवन्! धर्मराजा के सुबोध दूत ने हम दोनों को सुदर्शन चूर्ण दिया है, जिससे यह संसारसुख साक्षात् अस्थिर दिखायी दे रहा है। मोहांध जीव असार और इंद्रजाल सदृश संसार को पहचान नही सकता है। किंतु हम दोनों उसे दुःखदायी जानकर अब चारित्र ग्रहण करना चाहतें हैं। तब केवलीभगवंत ने कहा - राजन्! चारित्र ग्रहण की इच्छा होने से, तुम दोनों का शीघ्र ही कल्याण होगा। किंतु इसे ग्रहण करने में विलंब मत करना क्योंकि इंद्रिय ग्राम दुर्जय है और पवन के समान मन चंचल है। पश्चात् दोनों राजाओं नें जयराजा से निवेदन किया - राजन्! हम दोनों को राज्य रूपी कैद से मुक्त करो, जिससे हम अपना वांछित प्राप्त कर सकें। तब जयराजा ने कहा - अब मेरा भी अभिग्रह पूर्ण हो गया है। मैं पहले भी राज्य को छोडना चाहता था। पुनः तुम दोनों का राज्य कैसे ग्रहण कर सकता हूँ? कुसुमायुध को तीनों राज्य का स्वामी बनाकर, तीनों राजाओं ने केवलीभगवंत के पास चारित्र ग्रहण किया। प्रियमती रानी भी दीक्षा अंगीकार करने के लिए उत्सुक हुयी, परंतु पति और मंत्री के वचन से बाल राजा का परिपालन करने लगी।

क्रम से कुसुमायुध राजा यौवन अवस्था में आया। कुसुमायुध राजा संपूर्ण पृथ्वी को एकछत्रित्व करता हुआ अर्हत् शासन को उन्नति के शिखरों पर पहुँचा दिया। कुसुमायुध राजा की देदीप्यमान गुण समूह से युक्त ऐसी राजशेखर राजा की पुत्री कुसुमावली, पट्टरानी हुयी। सरोवर में हंस के समान, जयसुंदर देव कुसुमावली की कुक्षि में पुत्र के रूप में अवतीर्ण हुआ। तब कुसुमावली ने स्वप्न में अग्नि को देखा। समय पर उसने संपूर्ण लक्षणों से युक्त पुत्र को जन्म दिया। पिता ने हर्षपूर्वक उसका कुसुमकेतु नाम रखा। क्रम से बढ़ता हुआ कुसुमकेतु

सकल कलाओं में निष्णात बन गया। देदीप्यमान अत्यंत लावण्यवाले उसने तारुण्य अवस्था का आश्रय लिया।

मथुरा के राजा महाकीर्त्ति ने अपने महाद्युति नामक प्रधानमंत्री के द्वारा कुसुमायुध राजा से निवेदन कराया कि-देव! भिन्न-भिन्न माताओं से उत्पन्न तथा तीक्ष्ण बुद्धि रूपी वैभव से युक्त हमारी इष्ट, शिष्ट और कोमल ऐसी आठ कन्याएँ हैं। ये परस्पर अत्यंत प्रेमशील हैं और अत्यंत निपुण हैं। परंतु कोई भी राजपुत्र आज तक इनको ज्ञानगोष्ठी में जीतने में समर्थ नहीं हुआ है। कुसुमकेतु के अद्‌भुत गुण-वैभव के बारे में सुनकर, वें एकचित्तवाली बनकर उसीका ध्यान धर रही हैं और वारंवार उसी का गुणगान कर रही हैं। इसलिए किसी भी प्रकार से कुसुमकेतु को शीघ्र भेजकर, उनके मन की शांति का उपाय करें। आगे क्या कहूँ? जबतक कुसुमायुध राजा ने मंत्री को प्रिय प्रत्युत्तर दिया, तब जयतुंग राजा के दूत ने आकर राजा से इस प्रकार विज्ञप्ति की-राजन्! आजन्म से अत्यंत देदीप्यमान गुणसमूह से युक्त हमारी सोलह कन्याएँ तारुण्य अवस्था में आयी हैं। एकदिन नैमित्तिक ने इन सोलह कन्याओं से इष्टप्रद बात कही कि-गुणों से उत्तम और अन्यून तथा विपुल सामर्थ्य से युक्त आपका कुसुमकेतु कुमार वर होगा। इसलिए प्रभु! इन कन्याओं के साथ पाणिग्रहण करने के लिए परिवार सहित अपने पुत्र को शीघ्र भेजें। इसी बीच अयोध्यानगरी के मंत्री ने आकर राजा से कहा-दिक्कुमारियों के समान हमारी गुणवान् आठ कन्याएँ हैं। देव! उनके वर के लिए मैं आपसे निवेदन कर रहा हूँ। अपने पुत्र कुसुमकेतु को उनके साथ विवाह करने के लिए भेजें।

कुसुमायुध राजा ने कहा-कुमार एक है, इसलिए पहले कहाँ भेजा जाएँ? तुम तीनों का प्रस्ताव अलंघनीय है। यदि मैं किसी एक स्थान पर भेजूँगा तो शेष दोनों की अवहेलना होगी। तब बुद्धिमान् मंत्री ने कहा-कुमार यही पर रहे। कन्याएँ स्वयं ही वरने के लिए इधर आएगी। यह बात सभी को सम्मत है इस प्रकार कहकर राजा ने मंत्री की बात स्वीकार की। उचित समय पर कन्याएँ भी वहाँ पर आ गयी। कुमार ने उनके साथ विवाह किया। दौगुन्दुक देव के समान उनके साथ विलास करता हुआ विचक्षण कुमार ने कितने ही वर्षों को पलभर के समान बीता दिए। एक दिन पुरंदर आदि पाँचसो श्रमणों से युक्त सुंदरमुनि उद्यान में पधारे। कुसुमायुध राजा ने उनको नमस्कार कर देशना सुनी। राजा प्रतिबोधित हुआ और कुसुमकेतु से कहने लगा-वत्स! स्वच्छ! राज्य का भार ग्रहण करो। समाधि से युक्त अब मैं श्रीसुंदर गुरु के पास व्रत ग्रहण करने के लिए तत्पर बना हूँ। कुसुमकेतु ने कहा-पिताजी! आपके बिना मैं क्षणमात्र भी रुकना नहीं चाहता हूँ, इसलिए मैं भी आपके साथ दीक्षा ग्रहण करूँगा। उसके आग्रह को जानकर, राजा

ने संयम ग्रहण करने का दृढ़ निश्चय किया और अपने स्थान पर देवसेनकुमार का राज्याभिषेक किया। कुसुमकेतु प्रमुख पाँचसो पुरुषों के साथ अस्त कामवाले ऐसे कुसुमायुध राजा ने दीक्षा ग्रहण की।

एक दिन गुरु की आज्ञा से सत्त्ववान् ऐसे कुसुमायुध मुनि ने एकाकी विहार प्रतिमा का स्वीकार किया। उन्होंने किसी गाँव के शून्य गृह में कायोत्सर्ग ग्रहण किया। प्रदीप्त अग्नि के द्वारा जलाये जाने पर भी स्थिर मनवाले वे महामुनि शुभध्यान से लेशमात्र भी चलित नहीं हुए। समाधि मृत्यु से आयुष्य पूर्णकर सर्वार्थ विमान में देव हुए। इधर श्रीसुंदर आचार्य ने भी शुक्लध्यान रूपी अग्नि से शीघ्र ही कर्म इंधन को जलाकर केवलज्ञान प्राप्त किया और मोक्ष गए। कुसुमकेतु ने भी तीव्र संलेखना कर जगत् में श्रेष्ठ ऐसे अनुत्तर विमान में देव हुआ। वहाँ पर दोनों सुखपूर्वक तेंतीस सागरोपम प्रमाण आयुष्य भोगने लगे और दोनों एक अवतारी होने से एक भव के बाद मोक्ष जानेवाले थे।

इस प्रकार पं.श्रीसत्यराजगणि द्वारा विरचित श्रीपृथ्वीचंद्रमहाराजर्षि चरित्र में श्रीकुसुमायुधराजर्षि का चरित्र रूपी दशम भव वर्णन संपूर्ण हुआ।

एकादश भव

कोशल देश में अयोध्या नामक महानगरी है। वहाँ पर हरिसिंह राजा राज्य करता था और उसकी पद्मावती रानी थी। सर्वार्थ विमान से कुसुमायुध देव च्यवकर पद्मावती की कुक्षि में अवतीर्ण हुआ। तब देवी ने स्वप्न में विमान देखा। समय पूर्ण हो जाने पर, शुभ दिन में उसने सुखपूर्वक पुत्र को जन्म दिया। राजा ने उसका पृथ्वीचंद्र नाम रखा। क्रम से सद्विद्याओं का अभ्यास कर, पवित्र आचारवाला पृथ्वीचंद्र तरुणियों के नयन आनंददायक यौवन अवस्था में आया। मनुष्यों में श्रेष्ठ ऐसे हरिसिंह राजा ने महोत्सवपूर्वक पृथ्वीचंद्र कुमार का सोलह कन्याओं के साथ विवाह किया। कुमार ने मामा जयदेव की ललितसुंदरी नामक पुत्री, कुमारी की अग्रगणनीय पत्नी बनी। पृथ्वीचंद्र भोगों से विमुख था तथा स्त्रियों पर लेशमात्र भी राग धारण नहीं करता था। वह सतत अपने चित्त में इस प्रकार विचार करता था-अहो! माता-पिता ने मुझे इस राग रूपी समुद्र में क्यों गिराया है? ये पत्नियाँ मुझे छोड़नेवाली नहीं हैं। इसलिए किसी भी उपाय से, इनको प्रतिबोधित कर में प्रव्रज्या ग्रहण करता हूँ और शीघ्र ही अपना हित करूँगा।

इस प्रकार विचारकर कुमार ने अपना दिनकृत्य पूर्ण किया। उन सोलह प्रियाओं के साथ, कुमार गृह में गया और आसन पर बैठा। कन्याएँ भी रत्नपट्टक पर बैठी। प्रियाओं से घेरा कुमार ताराओं से चंद्र के समान शोभने लगा। उनके द्वारा कटाक्ष करने पर भी, शम रूपी बख्तर धारण करने से कुमार वींधा नही

गया। यह देखकर ललितसुंदरी की दासी विदग्धा ने पूछा - सुंदर कमलिनियों पर भी हंस दृष्टि नही डाल रहा है, हम इसका कारण नही जानतें है? ललितसुंदरी ने कहा - सखि! जडता से युक्त कमलिनियों की वैसी योग्यता नही है, जिससे चतुर हंस रागी हो। यह देखकर विष्णु नामक बटुक थोडा हंसा और कहने लगा - स्वामी! आपका समस्त परिवार विरक्त दिखायी देता है। इसलिए इनके मन की शांति का उपाय करें। यह सुनकर कुमार ने कहा - बटुक! संसार ही वैराग्य का कारण है, जिससे केशव बटुक के समान प्राणी, संसार में कदर्थना प्राप्त करतें हैं। विष्णु ने पूछा - कुमार! यह केशव कौन है? तब कुमार ने इस प्रकार कथानक प्रारंभ की -

प्राचीन समय में, मथुरा नगरी में, दुःखी ऐसा केशव नामक बटुक रहता था। उसकी कुटिल, कद्रूपी और कलहकारी कपिला नामक पत्नी थी। कितने ही काल बीतने के बाद गर्भवती बनी। तब उसने पति से कहा - घी, गुड आदि योग्य सामग्री के लिए धन ले आओ। केशव ने कहा - मैं धर्नाजन करना नही जानता हूँ, इसलिए तुम ही कोई उपाय बताओ। कपिला ने कहा - स्वर्णभूमि में जाकर, स्वर्ण ग्रहणकर शीघ्र ले आना। वह भी उसके वचन से प्रेरित होकर स्वर्णभूमि पर गया। स्वर्ण लेकर वापिस लौटने लगा। इसीबीच किसी ऐन्द्रजालिक ने देखकर, उससे पूछा। इस मूर्ख बटुक ने भी उसके आगे समस्त वृत्तांत कह सुनाया। उस धूर्त्त इन्द्रजालिक ने विद्या के प्रयोग से युवा ब्राह्मण कन्या और उसके माता-पिता दिखाएँ। कन्या पर अनुरागी बनकर, केशव ने माता-पिता से कन्या की याचना की। उन्होंनें कहा - हजार स्वर्ण मुद्राएँ देकर, कन्या ग्रहण करो, अन्यथा नही। केशव ने स्वर्ण मुद्राएँ देकर, कन्या के साथ विवाह किया। पश्चात् धूर्त्त इन्द्रजालिक ने खान-पान की सामग्री भी दिखायी। यह देखकर केशव अत्यंत खुश हुआ। धूर्त्त स्वर्ण लेकर और अपनी संपूर्ण लीला का संहरणकर वहाँ से भाग गया। कन्या को नही देखकर, केशव दुःखित हुआ और उसे चारों ओर ढूँढने लगा। उसे नही प्राप्तकर, केशव खेदित होते हुए विदेशों में पर्यटन करने लगा।

कपिला का स्मरणकर, बटुक सोचने लगा - अहो! कष्ट से उपार्जित स्वर्ण को व्यर्थ ही खो दिया है। अब धन रहित होकर, वापिस घर लौटने में लज्जा का अनुभव कर रहा हूँ। मेरे विरह से, प्रिया दुःखी होगी। इसलिए वापिस घर लौट जाता हूँ। अथवा स्वर्णभूमि में जाकर, स्वर्ण ले आऊँ? इस प्रकार विचार करते हुए किसी गाँव में पहुँचा। भाग्य से किसी ने देह मिश्रित अन्न का भोजन कराया। पश्चात् वटवृक्ष के नीचे सो गया। तब केशव ने स्वप्न देखा कि - जब मैं अपने घर में खुदाई कर रहा था, तब रत्नों से भरपूर बडा भूमिगृह प्राप्त किया। पश्चात् महोत्सव मनाया और सभी स्वजनों को भोजन के लिए आमंत्रित किया। नागरिक

लोक भी मिलने आएँ और राजा ने मेरा संमान किया। मेरी नूतन पत्नी भी वापिस आ गयी थी और कपिला ने आदर सहित उसे घर में प्रवेश कराया। गधे की आवाज सुनकर, केशव जाग गया और सोचने लगा - अहो! घर में ही धन होते हुए भी, मैं व्यर्थ ही बाहर भटक रहा हूँ। ऐसा विचारकर, आनंदित होते हुए, वह वापिस अपने घर में लौट गया।

अपने पति को आनंदित देखकर, कपिला ने सोचा - मालूम पडता है कि यह बहुत स्वर्ण लेकर आया है। कपिला ने स्नान आदि से सत्कार किया। पश्चात् धन न देखकर, कपिला ने आक्रोश से पूछा - क्या अर्जित धन को नही दिखाओगे? क्या मुझे भी ठगना चाहते हो? केशव ने कहा - शीघ्रता मत करो। पहले उधार से घी, गुड आदि लाकर स्वादिष्ट भोजन तैयार करो। कल स्वजनों को भोजन के लिए आमंत्रितकर, उनके सामने धन दिखाऊँगा। कपिला ने कहा - कितना है? पहले मुझे तो दिखाओ, जिससे धन के दर्शन से मैं हर्ष धारण कर सकूँ। केशव ने कहा - धन गुप्त स्थान पर है। स्वजनों के आगे ही निकालूँगा। इसलिए प्रिये! यदि धन चाहती हो, तो मेरे वचन के अनुसार करो। विलंब मत करो। उसकी बातों पर विश्वासकर, कपिला ने भी स्वजनों को आमंत्रण देकर भोजन कराया। नगर के लोक भी कौतुक देखने के लिए वहाँ पर एकत्रित हुए। स्वजनों को भोजन कराने के पश्चात् अपने केशों को बांधकर, स्वप्न में देखी भूमि को खोदने लगा। स्वजनों ने पूछा - तुम यह क्या कर रहे हो? केशव ने कहा - मेरा सारभूत धन यही पर है। उन्होंनें कहा - किसने और कब रखा है? केशव ने कहा - मैं उसके बारे में नही जानता हूँ, किंतु स्वप्न में इसी स्थान पर धन देखा था। तो तूंने उसी समय ग्रहण क्यों नही किया? इस प्रकार स्वजनों के पूछने पर उस मूर्ख ने कहा - मैं ग्रहण कर ही रहा था, किंतु गधे की आवाज से जाग गया। उसकी बातें सुनकर अहो! यह महामूर्ख है, ऐसा कहकर सभी हंसनें लगे। पत्नी भी सिर पर हाथ रखकर, उसे धिक्कारने लगी। तो भी केशव ने खोदना बंध नही किया। अंत में दीवार के गिरने से उसने दुर्दशा प्राप्त की।

केशव बटुक का यह वृत्तांत सुनकर, सभी हंसने लगे। पृथ्वीचंद्र ने कहा - विष्णु! मुझे सत्य कहो। केशव का चरित्र हास्यकारी है अथवा नही? विष्णु ने कहा - स्वामी! निश्चय से हास्यकारी ही है। परंतु प्रभु! मैं आपसे पूछना चाहता हूँ, संपूर्ण प्राणीगण उसके समान कैसे है? तब पृथ्वीचंद्र ने कहा - यह संसारी जीव भी केशव बटुक के समान जडात्मक है। वह कृत्य-अकृत्य, हित-अहित के बारे में नही जानता है। चौरासी लाख जीवयोनि में भटकते हुए ही अपना समय बीता रहा है। कर्मपरिणति के आदेश से उसने कभी स्वर्णभूमि सदृश मनुष्य योनि प्राप्त की। वहाँ पर अकाम निर्जश से अल्प पुण्य रूपी स्वर्ण को प्राप्त किया। इसीबीच

काम रूपी धूर्त्त से मोहित होकर विषय रूपी कन्या में आसक्त हुआ। पश्चात् सत्पुण्य रूपी स्वर्ण को हारकर नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव भव रूपी अनेक देशों में पर्यटन करने लगा।

पुनः किसी भव रूपी गाँव में, किसी दयालु धर्माचार्य से तप रूपी दहिचावल के दान से स्वस्थ हुआ। वट रूपी प्रौढकुल को प्राप्तकर मोहनिद्रा से सोता है। वहाँ पर स्वप्न तुल्य प्रिय भोग से मोहित हो जाता है। ब्राह्मणी रूपी कर्मपरिणति का स्मरणकर यहाँ पर आता है। अज्ञान के कारण अविद्यमान लक्ष्मी की चाहना करता है। मोह के माहात्म्य को देखो। हाथी, अश्व, धन, भूमि, नौकर गण आदि पालन से श्रम को भी अद्वितीय सुख मानता है।

इस प्रकार पृथ्वीचंद्रकुमार के वचनों से संसार की असारता जानकर, संवेग सहित प्रियाओंनें कहा - प्रभु! आपका कथन सत्य है। संसार की स्थिति ऐसी ही है। पृथ्वीचंद्रकुमार ने कहा - भद्रे! अब तुम भोग सुखों से विमुख ऐसे सद्गुरु की सेवा करो। उन्होंनें कहा - प्रभु! प्रतिबोध देने से आप ही हमारें गुरु है। हमारी भोगतृष्णा नष्ट हो गयी है। इसलिए अब आप धर्म की प्राप्ति कराएँ। यह देखकर कुमार आनंदित हुआ और कहा - तुम्हारा विवेक श्रेष्ठ है, इसलिए धर्म की प्राप्ति दुर्लभ नही है। जबतक हमें धर्मसामग्री की प्राप्ति न हो, तबतक हमें धर्म में उद्यमशील रहना चाहिए। उन्होंनें भी कुमार का वचन स्वीकार किया। इस प्रकार सभी धर्मध्यान में तत्पर बनें।

अपने पुत्र को दीक्षा ग्रहण करने की इच्छावाला जानकर, मोह से अश्रुयुक्त नयनवाले पिता ने कहा-वत्स! स्वच्छमतिवाले! हमें तो बूढापा आ गया है और तुम राज्यलक्ष्मी और पत्नियों के समागम से विमुख हो। इसलिए तुम विचार करो और यहाँ पर जो तुझे उचित लगता हो वह शीघ्र कहो। राज्य योग्य तेरे समान पुत्र होते हुए भी, हम आज भी राज्यलोलुपी बनकर बैठे हैं। यह लोक में लज्जाकारी विषय है। यह हमारा कुलाचार भी नहीं है। पुत्र के राज्य योग्य बन जाने पर, हमारे सभी पूर्वजों ने दीक्षा ग्रहण की थी। इसलिए तुम अपना राज्य स्वीकार करो। हमारी प्रार्थना वृथा न करो। पिता के वचन स्वीकारकर पृथ्वीचंद्र ने भी वैसे ही किया। पश्चात् महोत्सवपूर्वक पृथ्वीचंद्र का राज्य पर अभिषेक किया गया। उसके राज्य का संचालन देखकर सभी लोग आनंदित और विस्मित हुए।

विस्तार कीर्त्तिवाले पृथ्वीचंद्र राजा के द्वारा पृथ्वी पर शासन करने पर, एक दिन सुधन नामक श्रेष्ठ व्यापारी उसकी सभा में आया। राजा के आगे भेंट रखी, पश्चात् अंजलि जोड़कर नमस्कार किया। सुधन का संमान कर राजा ने पूछा-कोई आश्चर्य देखा हो तो कहो। उसने कहा-कुरुदेश में हस्तिपुर नामक नगर है। वहाँ पर रत्नसंचय श्रेष्ठी नगर का प्रधान है। उसकी सुमंगला पत्नी है। उन दोनों

को एक सुंदर पुत्र हुआ। पुत्र के गर्भ में रहते समय, माता ने स्वप्न में क्षीरसमुद्र का पान किया था। इसलिए उस पुत्र का गुणसागर नाम पृथ्वी पर प्रसिद्ध हुआ। क्रम से बढते हुए यह यौवन अवस्था में आया। परंतु आजन्म से गुणसागर भोगों से विरत था। वह रमणीय स्त्रियों पर लेशमात्र भी मन नहीं देता था। उसी नगर में आठ प्रसिद्ध श्रेष्ठी थे। उनकी आठ पुत्रियाँ थीं। वे भी यौवन-अवस्था में आयी। आठों कन्याओं ने गुणसागर कुमार को देखकर उस पर राग बांधा और उसे ही अपना पति बनाने की प्रतिज्ञा की। कन्याओं के निश्चय को जानकर उनके पिताओंने गुणसागर के साथ विवाह निश्चित किया।

एकदिन झरूखे में बैठे गुणसागर ने मूर्त्तिमंत धर्म के समान तथा प्रशमरस से युक्त मुनिभगवंत को देखा। मैंने ऐसा रूप कहीं पर देखा है। इस प्रकार ऊहापोह करने लगा। पूर्वभव में खुद के द्वारा पालन किए गए चारित्र धर्म का स्मरण कर, विशिष्ट संवेगरंगवाला हुआ और माता-पिता से कहने लगा-अब मैं इस संसार रूपी कारागृह में रहना नहीं चाहता हूँ। इसलिए प्रसन्न होकर मुझे व्रत ग्रहण की आज्ञा दें। उन्होंने कहा-वत्स! इस यौवन अवस्था में व्रत क्यों ले रहे हो? अथवा वत्स! यदि तुझे व्रत ग्रहण करने की प्रबल इच्छा है तो पहले कन्याओं के साथ विवाह करो, पश्चात् तेरा इच्छित करना। माता-पिता के वचन को स्वीकार कर, गुणसागर कुमार ने महोत्सवपूर्वक उन आठ कन्याओं के साथ विवाह किया। कन्याओं के साथ पाणिग्रहण करने के बाद, कुमार सुखपूर्वक अपने माता के घर में बैठा था।[1] उतने में ही वहाँ पर आश्चर्यकारी नाटक प्रारंभ हुआ। किंतु गुणसागर अपने नाक पर आँख स्थिरकर, इंद्रिय के समूह को संयमित कर, एकाग्र मनवाला होकर इस प्रकार सोचने लगा-मैं प्रातः मुनि बनूँगा। तब मैं तप करूँगा और गुरुजनों का विनय करूँगा। व्रत, योगों में प्रयत्न करूँगा तथा ध्यान, नियमों में स्थिर रहूँगा। इस प्रकार निश्चल से ध्यान करता हुआ, पूर्वभव में अभ्यस्त श्रुत का स्मरण करता हुआ भावसंयम का स्वीकार किया। निश्चल संवेगरस से सिंचित तथा उत्तरोत्तर चढते निर्मल अध्यवसाय के वश से, गुणसागरमुनि प्रतिसमय घातिकर्मों को जलाते हुए क्षणमात्र में ही निर्मल केवलज्ञान प्राप्त किया। उसकी नूतन विवाहित पत्नियों ने भी अखिल कर्मरूपी उष्णता के संताप को दूर कर तथा भावचारित्र का स्वीकार कर, वहीं पर केवलज्ञान प्राप्त किया। उनके केवलज्ञान की महिमा करने के लिए इंद्र वहाँ पर आएँ। आकाश में दुंदुभियाँ बजी और भव्य प्राणियों ने हर्ष धारण किया। अपने पुत्र तथा पुत्रवधूओं के केवलवैभव को देखकर रत्नसंचय और सुमंगला भी बार-बार उनकी अनुमोदना करने लगे।

1 किसी कथानक में चौरी में चिंतन करते करते केवलज्ञान हुआ कर लिखा है। विशेष प्रचलित भी यही है।

अनुमोदना के कारण कर्म हल्के हो जाने से, सुविशुद्ध संयमरस की प्राप्ति से कर्ममल का प्रक्षालन कर, उन दोनों ने अनंत केवलज्ञान प्राप्त किया।

इस प्रकार राजन्! मैंने इस महाश्चर्य के बारे में आपके सामने विज्ञप्ति की है। पृथ्वीचंद्र राजा भी इस चरित्र को सम्यग् प्रकार से सुनकर विचार करने लगा- वह गुणसागर वास्तव में गुणसागर ही है, जिसने संपूर्ण पापसमूह के क्षय हो जाने से अपने कार्य को सिद्ध कर लिया है। माता-पिता तथा पूजनीयों के दाक्षिण्य वश, आत्मकार्य में भी उदासीन रहते हुए मैं जान-बूझकर इस राज्य नामक कूटयंत्र में क्यों गिर पड़ा हूँ? मैं कब भव का मथन करनेवाली भगवती महादीक्षा को ग्रहण करूँगा? मैं कब शत्रु-मित्र पर समवृत्तिवाला बनकर निर्बंध विचरण करूँगा? इस प्रकार भावना के वश से क्षणमात्र में ही संपूर्ण कर्मों का क्षयकर, पृथ्वीचंद्र राजा ने केवलज्ञान प्राप्त किया। राजा को केवलज्ञान प्राप्ति के समाचार सुनकर, संवेगरंग से युक्त मनवाली सोलह राजप्रियाओं ने केवलज्ञान प्राप्त किया। तब सुधन सार्थवाह ने पृथ्वीचंद्र महामुनिंद्र से विज्ञप्ति की-भगवन्! हे समतानिधि! आपमें और गुणसागरमहर्षि में बंधुओं के समान, समानता दिखायी देती है। यहाँ पर क्या रहस्य है? पृथ्वीचंद्र केवली ने कहा-मैं पूर्वभव में कुसुमायुध राजा था। गुण रूपी मणियों से युक्त सागर के समान, वह मेरा कुसुमकेतु पुत्र था। वह ही अपने गुणों के अनुरूप यथार्थ नाम धारण करनेवाला गुणसागर है। इसलिए हम दोनों में सदृशता दिखायी देती है।

केवली भगवंत के वचन सुनकर, सुधन ने अपना सिर धुनाया। परमबोध प्राप्तकर तथा पापों को दूर कर उसने हृदयपूर्वक गृहस्थधर्म को स्वीकारा और इहलोक-परलोक में सुखी हुआ। अनेक लाख वर्ष पर्यंत केवली पर्याय का पालनकर, पृथ्वीचंद्र आदि सभी ने मोक्षलक्ष्मी का आश्रय लिया।

इस प्रकार पं.श्रीसत्यराजगणि द्वारा विरचित श्रीपृथ्वीचंद्रमहाराजर्षि चरित्र में गुणसागर-पृथ्वीचंद्र केवल उत्पत्ति वर्णन नामक ग्यारहवाँ भव वर्णन संपूर्ण हुआ।

॥ श्री पृथ्वीचंद्रगुणसागर चरित्र संपूर्ण हुआ ॥

ग्रंथकर्ता की प्रशस्ति

(१) पृथ्वीचंद्र राजर्षि का यह चरित्र सदा सज्जन श्रोताओं का पापनाशक तथा विघ्नरूपी पूर को सदा शांत करनेवाला है। जो शांत तथा एकाग्र मनवाले बनकर इसका श्रवण करते हैं, वे सभी पापों का क्षयकर शीघ्र ही कल्याण की श्रेष्ठतावाले मोक्षलक्ष्मी का आश्रय लेते हैं।

(२) कुंदफूल, चंद्र के समान उज्ज्वल कीर्त्ति से अत्यंत सुंदर पूर्णिमा के शोभायमान होने पर, पवित्र बुद्धि से प्रकट वाचस्पति के समान, विविध ग्रंथों के निबंध में सुंदर वाणीवाले, देदीप्यमान गुणसमूह को धारण करनेवाले, तेज रूपी लक्ष्मी से कांतिमान् ऐसे श्रीमद् गुणसमुद्रसूरि शोभते थे। उनके पट्ट रूपी उदयाचल के सिर रूपी शिखर पर सूर्य के कांति के समान तथा पुण्यलक्ष्मी से सुंदर ऐसे श्री पुण्यरत्नसूरीश्वर गुरु हैं।

(३) उनके शिष्य श्रीसत्य आदि राज ने १५३५ वर्ष के शरद्ऋतु में विस्मयकारी ऐसे इस चरित्र की रचना की थी। इसलिए पंडितजनों के द्वारा यह चरित्र पठनीय है।

(४) पूर्व श्रेष्ठ कवियों ने प्राकृतभाषा में इस चरित्र को लिखा था। अज्ञ जीवों के अवबोध के लिए मैंने अनुष्टुब आदि में रचना की है।

(५) इस चरित्र का गूंथन कर मैंने जो सुकृत का उपार्जन किया हो तो उससे भवोभव मुझे बोधिलाभ की प्राप्ति हो।

(६) यदि लक्षणा, अलंकार आदि किसी स्थान पर हीन हो तो, प्रसन्नता धारणकर पंडितजन उसे सुधारें।

(७) अपनी विदूषता प्रकट करने के लिए, कवित्व की पंडितायी निरूपण करने के लिए, मैंने इस चरित्र की रचना नहीं की है। अल्पबुद्धिवाले मैंने मात्र कथा निवेदन करने के लिए ही इसे लिखा है।

(८) जिस प्रकार तिलों में काले तिल और घासों में तृण की संख्या गिनने में कोई समर्थ नहीं है, वैसे ही मेरी उक्तियों में भी दूषणों के समूह हैं। किंतु पंडितपुरुष उसके बारे में चिंतन न करें।

(९) अथवा इस प्रार्थना से क्या प्रयोजन है? क्योंकि सज्जनपुरुष मेरे गुणों पर ही आदरवान् होंगे। भ्रमरों का समूह सदा आनंद से मनोहर फूल पर ही क्रीड़ा करते हैं।

(१०) इस चरित्र का समग्र श्लोक प्रमाण १८४६ है।

सं. १५३५ वर्ष के माघ शुक्ल दशमी गुरुवार में श्री अहमदाबाद नगर में श्रीपूर्णिमापक्ष के विभूषण श्रीगुणसागरसूरि के पट्टालंकार पूज्यश्रीगुणसमुद्रसूरि, उनके पट्टाचल पर सूर्य के समान किरणवाले श्रीपुण्यरत्नसूरिवर अब विजयवंत हैं। उनके शिष्यरत्न सत्यराजगणि ने यह चरित्र लिखा है।

क्रोड़ों चतुर पुरुषों के द्वारा वांचन किया जाता हुआ तथा अज्ञ लोगों को अवबोध करनेवाला यह चरित्र चिर समय तक जयवंत रहे।

॥ इति श्रीपृथ्वीचंद्रगुणसागरचरितं समाप्तम् ॥

- काया की मलीनता, वचन की मलीनता से अत्यन्त भयंकर है मन की मलीनता। मन की मलीनता आत्मा को अन्तर्मुहूर्त के अंदर सप्तम नरक में भेज देती है।
- चारित्र - साधुवेश की प्राप्ति दुर्लभ है। परन्तु इससे भी अत्यन्त दुर्लभ है श्रद्धा की प्रप्ति । सम्यग्दर्शन से भी अत्यन्त दुर्लभ है सम्यग्दर्शन पूर्वक का चारित्र।
- परमात्मा की परम पावन उपस्थिति में प्रभु के शिष्य संसारी पक्षे जवाईराज ने ही प्रभु के सिद्धान्त को अस्वीकृत कर दिया। इसे ही कहते हैं मोह राजा का साम्राज्य।
- जगत में अनेक मानवों ने धर्म की प्ररुपणा की है। उन धर्मों की व्याख्याओं को समझकर जो धर्म अपने को दुर्गति से बचा सके उसी धर्म का स्वीकार करना बुद्धिमान का कर्तव्य है।
- एक दुकान प्लास्टीक के फलों से सजी हुई है। वे प्लास्टीक के फल बहुत ही सुंदर दिख रहे हैं। क्या वे सुंदर फल किसी की क्षुधा को शांत कर सकते हैं ? वैसे ही केवल बाह्य से सुन्दर दिखायी देने वाला धर्म आत्मा को दुर्गति से नहीं बचा सकता।
- दुसरों के दुर्गणों को बार-बार दुसरों के सामने दोहराना इसका अर्थ अपने आपको दुर्गुणी बनाना।
- विश्वविजेता बनना सहज हो सकता है परन्तु इंद्रिय विजेता बनना तो अत्यन्त कठिन है।
- देव-गुरु में 'सु' एवं 'कु' के भेद को सूक्ष्म रीति से समझे, जाने बिना उपासना करने वाला आत्मा कभी तीव्र अशुभ कर्मबंध भी कर लेता है। सुदेव और सुगुरु को कुदेव-कुगुरु मानकर उनका तिरस्कार आदि कर ले तो तीव्र अशुभकर्म बंध हो जाता है। संसार भ्रमण सीमातीत बढ़ जाता है।

-जयानंद

तित्थयरेहि वि न कयं, एकमयं तिहुयणं सुयधरेहिं।
अम्हारिसेहि किं पुण, कीरइ रह मन्द बुद्धीहिं ॥ १५ ॥

पउम चरिय भाग-१. पे-२

जब श्रुतधर तीर्थंकर भी तीनों लोकों को एक मत नहीं कर सके, तब हमारे जैसे मन्द बुद्धि तो इसमें क्या कर सकते है ?

'सर्वज्ञ परमात्मानी एवी आज्ञा छे के धर्म क्रियाना भेदोमां मुंझावुं नहीं अने जे - जे क्रियाथी अहिंसादि गुणोनी उन्नति थाय तथा अन्तरात्मदशा पूर्वक परमात्म पद प्रगटे एवी सर्व धर्म क्रियाना भेदोमां सत्यता छे. अने ते अधिकारी भेदे करवी जोइए।''

-श्री आत्मानंद प्रकाश वर्ष ६१ अंक ८/१० - ६/६४

ललित विस्तरा में वैयावच्चगराणं की व्याख्या में वृद्ध सम्प्रदायः शब्द का प्रयोग किया है और अंत में हितशिक्षा रूप में जो वर्णन दिया उसमें 'यथोचितं करोति कुर्व्वन्ति वा कुग्रहविरहेणं'' शब्द का प्रयोग है। जो सम्यक् प्रकार से चिन्तनीय है।

''पूजनीया मन्त्रदेवताः'' की व्याख्या में भी मंत्र देवों की यथा योग्य पूजा करो'' इसमें भी यथा **योग्य शब्द** पर चिन्तन आवश्यक है।

देवसिकावश्यकमध्ये सामान्यतो वैयावृत्यकरान् विमुच्य केवल-श्रुतदेवतादेः कायोत्सर्गकरणं।

देवसिक आवश्यक में सामान्य से वैयावच्चगराणं बोलकर काउस्सग्ग किया जाता है। उसे छोडकर केवल श्रुतदेवता का काउस्सग्ग करना ॥ चैत्यवंदन भाष्य पे-३९५

क्या इस प्रकार कोइ क्रिया करता है ?

चिंतनीय है....

Hrimkar 0866-2567927